देवदासी

[गोआ की पृष्ठभूमि पर रचित हृदयस्पर्शी उपन्यास]

लेखक

बाळकृष्ण भगवंत बोरकर

भूमिका

हरिभाऊ उपाध्याय

●

१९५६

सत्साहित्य-प्रकाशन

दो शब्द

प्रकाशक ने मुझसे कहा है कि हिन्दी-संस्करण के लिए एक छोटी ही सही, भूमिका लिख दूं। भारतीय हृदय हमारे गोआ का हो अथवा हिन्दी-भाषी प्रदेश का, क्या वह एक नहीं है ? जहां हृदय हृदय को जान सकता है, वहां भूमिका की मध्यस्थता क्यों ? गोआ का हृदय हमारा ही है, इतना हिन्दी वाचक अनुभव कर लें, यही मेरे लिए बस है।

और यह मुझे मिलेगा, इसका मुझे विश्वास है।

बाळकृष्ण भगवंत बोरकर

प्रकाशकीय

मराठी के उच्चकोटि के इस उपन्यास का हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मराठी में यह 'भावीण' नाम से निकला है और गुजराती मे भी इसका इसी नाम से अनुवाद प्रकाशित हुआ है। कहने की आवश्यकता नही कि मराठी और गुजराती, दोनों भाषाओं में इस उपन्यास को असाधारण मान और लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

हमारी बहुत दिनों से इच्छा थी कि भारतीय भाषाओं के उच्चकोटि के उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में निकले, जिससे हिन्दी के पाठकों को उन्हें पढ़ने का अवसर मिले और वे जान सकें कि हमारी भारतीय भाषाओं में कितना समृद्ध साहित्य उपलब्ध है। अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए हमने एक उपन्यास-माला प्रारम्भ की है। उसमें पहला हिन्दी का मौलिक उपन्यास निकला है—'तट के बंधन'। दूसरा यह है। यह शृंखला बराबर चलती रहे, इसके लिए हम प्रयत्नशील हैं।

'देवदासी' के विषय में हम कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। पाठक स्वयं ही उसे पढकर देखेंगे कि वह कैसा है; लेकिन इतना निवेदन हम अवश्य कर देना चाहते हैं कि मराठी-साहित्य में इस उपन्यास का अपना स्थान है। भाव, भाषा और शैली के संबंध में 'भूमिका' में विशद रूप से प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में हम इतना ही कह देना चाहते हैं कि अनेक दृष्टियों से यह रचना अपने ढंग की बेजोड़ है। समाज में गिरे हुए माने जाने वाले व्यक्तियों के हृदय कभी-कभी कितने ऊँचे होते हैं, इसके दृष्टांत हमारे समाज में अनेक हैं; लेकिन उन्हें देखने के लिए साधक की दृष्टि चाहिए और हमें यह कहते हुए संकोच नही होता कि वह दृष्टि इस उपन्यास के लेखक के पास मौजूद है। तभी तो एक तिरस्कृत 'देवदासी' सीता-सावित्री के समान अपने चरित्र की ऊँचाई से मानव-समाज के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करती है।

उपन्यास की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उसमें पात्रों और घटनाओं की भरमार नहीं है। इसलिए उपन्यास के पढ़ने में पाठक पर जोर नही पड़ता। जितने पात्र लेखक ने लिये है, उनमें से एक भी भरती का नही है, सबका अपना-अपना स्थान और महत्त्व है। सीमित पात्र और घटनाए होने के कारण उपन्यास बहुत प्रभावशाली बन पड़ा है।

इसका अनुवाद श्री बाबूराव जोशी ने किया है।

हमें विश्वास है कि मराठी और गुजराती की भांति हिन्दी में भी इस उपन्यास को आदर और लोकप्रियता प्राप्त होगी।

—मंत्री

भूमिका

'देवदासी' के रचयिता श्री बोरकर महाराष्ट्र के उच्चकोटि के कवियों में से हैं। जब-जब मुझे उनकी कविता सुनने का अवसर मिला है तब-तब मैं मुग्ध हो गया हूं और मेरी बुद्धि ने स्वीकार किया है कि वे कवि ही नहीं, अपने ढंग के एक अच्छे साधक भी हैं। इधर वे 'महात्मायन' नाम से बापू पर एक महाकाव्य लिख रहे हैं। उसके कुछ अंश भी मुझे उनके मुंह से सुनने का सौभाग्य मिला है। मुझे ऐसा लगता है, मानों ज्ञानदेव की आत्मा उनमें बोल रही है। बोरकरजी की प्रतिभा बहुमुखी है। वे कवि के साथ-साथ विचारशील लेखक, संपादक, उपन्यासकार भी हैं। यद्यपि 'देवदासी' उनका तीसरा उपन्यास है तथापि उसे जो ख्याति प्राप्त हुई है उससे स्पष्ट हो गया है कि वह भारतीय भाषाओं के उच्चकोटि के उपन्यासों में से है। इस उपन्यास में जहां घटना-चमत्कार से हमारा मन अनुरंजित होता है वहां वह स्थान-स्थान पर रमता हुआ भी चलता है। उसे बार-बार पढ़ने को जी चाहता है।

'देवदासी' एक सामाजिक उपन्यास है। प्राचीन काल से चली आ रही देवदासी की प्रथा पर लेखक ने गहरी चोट की है। उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र कहा जाता है। अतः उसकी सबसे बड़ी विशेषता है पात्रों की सजीवता। मुझे यह कहते हुए हर्ष है कि 'देवदासी' के सारे पात्र हमें अपने पहचाने-से, परिचित-से लगते हैं और उनके साथ हमारी जबरदस्त सहानुभूति हो जाती है। शेवन्ती, हृषी, केशव, रमाअक्का, रवलूदादा, फ्रेड सभी अपनी-अपनी विशेषताएं रखते हैं। सबमें अपनी-अपनी स्वच्छन्द गति और संकल्प-शक्ति है। सूक्ष्म विवरण भूल जाने के बाद भी एक लम्बे अर्से तक वे हमारी स्मृति में सजीव-साकार रहते हैं। अपनी मानव-सहज दुर्बलता और प्रथा-जन्य परिस्थिति का मुकाबला करते हुए शेवन्ती किस प्रकार जीवन की उच्चता और पवित्रता की रक्षा करती है वह मन पर जबरदस्त असर डाले

बिना नहीं रहता। हमारे पुराण-साहित्य में जो स्त्री-चरित्र चित्रित किय गये हैं, उनमें शायद सीता ही सर्वोपरि है। उसके बाद भारतीय नारी का उच्चादर्श मुझे मराठी के प्रसिद्ध लेखक श्री वामन मल्हार जोशी के 'रागिणी' नामक उपन्यास में मिला । मेरा विचार है कि शेवन्ती भी उसी कोटि की लेकिन अपने ढंग की एक आदर्श नारी है। उच्च और प्रतिष्ठित कुल तथा अनुकूल वातावरण में जन्म लेकर अपने चरित्र और आदर्श को निभाना उतना कठिन नहीं है, जितना एक देवदासी के घर जन्म लेकर मानवोचित उच्च गुणों की रक्षा करना। कठिन परिस्थितियों में शेवन्ती गिरते-पड़ते और लड़खड़ाते हुए भी उनकी रक्षा करती है। हृषी को अपने घर रखकर उसकी परिचर्या करना उसका एक बड़ा साहसिक कार्य था। सेवा करते हुए उसने अपने को सदैव विकारों से अलग रखा और अन्त में रंजना के लिए जबरदस्त त्याग किया। इसी प्रकार अन्य पात्र भी अपनी-अपनी स्पष्ट छाप हमारे मन पर छोड़े बिना नहीं रहते। गोआ की हरी-भरी भूमि तथा वहां के धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण की पृष्ठभूमि में इन सारे पात्रों का रूप काफी निखर गया है। घटनाएं कल्पित होने पर भी वास्तविक लगती हैं और एक बार उपन्यास को हाथ में लेने के बाद उसे समाप्त किये बिना छोड़ने को जी नहीं होता।

कथावस्तु का संगठन इस कुशलता से किया गया है कि न तो कहीं कोई बात छूटी हुई लगती है, न असंगत ही प्रतीत होती है। उसके सभी अंगों में साम्य और समीचीनता है। घटनाओं की शाखा-प्रशाखाएं अपने मूल से तथा एक-दूसरी से सहज रीति से प्रस्फुटित होती हुई प्रतीत होती हैं। सारी कथा में एक ऐसा प्रवाह है कि वे पूर्वकथित घटनाओं का तर्क-संगत फल प्रतीत होती हैं। 'देवदासी' में कला और भाव-पक्ष का जितना सुन्दर समन्वय हुआ है उतना बहुत कम उपन्यासों में पाया जाता है। भाषा सजीव और प्रायः वाक्य चमत्कारपूर्ण हैं, जो लेखक की प्रतिभा का जीवित प्रमाण हैं। भाषा का चमत्कार और ओज शरद्‌बाबू की याद दिलाता है।

शास्त्रीय ग्रंथ का एक भाषा से दूसरी में अनुवाद करना उतना

कठिन नहीं होता, जितना उपन्यास का। इस उपन्यास की भाषा मराठी होने के साथ-साथ कथावस्तु का लीलाक्षेत्र गोआ प्रदेश है। गोआ का वातावरण, मराठी भाषा और वह भी एक मंजे हुए लेखक की बोलती और चलती भाषा, उसका अनुवाद करना सरल नहीं है। फिर मुझे आशा है कि यह अनुवाद हिन्दी-भाषियों को प्रिय होगा। स्वयं बोरकरजी ने इसे मराठी से मिलाकर देख लिया है, जिससे इसकी प्रामाणिकता में भी कोई कसर नहीं रह जाती।

मुझे खुशी है कि प्रिय बोरकरजी की यह प्रिय कन्या, अपना मराठी वेश उतारकर हिन्दी वेशभूषा में हिन्दी जगत के सामने आई और यदि मैं भूलता नहीं हूं तो इसके हिन्दी-अनुवाद की प्रथम प्रेरणा शायद मैंने ही उन्हें की थी। अतः इसके हिन्दी-रूपान्तर होने में मुझे उनसे भी ज्यादा खुशी हो रही है।

गांधी आश्रम, हटूंडी,
(अजमेर)

हरिभाऊ उपाध्याय

देवदासी

देवदासी

: १ :

वैशाख महीने के दिन थे। शाम का समय। धूप कम होती जा रही थी, लेकिन हवा की उमस ज्यों-की-त्यों थी। जमीन और धूल अभी तक गर्म थे। मार्ग निर्जन था। कही कोई बालक आमो का निशाना लगाकर उन्हें गिराने में मगन दिखाई दे जाता था। ऐसे मे गांव के एक पथरीले गेरुआ रास्ते पर धूल पर पैर रखता हुआ एक व्यक्ति बडी देर से लगातार चल रहा था और उसके पीछे-पीछे मजदूर सिर पर पेटी और हाथ मे भारी मछली लिये आ रहा था। वह व्यक्ति पारसी ढंग का बंद गले का कोट, जरी की किनारी का जामुनी रंग का साफा और कानों में पानीदार चमकते मोतियों की बाली पहने हुए था। हाथ में शीशम की लकड़ी और पैरों में पूना के लाल जूते थे। सारे ठाट-बाट को देखकर उसे पहचानने वाला कोई भी व्यक्ति दूर से ही कह सकता था कि यह दुबला-पतला, ऊंचा व्यक्ति और कोई नहीं, गोआ का स्वर्णकार अन्तासेठ है।

पिछले कितने ही दिनों से अंत्रूज तहसील के प्रत्येक मन्दिर के आंगन में एक-दो दिन ठहरता हुआ वह पैदल-यात्रा कर रहा था। जहां-जहां कोई मेला या कीर्तन होता, कथा-पुराण होता अथवा संगीत की महफिल जमी होती, अन्तासेठ बड़े उत्साह से पहुंच जाता था। उसका शरीर उम्र के कारण जितना थका था, जीवन के झंझटों से उसकी अपेक्षा कहीं अधिक थक गया था। लेकिन उसकी दृष्टि में चिर-तारुण्य था, क्योंकि वह एक कलाकार की दृष्टि थी।

अगर कहीं कोई चौपाया अधसूखे गढ़े में आधी आंखें बन्द किये बैठा हुआ दिखाई देता, आराम करता हुआ कोई गिरगिट आलस्य से शरीर

मोड़ता हुआ सूखी घास पर चलता हुआ दीख पड़ता, अथवा कोई ढीठ गिलहरी अधपके आम को कुतरती हुई दिखाई देती तो चकित दृष्टि से अन्तासेठ उसका इस प्रकार रसास्वादन करता, जिस प्रकार किसी नई चीज़ को पहले-पहल देखकर कोई सुकुमार बालक करता है। जब शराब का घड़ा सिर पर उठाये कोई तरुणी अथवा आम-कटहल का टोकरा उठाये कोई काले-कलूटे रंग का ग्रामीण सामने से आता दिखाई देता तो सामान के बोझ से उसके शरीर में हुई लय-बद्ध हलचल के कारण वह उस ओर ध्यान से ताकने लग जाता। सौन्दर्य-साधना के इस आनन्द में वह शरीर की थकावट अथवा मन का क्लेश पूरी तरह भूल जाता।

ऊपरी तौर से देखने वाले को ऐसा प्रतीत होता कि अन्तासेठ कोई बड़ा पैसे वाला, रसिक, तबीयत का शौकीन एवं मस्तमौला है। उसका सारा व्यवहार पहली ही दृष्टि में बनने वाली इस धारणा को पुष्ट करने वाला था, लेकिन आंतरिक रूप से वह बड़ा दुखी था। जवानी में ही उसकी पत्नी ने उसकी उड़ाऊ और शौकीन तबीयत से तंग आकर कुएं में गिरकर आत्महत्या कर ली थी; कमाने योग्य होशियार लड़का इस वृद्धावस्था में उसके काम में हाथ बटाने के बजाय, उल्टे उसपर ही अपने बीबी-बच्चों का बोझ डालकर बंबई में कहीं लापता हो गया था; उसकी लाड़ली बेटी जन्म-भर सुसराल के कष्ट भोग कर स्वर्ग सिधार चुकी थी और नाते-रिश्ते के लोगों ने समय-असमय रुपये हाथ-उधार लेकर अब उन्हें लौटाने से बचने के लिए मुंह दिखाना ही बन्द कर दिया था। जीवन में कभी भी पैसे की कमी न रहने के कारण अपनी कला-शक्ति के भरोसे उसने कर्ज लेकर भी वैसा ही ठाट-बाट बनाये रखा था; लेकिन अब उसे एकमात्र यही चिन्ता सता रही थी कि वह कैसे इज्जत के साथ कर्ज से छुट्टी पाकर हमेशा के लिए अपनी आंखें मूंद सकेगा? उसके पास जो थोड़ी-बहुत जमीन थी, उससे उसके नाती-पोतों का जैसे-तैसे निर्वाह हो सकता था, लेकिन इसके लिए जरूरी था कि अन्तासेठ अपना खर्चीला स्वभाव बदले; किन्तु वह अच्छी तरह जानता था कि मरने के पहले उसका वह स्वभाव बदलने वाला नहीं है।

जिस प्रकार व्यावहारिक दृष्टि से ऋण-मुक्त हुए बिना मरना अन्तासेठ के लिए संभव नहीं था, उसी प्रकार कला की दृष्टि से भी ऋण-मुक्त हुए बिना मरना संभव नहीं था। एक कल्पनाशील और कुशल कारीगर के रूप में एक ओर लिस्बन और दूसरी ओर ग्वालियर तक उसकी कीर्ति फैली हुई थी। पर अब वह पहले की भांति काम का अधिक बोझ सहन नहीं कर सकता था। अपने सांसारिक जीवन में असफल होने के कारण अब उसमें उतना उत्साह भी नहीं रहा था। एक ओर आमदनी कम हो गई थी, दूसरी ओर कर्ज बढ़ गया था। फिर भी बड़े-बड़े लोगों में उसका मान-सम्मान था। जब गोमन्तक के अनेक प्रसिद्ध मंदिरों में उसके हाथ की बनी हुई स्वर्ण मूर्त्तियां और अलंकार, उत्सवों के अवसर पर जगमगाने लगते थे तब मार्मिक रसज्ञों के मुंह से अन्तासेठ की प्रशंसा होती रहती थी।

लेकिन वह इतने से संतुष्ट नहीं था। वह कुछ ऐसी अद्‌भुत, अद्वितीय वस्तु का निर्माण करना चाहता था, जिससे अपनी कला से स्वयं उसकी आंखें तृप्त हो जायं, वह कृतकृत्य हो उठे और उसका नाम सदा के लिए अमर हो जाय। उसके ईर्ष्यालु रिश्तेदारों ने यह बात उड़ा दी थी कि अन्तासेठ ने देवताओं की मूर्त्ति बनाने में बेईमानी की, रत्नों के स्थान पर कांच के नग जड़ दिये और सोने में मिलावट कर दी, इसी कारण उसका सत्यानाश हो गया। लोगों ने इस बात को इधर-उधर फैला दिया। अन्तासेठ को यह सब-कुछ मालूम था। इसमें कुछ सत्यांश भी था। इसीलिए उसके हृदय का घाव और गहरा हो गया था। इस सारी व्यथा से मुक्त होने के लिए उसके पास अब एक ही उपाय बचा था और वह था किसी अद्‌भुत और अमर वस्तु का निर्माण करना।

सौभाग्य से ऐसा समय आ गया। कुछ दिनों के बाद जब वह फिर कर्ज मांगने के लिए कुण्डईकर के पास गया तो उस समय सान्तूबाबा ने उसे एकान्त में बुलाया और कहा—"अन्ताजी सेठ, तुम्हारे हाथ में इतनी ऊंची कला है, लेकिन उसकी परवा न करके तुम मौज उड़ाने लगे और कर्जदार बन गए। मैंने मित्रता का हाथ बढ़ाकर इसीलिए अबतक तुम्हारी मदद की

कि तुम बेफिक्र बनो और तुम्हारे हाथों कोई ऐसी चीज बने जो अमर रहे। जब मेरे घर की बहू-बेटियों की देह पर तुम्हारे बनाये गहने सुशोभित हो रहे हों तब तुम मुसीबत में दिन बिताओ, यह मुझसे देखा नही गया। लेकिन अब मैं आगे तुमको और रुपये नहीं दे सकूंगा। हमारी धन-संपत्ति इसीलिए है कि उससे गुणी और जरूरतमन्द आदमियों की कदर हो। मैंने तुम्हारा सारा कर्ज अपने ऊपर ले लिया, कोई दस्तावेज नहीं लिखवाया। इसीलिए न कि तुम्हारे कुल की प्रतिष्ठा और कला-शक्ति पर मुझे श्रद्धा थी। अब मैं तुमको एक आखिरी मौका देता हूं। तुम्हारी और मेरी जिन्दगी के थोड़े-से दिन बचे हैं। बहुत वर्षों से मेरी यह इच्छा रही है कि अपनी शांतादेवी की एक स्वर्ण-प्रतिमा बनवाऊं और जिस दिन वह मेरे घर से देवी की सेवा के लिए सिधारी, उसी दिन उसके नाम पर देवी का उत्सव किया जाय। तुम जितना कहो उतना सोना और जवाहर मैं तुम्हें दे दूंगा। तुम एक ऐसी मूर्त्ति तैयार करो, जिसे जी भरकर देखने के बाद मुझमें जीने का मोह बाकी न रहे। अगर तुमने इतना काम कर दिया तो समझ लो कि तुम्हारा कर्ज चुक गया और मैं जनम-जनम के लिए तुम्हारा कर्जदार बन गया। क्या तुम सौगंध खाकर मुझे ऐसा वचन दे सकते हो?" कहते-कहते सान्तूबाबा की खान्दानी आंखें, जिनमें कभी किसी ने आंसू नहीं देखे थे, डबडबा आईं।

अन्तासेठ, जो फिर से पैसे मांगने के कारण शरमिन्दा हो गया था, उनके इस असीम औदार्य से पानी-पानी हो गया। उनके पैरों पर हाथ रखकर गद्‌गद् स्वर में उसने शपथ खाकर वचन दिया, "बाबा, मैं जी-जान से आपकी इच्छा पूरी करूंगा। आपके मुंह से ईश्वर बोला है। आशीर्वाद दीजिए कि मुझसे आपकी इच्छानुसार सेवा हो सके।"

अन्तासेठ को इस प्रकार अकस्मात् पैर पकड़ते देखकर सान्तूबाबा चक्कर में पड़ गये। उनकी समझ में नहीं आया कि इस समय क्या कहें। अन्तासेठ को इस प्रकार बालकों की तरह विह्वल होते देखकर वे स्वयं भी गद्‌गद् हो गये और उन्होंने उसे उठाकर गले लगा लिया। कितने ही समय तक पुराने जमाने के वे दोनों बूढ़े बालकों की तरह रोते रहे।

जीवन के परम रहस्य के रूप में अन्तासेठ ने इस प्रसंग को अपने अन्तःकरण के अन्दर बन्द करके रखा था। मोह अथवा निराशा के प्रत्येक क्षण वह आंखें बन्द करके इस प्रसंग का दर्शन कर उससे प्रेरणा प्राप्त करता, आश्वासन पाता और समाधान का अमृत पान करता।

पिछले कितने ही दिनों से उसने जो भाग-दौड़ शुरू कर रक्खी थी वह इसी कांचोली-देवी की स्वर्ण-प्रतिमा तैयार करने के लिए किसी सौंदर्य-मूर्त्ति को ढूंढ़ने की आशा में। मार्ग में, गाने की महफिल में, नर्तकियों के समूह में, मंदिरों के प्रांगण में, सर्वत्र ही उसकी दृष्टि सौंदर्य-मूर्त्ति को ढूढ़ती थी। देखने वाले इस बात की मजाक उड़ाते थे कि बूढ़े अन्तासेठ की आंखें अब भी स्त्रियों के आसपास चक्कर लगाती हैं, लेकिन उसे इस बात की चिन्ता न थी। उसने अपने जवानी के दिनों में खूब मौज उड़ाई थी, लेकिन कला की उपासना के कारण उसके हाथों बने अलंकारों की तरह उसका अन्तःकरण भी तपकर सुन्दर, उज्ज्वल और तेजस्वी हो गया था। इस कारण लोकापवाद की चिन्ता उसे नहीं थी।

आज कवल-ग्राम में पुष्प-ताम्बूल की पंचमी थी। उत्सव में आसपास की तरुण सुन्दरियों का जमघट होने वाला था। वहां उसे अपनी भावी कला का नमूना अवश्य दिखाई देगा, इसी आशा से अन्तासेठ इस गांव में आया हुआ था।

आजतक उसने काफी दौड़-धूप की थी। संभव है, देवी ने उसकी सेवा स्वीकार कर ली हो और उसके फलस्वरूप उसने उसे दर्शन देने का निश्चय कर लिया हो। अपने सामने बिजली चमकती देखकर आदमी जिस प्रकार स्तम्भित हो जाता है, वही अवस्था अन्तासेठ की इस समय हो रही थी।

नाले के ऊपर पार करने के लिए पड़े लकड़ी के कामचलाऊ पुल को पार करके वह कुछ दूर आगे बढ़ा ही था कि पचास कदम के फासले पर एक छोटा किन्तु साफ-सुथरा विलायती खपरेलों का चूने का मकान दिखाई दिया। उसके सामने गोबर से लिपा हुआ सुन्दर आंगन था। एक कोने में

सफेद पेड़ फूलों से लदा खड़ा था । आंगन के आगे के दोनों कोनों में सुपारी के दो गुच्छेदार पेड़ आने वालों का सत्कार कर रहे थे और चौथे कोने में एक हरी वल्लरी तारों की जाली में कसीदा-सा बनाती हुई लाल खपरैलों पर हरी बिछायत फैला रही थी । आंगन के बीचों-बीच ईंटों का बना हुआ एक तुलसी का चौंतरा था। उसपर लाल मिट्टी के अठपहलू गमले में तुलसी दलों पर मंजरियां डोल रही थीं । ऐसे पवित्र स्थान पर मूर्त्तिमान् देवी के समान एक शुभ्र-वसना युवती पश्चिम की ओर मुंह करके सूर्य को अर्घ्य दे रही थी । सूर्य ने भी उसे स्वर्ण किरणों का प्रतिदान किया था, इसी कारण वह स्वर्ण-प्रतिमा की तरह चमक रही थी । उसके शरीर पर कोई अलंकार नहीं था । स्नात-केशों के नीचे खुले हुए कानों के आरक्त अग्रभाग कर्णफूल के अभाव में बड़े सुन्दर दिखाई दे रहे थे । अंजलि ऊपर उठाते हुए नीचे उतर जाने वाली उसकी कांच की बारीक लाल चूड़ियां उसके हाथों की सुकुमारता को और बढ़ा रही थीं । भाल पर उसने सादा कुंकुम ही लगाया था । धूप की किरण के कारण वह बड़ा अच्छा लग रहा था । काली-काली भौहों के नीचे अर्ध-मीलित नेत्रों का वैभव, जिसपर घनी पलकें मुग्ध आवरण डाले हुए थीं, अनावृत होकर कब दिखाई देगा, यही विचार अन्तासेठ के मन में चक्कर काट रहा था । उस तरुणी के चेहरे का विरक्त एवं निर्मल भाव देख-कर अन्तासेठ को ऐसा लगा, मानो प्राचीन काल की कोई पतिव्रता स्त्री सती होने के लिए सूर्यनारायण का अन्तिम दर्शन कर रही हो । दूसरे ही क्षण उसे अपनी दिवंगत पुत्री का स्मरण हो आया और उसकी आखें भर आईं ।

लेकिन यह सौंदर्य-साक्षात्कार कुछ ही क्षणों तक टिक सका । तुरन्त वह तरुणी पूजा-पात्र उठाकर उस छोटे-से घर में अदृश्य हो गई ।

अनजाने अन्तासेठ के पैर उस घर की ओर चल पड़े । बहुत वर्षों पहले इसी कवल-ग्राम में और इसी फूलवन्ती के घर में अन्तासेठ ने सुख की कुछ घड़ियां बिताई थीं । अब घर का रूप बदल गया था, पर आकार वही था । अन्तासेठ के मन में प्रश्न उठा कि क्या देवदासी फूलवन्ती की कोई रिश्ते-दारिन देव-अर्चना के लिए बंबई से आई है ?

बरामदे में सामान रखकर अन्तासेठ ने आवाज लगाई, "फूलवन्ती, ओ फूलवन्ती . . . . ।"

"आई । कौन है ?" अंदर से आवाज आई ।

"मैं हूं, अन्तासेठ । . . . "

अन्तासेठ ने कोट और साफा उतारकर दीवार की खूटी पर टांग दिये और मजदूर को पैसे देकर चबूतरे पर बैठ गया । विचार करने लगा कि अभी उसने जिस युवती को देखा है उसके बारे में जानकारी कैसे प्राप्त करे । इतने में "शेवन्ती, ओ री शेवन्ती—ऐसा लगता है कि यह भक्तिन फिर मंदिर चली गई"—आवाज सुनाई दी । घर में अन्दर कुछ समय तक इसी तरह उसकी बड़बड़ाहट चलती रही । उसी तरह बड़बडाती वह बाहर आई । इतने समय में उसने अपने बालों में कंघी कर ली थी, साड़ी बदल ली थी, बिन्दी ठीक कर ली थी । तरुणी के हाव-भावो में अपनी उम्र छिपाती हुई वह आई ।

"बहुत दिनों में मेरी याद की !"

"क्या बहुत दिनों में याद आने पर ही कोई आता है ?"

तभी फूलवन्ती की दृष्टि सामने रखी हुई मछली पर पड़ी । ढलती हुई धूप में वह मछली चांदी की तरह चमक रही थी । अब भी उसके गाल ऊपर-नीचे होकर सांस ले रहे थे ।

"बड़ी दया की आपने मुझ पर ।" उस मछली के दर्शन से प्रसन्न होकर फूलवन्ती ने कहा ।

"मैं तो वैसे ही किसी के घर खाली हाथ नहीं जाता । फिर हम तो सेठ ठहरे । हमारा तो यह स्वभाव ही है कि इस तरह की मछली देख लेने पर एक बार तो अपनी कान की बाली रखकर भी उसे खरीद लेते हैं । फिर तेरे हाथ की बनी चीजें खाने को मिलेंगी, यह बात भी तो थी ही ।"

"तो क्या अभी आपका भोजन नहीं हुआ है ?"

"तुझे तो मालूम ही है कि दिन ढले बाद हमारे भोजन का सिलसिला शुरू होता है । वैसे रास्ते में दो-चार आम चूस लिये हैं । अब तो रात

को ही भोजन करूंगा तो चल जायगा ।"

"नहीं-नहीं, ऐसा कभी हो सकता है ? चलिए उठिए । घड़ा और रस्सी कुएं पर है । स्नान कर लीजिए । तबतक मैं आग जलाकर भोजन का सामान इकट्ठा करती हूं । आपके लिए अलग साफ बरतन है ही । बस चूल्हे पर दाल-भात चढ़ा देने का ही काम आपको करना है । इतने में शेवन्ती आ जायगी । वह आपकी सेवा मे जरा भी चूक नही होने देगी ।"

शेवन्ती के संबंध में जानकारी प्राप्त करन की उत्सुकता अन्तासेठ के मन में पैदा हुई, पर उसे उसने दबा लिया ।

जब अन्तासेठ गीले कपड़े पहने देवी-स्तोत्र का धीरे-धीरे पाठ करता हुआ कुएं से घर आया तब कमरे का सारा ढंग-ढांचा देखकर उसकी आंखें तृप्त हो गई । चूल्हा जल चुका था । उसके प्रकाश में सारे तांबे-पीतल के बरतन चमक रहे थे । चावल बिनकर और धोकर रखे थे । सारा सामान तैयार था । चांदी के फूल जडे हुए कत्थई रंग के पट्टे पर तह किया हुआ रेशमी पीताम्बर और सामने ही संध्या-पूजा का सामान सजा था ।

अन्तासेठ ने दाल-भात के बरतन चूल्हे पर चढ़ा दिये और संध्या एवं जप-जाप करके उसे उतारने लगा । इसी समय—"दादा, किसी चीज़-वस्त की जरूरत हो तो मुझसे कहियेगा । मैं यही हूं ।" ये मीठे शब्द उसे सुनाई दिये । अन्तासेठ ने चौककर पीछे देखा । उसे ऐसा भ्रम हुआ मानो उसकी लड़की ने ही उसे आवाज दी हो । वह कुछ बेचैन-सा हो गया ।

"मुझे 'दादा' कह कर पुकारने के लिए तुझे किसने कहा है ?"

"क्या मुझमें इतनी भी बुद्धि नही है ?" शेवन्ती ने हॅसते-हॅसते उत्तर दिया ।

"लेकिन तुझे यह कैसे मालूम हुआ कि मेरे बेटे और नाती मुझे 'दादा' कहते हैं ?"

"तब तो अच्छा हुआ । मै भी आपकी बेटी और पोती बन गई !"

"तू तो बड़ा मीठा बोलती है, री !"

"मैं देवदासी जो हूं ।"

इसी समय काट-साफकर रखी हुई मछली की भगोनी लेकर फूलवन्ती आई। वह कुछ चिढ़कर बोली, "देखो, यह अपनेको देवदासी कहती है, देवदासी! सेठजी, आप ही बताइये कि यह देवदासी दिखाई देती है या जोगिन? इस कलियुग मे सबकुछ उल्टा हो गया है। ब्राह्मण और पुरोहितों की स्त्रियों को हम देवदासियों के रंग-ढंग पसन्द आने लगे हैं और हमारी इन देवदासी लडकियों को ब्राह्मण बनने की इच्छा होने लगी है। ये सब भीख मागने के लक्षण हैं, भीख मांगने के।"

"तो इसमें क्या बुरा हुआ? बंबई में अब तुम लोगों के विवाह होने लगे हैं। अब 'शेंस विधि'* भी कानून द्वारा बन्द हो गई है। तुम्हारी दुर्गति भी बन्द हो जायगी और हम लोगों का सत्यानाश भी रुक जायगा।" अन्तासेठ ने कहा।

मां को यह उत्तर मिलता हुआ देखकर शेवन्ती भौंहे चढाकर अर्थ-पूर्ण हँसी हँसी। इससे फूलवन्ती का क्रोध और भी बढ़ गया। "बाल-बच्चों के लिए काफी धन-दौलत इकट्ठी करके रख लेने के बाद हमको ऐसा उपदेश देने में नेताओं का क्या बिगडता है? मुझ जैसी गरीब देवदासी की लड़की के साथ सेहरा बांधने के लिए क्या इन नेता कहे जानेवालो में कोई तैयार है? आप कहते हैं कि दुर्गति और सत्यानाश रुक जायगा! कुछ नहीं रुकेगा, वह तो उल्टा बढ़ेगा। जिसे हम आजतक धर्म मानकर कर रही थीं, उसे अब अधर्म मानकर करना पडेगा और अन्त में हमारे कुल का नाश हो जायगा। ये सब ब्राह्मणों की चालें है। हमारी यह पढ़ी-लिखी छोकरी भी क्या है! यह भी ब्राह्मण की ही सन्तान है। उतनी ही घमंडी, उतनी ही चालाक!"

फूलवन्ती की कथा को बीच में ही रोककर अन्तासेठ ने पूछा, "किसी जमाने में ब्राह्मणों के लिए फिरंगी तथा सेठों और भाटियों को तुम्हीं दुत्कारती थीं न? क्या तुम्हें उसकी याद है?"

***देवदासी-समाज नें प्रचलित एक प्रकार की विवाह-पद्धति, जिसको कानूनी अथवा धार्मिक समर्थन प्राप्त नहीं है।**

रंग में आकर अन्तासेठ को युवावस्था के उस प्रसंग का वर्णन करते देखकर फूलवन्ती का पारा एकदम चढ़ गया। आंखें निकालते हुए उसने इशारा किया कि 'यहां शेवन्ती है', फिर बोली, "अन्तासेठ, इस घर में ब्राह्मण का नाम भी मत लो। यह फूलवन्ती काफी दुखी और परेशान होने के बाद ही ऐसी बातें कह रही है। इन ब्राह्मणों ने तो हमारा सब तरह से सत्यानाश कर दिया है। जब घर आते हैं तो कितने मीठे बोलते हैं, कितना प्रेम दिखलाते हैं, लेकिन कहीं रास्ते में पांच-सात आदमियों के बीच हमने कहीं पुकारा तो ऐसा नाटक करेंगे मानो कोई जान-पहचान ही न हो।"

अन्तासेठ ने देखा कि बोलते-बोलते उसका गला भर आया है, उसने भोजन परोसते हुए कहा, "अब उस बात को जाने दे। हां, तेरा कैसा-क्या चल रहा है ?"।

"मेरा दुर्भाग्य है, अन्तासेठ। आपको क्या बताऊं ? ईश्वर ने इसे परी जैसा रूप दिया है, गंधर्व जैसा गला दिया है, लेकिन इसकी नाल तो मंदिर में गड़ी है। बड़े-बड़े शौकीन लोग इसकी चितवन के इच्छुक रहते हैं, लेकिन आई लक्ष्मी को ठोकर मारकर यह देवी की तरह अपनी जवानी को जला रही है। तुम जैसा कोई मेहमान आता है तो इसे साज-सिंगार करके तथा पानदान लेकर आगे बढ़ना चाहिए। मुझ जैसी को जितना भोग-विलास किया उसीको काफी समझकर, बाकी की उम्र भगवान् की सेवा में लगाने के लिए मंदिर में जाकर सेवा-भक्ति करनी चाहिए। लेकिन उसके बजाय यह तो मंदिर में झाड़ लगाती रहती है और मुझे आप जैसों के सामने इस तरह चेहरे पर पाउडर पोतकर बैठना पड़ता है। किसी-किसी का भाग्य ही ऐसा होता है, अन्तासेठ !" इतना कहकर फूलवन्ती ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ी।

मां की इस बात-चीत का रुख अन्तासेठ की अपेक्षा उसकी ओर अधिक है, यह बात शेवन्ती से छिपी न रही। उसने सोचा कि अगर मैं यहां अधिक समय तक ठहरी या कुछ उत्तर दिया तो घर-आये मेहमान के सामने एक अप्रिय प्रसंग उपस्थित हो जायगा और अन्तासेठ का मन भोजन से हट

जायगा। इसलिए उसने वहां से चले जाने का बहाना ढूंढ़ लिया। बोली, "दादा, मैं आपके लिए हुक्का भरकर तैयार करती हूं, और पान भी। आप कैसा पान पसन्द करते हैं ? तीखा या मीठा ?"

"मीठा।" अन्तासेठ ने उत्तर दिया।

शेवन्ती के चले जाने पर फूलवन्ती ने कहा, "जब कभी मैं ऐसा कुछ कहती हूं तो यह लड़की इसी तरह का बहाना बनाकर इधर-उधर चली जाती है। मैं तो इसका मन फेर नहीं सकती। इज्जत-आबरू के साथ गुजर-बसर करना बड़ा कठिन हो गया है। इस लड़की का मन इतना मुलायम है कि जरा-सी कोई चुभने वाली बात मुह से निकलती है तो यह अन्दर-ही-अन्दर जल जाती है।"

"तो फिर मैं तुम्हें इसका एक उपाय बताता हूं, जिससे कुछ महीनों के लिए तुम्हारे और मेरे दोनों के लिए सुविधा हो जायगी।" अन्तासेठ ने कहा। "अगर यहां कहीं आसपास ही एरण्ड आदि औजार लेकर बैठने की जगह मिल जाय तो मैं काम करना शुरू कर दूंगा। तुम आज की ही तरह मेरे भोजन का डौल जमा देना। जबतक मेरा काम पूरा होगा तबतक तुम्हारे घर का खर्च मैं उठाऊंगा। घर पर हजारों झंझटों के कारण मन लगाकर काम करना मुश्किल हो जाता है। है मंजूर ?"

गद्गद् होकर फूलवन्ती ने कहा, "ऐसा कहना चाहिए कि माता दुर्गा मेरे ऊपर निहाल हो गई है।"

"शेवन्ती की भक्ति कभी अकारथ नहीं जा सकती।" अन्तासेठ बोले।

घर के पिछवाड़े की झोंपड़ी में अन्तासेठ की सारी व्यवस्था कर देने का निश्चय हो गया। अपनी एक-मात्र इच्छा के पूर्ण होने के सारे साधनों को इस प्रकार योगायोग से इकट्ठे होते देखकर अन्तासेठ को बड़ी खुशी हुई। उसे विश्वास होने लगा कि जिस देवी ने ऐसा योग बिठा दिया, वही मेरे हाथों से अपनी इच्छानुसार सेवा भी करवा लेगी, लेकिन दूसरे ही क्षण उसका पितृ-हृदय जाग्रत हो गया।

लोगों की ऐसी धारणा है कि जिस लड़की की छवि पर देवी की प्रतिमा

तैयार की जाती है वह असमय में ही मर जाती है अथवा उसका सत्यानाश हो जाता है। अन्तासेठ की अपनी बालिका की जो दशा हुई थी और इसी कारण उसका जिस तरह हृदय-द्रावक अन्त हुआ था, उससे अन्तासेठ की भी ऐसी धारणा बन गई थी। "फूलवन्ती के घर में उसके हाथ का अन्न खाते हुए उसकी एकमात्र बालिका के लिए चिता तैयार करने वाला मैं कैसा निर्दय जल्लाद हूं!" यह विचार अन्तासेठ के मन में उठा। उसका हृदय बेचैन हो गया और थाली वैसी ही छोड़कर भूख न होने का बहाना करके वह उठ गया।

जब अन्तासेठ बरामदे में आकर बैठ गया तो शेवन्ती उसके लिए हुक्का तैयार करके चिलम फूकती हुई आई। अन्यमनस्क भाव से दो-तीन हलके कश खीचकर उसने एक कश जोर से खींचा। ठसका लगा। आंखों में पानी भर आया। पर यह कहना कठिन था कि इसमें शेवन्ती का विचार करके कितना पानी आया था, क्योंकि उन दोनों चेहरों के बीच हुक्के के धुएं का बादल कितने ही क्षणों तक घुमड़ता रहा था।

: २ :

वस्तुतः अन्तासेठ को जिस चीज की जरूरत थी वह उसे मिल गई थी। अब मन्दिर में कीर्त्तन के लिए जाने की आवश्यकता न थी; परन्तु उसके कलाकार हृदय में नया ही क्षोभ उमड़ रहा था। उसे यह बात सहन नहीं होती थी कि उसकी कला की भट्टी में शेवन्ती जैसी लड़की जलकर भस्म हो जाय, पर उसे छोड़कर किसी और को तलाश करने के लिए भी उसका मन तैयार नही हो पाता था। बालू मे पड़ी हुई जीवित मछली की तरह उसका मन तड़प रहा था। वह लगातार करवटें बदल रहा था। शुक्ल पंचमी की मधुर चांदनी चूने के बने हुए तुलसी-घर और उसके आस-पास सुन्दर विधवा के मुक्त हास्य की भाति उदासीनता का प्रसार कर रही थी। अन्तासेठ को लगा कि उसके सामने जो तुलसी-घरा है, वह मानों किसी गोपी की समाधि

है। इस आशा से कि देवी के दर्शन तथा मंदिर में कीर्त्तन सुनने से मन की व्याकुलता कुछ कम होगी, वह साफा और कोट पहनकर बाहर निकला। सफेदी के कारण बहुत ही उज्ज्वल दिखाई देने वाला वह तालाब, वह छज्जा, दीप-रत्नों से सुशोभित दीपस्तंभ और अग्रशाला के विस्तीर्ण आंगन में स्वर्ण-कलश से सज्जित तथा साम्राज्ञी की भांति शान से बैठा हुआ वह शांत, सुन्दर देवालय, अन्तासेठ ने आंख भरकर देखा। हाथ में मौलश्री तथा दूसरे प्रकार के पुष्पों की माला और गजरे लेकर उसने मन्दिर में प्रवेश किया। उस समय झाड-फनूस की जगमगाहट के बीच कीर्त्तन चल रहा था। दीप-माला की असंख्य ज्योतियां दुर्गा के मुख-मंडल के शांत व सुनहरे सौंदर्य के दर्शन करा रही थी। अन्तासेठ ने गद्‌गद् हृदय से कलह-विनाशिनी मंगलदायिनी आदिमाता के दर्शन किये। कितनी ही देर तक उसने आंखें मूंदकर प्रार्थना की, अनंतर साष्टांग प्रणाम किया। उसने अपने ही हाथों अपने गाल पर कई चांटे लगाये, जमीन पर सिर टेका और प्रसाद लेकर श्रोताओं में जाकर बैठ गया। सभा-मंडप के दोनों ओर गृहस्थ और स्त्रियां नाना शृंगार किये बैठी थी। प्रकाश के उस शांत सरोवर में खिले बहुत-से सजीव सौंदर्य-कमल उसने बड़ी बारीकी से देखे, लेकिन उसे इस बात का विश्वास हो गया कि कपूर की शुभ्र ज्योति की भांति बीच-बीच में दीपक की बत्ती ऊंची करने के लिए घूमने वाली उस आभूपण-विहीना किन्तु स्वर्ण-सी चमकने वाली शेवन्ती की समता करनेवाली और कोई नही है।

कीर्त्तन का आनन्द बढ़ रहा था। संतवाणी की कड़ी गीत के मधुर आलाप मे रस के सोपान पर चढ़ रही थी और तप्त अन्तःकरण पर गंधोदक के छिड़काव से अन्तासेठ का मन निश्वासें छोड़ रहा था। प्रकाश, सौंदर्य और स्वर-माधुर्य की त्रिविध आभा में से भक्ति के स्वर्ण कमल की एक-एक पंखड़ी खिल रही थी और उसके ऊपर विराजमान देवी की सजीव मूर्त्ति अन्तासेठ के अन्तःचक्षु के सामने अनन्य एवं असाधारण लावण्य के साथ दिखाई देने लगी। सुख-दुःख की लौकिक कल्पना और जीवन-मरण के मानव-निर्मित विकल्प कुछ क्षण में कहीं विलुप्त हो गये। उस क्षण अन्तासेठ संसारी

आदमी नहीं था। दुर्गा और शेवन्ती के बीच की द्वैत-भावना जैसे उसके मन से समाप्त हो गई थी। दुःख और मृत्यु की कल्पना का नाम शेष भी न रहा था। आनन्द, अमरत्व और प्रकाश एकाकार हो गये थे।

केवल कला—शुद्ध कला—उसके सर्वांग में समाकर आंखों के रास्ते झर रही थी।

जब अन्तासेठ संभला तो उसने संकल्प किया कि कल देवी के सामने शकुन लिया जाय और यदि उसने आदेश दिया तो सब भले-बुरे का भार उसीपर डालकर काम का प्रारम्भ कर दिया जाय। उसने प्रार्थना की, "हे माता, मेरी बची-खुची उम्र शेवन्ती को दे दो। अपनी स्वर्ण-प्रतिमा के प्रतीक-स्वरूप यदि तुम इसको पसंद करती हो तो मेरा विश्वास है कि तुम उसका कल्याण किये बिना नहीं रहोगी। तुम पूर्णरूप से दयामयी हो। अपने पाप-पुण्य का भार मैंने तुम्हारे सिर पर डाल दिया है। मेरे पाप के लिए तुम उसे दंड मत देना।"

इतनी प्रार्थना करने के बाद अन्तासेठ घर लौट आया। उस समय उसका मन काफी शांत हो गया था।

दूसरे दिन दोपहर के समय अन्तासेठ ने देवी के सामने शकुन लिया। देवी के आसन के चबूतरे पर रखे हुए ताम्रपट पर लाल रंग की छोटी और सुन्दर कलियां पंक्तियों में रखी हुई थीं और उनके बीच-बीच में छोटे और सुन्दर फूल थे। ताम्रपट के दाहिनी ओर सुन्दर आकार की एक दीपदानी मन्द-मन्द जल रही थी। अन्तासेठ की ही तरह और भी कितने ही लोग अपने-अपने शकुन लेने के लिए व्यग्र भाव से सभा-मंडप में बैठे हुए थे और केवल पानी से जिलाई हुई कलियों और पंखड़ियों द्वारा बोली जाने वाली वाणी का चमत्कार आश्चर्य-चकित अन्तःकरण से देख रहे थे। कुछ क्षणों तक चारों ओर निस्तब्ध शांति फैली रही।

अन्तासेठ ने सबसे पहले दया का शकुन लिया। परम्परागत भाषा में जिस प्रकार बालक माता से बोलता है, उसी तरह पुजारी देवी से बोलने लगा। दस-पांच क्षण बीतते-बीतते दाहिनी ओर की पांचवीं कली एकदम

नीचे गिरी ।

पुजारी बोला, "सेठजी, आप बड़े भाग्यवान हैं । आपके ऊपर देवी की पूर्ण कृपा है । दूर-दूर के लोग शकुन के लिए यहां प्रतीक्षा करते हुए बैठे हैं । अब आप अपने मन की बात कहिए ।"

"हे देवी, तेरी सेवा का संकल्प तेरे ही चरणों के पास रहकर पूरा करने के लिए आया हूं । तू सबकुछ जानती है । जिसके मुख से तू बोलती है, जिसके रूप के द्वारा तूने मुझे दर्शन दिया है, वह तेरी ही बच्ची है । उसका बुरा-भला करके क्या तू मेरे हाथों अपनी सेवा करवा रही है ? दिल खोल-कर मुझसे साफ-साफ कह दे । यदि तुझे यह सब स्वीकार हो तो मुझे दाहिनी ओर का शकुन न दे ।" अन्तासेठ ने कहा ।

पुजारी ने फिर से पुष्पपट को ठीक किया । अन्तासेठ के प्राण मानों आंखों में आ गये । उसे प्रत्येक क्षण युग जैसा प्रतीत होने लगा । सिन्दूर लगे हुए सिर की तरह लाल-सुर्ख कलियों के ताम्रपट के अतिरिक्त उसे और कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था ।

परीक्षा-फल सुनते समय किसी भोले-भाले बालक का दिल भी इतना ज्यादा न धड़का होगा । अन्तासेठ का सर्वस्व मानो सुई की नोंक पर झोंके के साथ गोल चक्कर खा रहा था ।

काफी समय बाद आखिर एक कली गिरी । अन्तासेठ का मन शांत हुआ । उसने संतोष की एक दीर्घ सांस ली ।

पुजारी ने देवी की इस मूक भाषा का आलंकारिक भाषा में स्पष्टीकरण किया । उसने कहा, "सेठजी, जरा देर लगेगी, पर तुम्हारा संकल्प जरूर पूरा होगा । देवी के इन शब्दों पर आंख बन्द करके विश्वास करो और काम में लग जाओ । लो, इन शुभ कलियों को घर में पूजा के पात्र में रख दो और प्रतिदिन काम प्रारम्भ करने के पूर्व देवी का स्मरण कर लिया करो ।"

अत्यन्त विनीत भाव से अन्तासेठ ने वे कलियां अपनी अंजलि में लेलीं और उल्लसित मन से घर लौट आया । घर पहुंचने पर उसने शेवन्ती को

आवाज दी और उसके हाथ में उन कलियों को देते हुए कहा, "यह देवी का शकुन है। इसे अपने घर के देवालय के एक खाने में रख दे और रोज सवेरे स्वयं वहां अगरबत्ती जला दिया कर। रात के समय तेरा भजन पूरा हो जाने पर मैं संकल्प का नारियल रख दूगा और कल से काम करना प्रारम्भ कर दूँगा। जब तुझे फुरसत हुआ करे तब मेरे काम करने के स्थान पर बैठ जाया करना। तेरे सहवास से मुझे काम की थकावट अनुभव नहीं होगी। काम देखकर तेरा समय भी अच्छी तरह कट जायगा। माला गूथने या सीने-पिरोने का काम भी वहीं किया करना।"

अन्तासेठ के प्रत्येक शब्द में जो पितृवात्सल्य टपक रहा था उसने शेवन्ती के हृदय को स्पर्श किया, उसका बाल-हृदय कांप उठा। देवदासी की लडकी के पिता होता ही नहीं है। शेवन्ती की मां थी, लेकिन दृष्टि-भेद के कारण दोनों में एक प्रकार का विरोध उत्पन्न हो गया था। इस कारण उसके लिए मां होने पर भी न होने जैसी ही थी। दुनिया में और अपने हृदय में उसने जो संघर्ष छेड़ रखा था, उसमें थक जाने पर आश्रय पाने के लिए जिस आधार की आवश्यकता थी, वह उसे कहीं भी दिखाई नहीं देता था। उसे अभी ऐसा वत्सल अन्तःकरण मिला ही नहीं था, जो उसके हृदय की व्यथा को पहचाने, उसके अन्दर के मांगल्य का आदर करे और कठिनाई के समय उसका मार्ग-दर्शन करे। अतः उन कलियों को अपने हाथ में लेते समय उसे ऐसा लगा, मानो पिता-पुत्री के सम्बन्ध का एक रेशमी धागा उन दोनों को बांध चुका है। उसका हृदय यह कल्पना करके उमड़ आया कि जात-पांत और ऊंच-नीच की भावना को भूलकर अन्तासेठ ने उसे अपनी पुत्री समझकर देवी के प्रसाद जैसी अत्यन्त मंगलकारी वस्तु सौंपने के लिए पात्र माना। गीले नेत्रों से अन्तासेठ के चेहरे की ओर देखते हुए उसने कहा, "दादा!"

उस भाव-भरे सम्बोधन से अन्तासेठ को ऐसा लगा, जैसे उसके पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई हो। उसके मुह से निकला, "चाहे जिस समय मुझे 'दादा' मत कहा कर।" और सिर का साफा उतारकर उसे हाथ में गड़ीमुड़ी करके वह भौचक्का-सा होकर वहां से चला गया।

"चाहे जिस समय !" शेवन्ती अपने आप से ही कह बैठी । अन्तासेठ के इस विचित्र व्यवहार से उसे कुछ क्षण बडा अचम्भा हुआ, लेकिन थोडी ही देर बाद उसे सबकुछ मालूम हो गया । बेचारा अन्तासेठ अपने मुह से निकलनेवाले शब्दो के कारण स्वयं पर ही चिढ़ रहा था

× × ×

दूसरे दिन से अन्तासेठ का काम नियमित रूप मे शुरू हो गया । काम-काज का सारा सामान इकट्ठा कर लिया गया । अंगीठियो मे अंगारे दहकने लगे । प्रातः-सायं एरंड पर पडने वाले छोटे-बडे घनों की आवाज सुनाई देने लगी । ग्राम के उस शान्त वातावरण में जीवन की हलचल शुरू हो गई और शेवन्ती के भावभरे सहवास से अन्तासेठ की कला में नवीन जीवन का संचार होने लगा ।

जब अन्तासेठ अपना काम करता, शेवन्ती सलमा-सितारा अथवा सिलाई का काम लेकर पास के चबूतरे पर बैठी रहती । काम करते समय कभी तो उनके सुख-दुःख की बात होने लगतीं और कभी घंटों खामोशी में बीत जाते; लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता जाता था, उनकी आत्मीयता अधिकाधिक बढ़ती जाती थी ।

अन्तासेठ के आगमन से मां-बेटी के बीच का विरोध कम हो गया और घर में शाति के साथ हिलमिल कर रहने की भावना भी बढ़ने लगी ।

फूलवन्ती और अन्तासेठ की घनिष्टता हो गई है, लेकिन यह बात गोल-मोल ढंग से क्यों ? सारा गांव कहता था कि उसने उसे 'रख' लिया है । यदि किसीने व्यंग में यह बात कही थी तो अन्तासेठ ने उससे इंकार नहीं किया, उल्टे उसकी प्रतिक्रिया ऐसी होती थी कि वह बात जड़ पकड़ ले । लेकिन इसमें तनिक भी सचाई नहीं थी । इसलिए फूलवन्ती के मन में अन्तासेठ के लिए आदर था, फिर भी वह इस तरह बोलती थी, जिससे लोगों के उस विचार की पुष्टि हो । अपनी जाति के लोगों में जो दीनता आ गई थी, उसे दूर करने के लिए जैसे उसने एक चतुराई-भरी चाल चली थी ।

शेवन्ती ने मां की यह स्वार्थभरी चाल पहचान ली थी और अन्तासेठ

के निर्मल स्वभाव से तुलना करने पर उसे उसकी यह वृत्ति बड़ी निन्दनीय लगती थी । अन्तासेठ से उसकी घनिष्टता जैसे-जैसे बढ़ती जाती थी, उसके मन में मां के लिए चिढ़ भी बढ़ती जाती थी। अन्तासेठ की उदारता के कारण घर में किसी चीज की कमी न थी । भोजन के पदार्थों में वृद्धि हो गई थी, लेकिन जैसे प्रत्येक ग्रास शेवन्ती के गले में चुभता था। मां के इस व्यवहार को सुधारने के लिए वह प्रयत्न करती थी, पर साथ ही इस बात की सावधानी भी रखती थी कि कही अन्तासेठ के मन से वह उतर न जाय। लेकिन बाद में तो उसका मन हटता ही गया। वह अधिक गंभीर होने लगी।

दिन-पर-दिन बीत रहे थे। अन्तासेठ के काम की गति बढ़ रही थी। आषाढ़ की वर्षा की मंद हवा के कारण मां-बेटी के बीच भावनाओं की उदासीनता अधिक गहरी हो गई।

फूलवन्ती को इस विषमता की जानकारी थी। उसे इस बात से बहुत बुरा लगता था कि शेवन्ती अपने सुख-दुःख की बात उसके बजाय अन्तासेठ से करती है। एक प्रकार की सूक्ष्म ईर्ष्या उसके मन में पैदा हो गई थी। उसने अन्तासेठ से कई बार कहा था कि अपने धंधे में लग जाने के लिए वह शेवन्ती का मन फेर दे, लेकिन कभी तो उसने उसकी बात उड़ा दी और कभी जल्दी न करने के लिए उल्टे उसे ही उपदेश दिया। इन सब बातों के कारण वह अन्दर-ही-अन्दर जल रही थी।

अन्त में एक रात को मां-बेटी की यह दबी हुई भावना उमड़ पड़ी। दोनों में काफी वाद-विवाद हो गया। अन्तासेठ को गहरी नींद में सोया हुआ समझकर उन दोनो में कहा-सुनी हो गई।

लेकिन अन्तासेठ सोया नही था। उम्र के कारण कहिये या आन्तरिक चिन्ता के कारण, उसे कभी गहरी नींद आती ही नही थी। उनकी बातें उसके कान में पड़ीं। मां बेटी को धंधे में लगाना चाहती है और बेटी इसके विरोध में है, यह बात तो उसे मालूम हो गई थी, लेकिन कुछ शब्दों का पूरा मतलब उसकी समझ में नहीं आया। यूरोपियन न्यायाधीश, उसका चेक आदि, कितनी ही बातें उसकी समझ में न आई। उसका मन उलझन में पड़ गया।

वस्तुतः उसकी वृत्ति दूसरे के घर के छिद्र देखने की नहीं थी, लेकिन उसकी निगाह में शेवन्ती पराई नहीं थी। उसका भविष्य अन्तासेठ की चिंता का विषय था।

दूसरे दिन यह देखकर कि आसपास कोई नहीं है, बड़ी कुशलता से तैयार की हुई सोने की चूड़ियां अन्तासेठ ने अपने हाथ से शेवन्ती के हाथों में पहना दी और बड़े संतोष के साथ उसने उसे सिर से पैर तक देखा। जब फूले हुए श्वेत चम्पे की पार्श्व-भूमि पर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करती हुई शेवन्ती को उसने पहली बार देखा था तभी यह प्रेम-पूर्ण कल्पना उस दुःखी पितृ-हृदय में हो उठी थी कि यदि कांच की लाल चूड़ियों में सोने की कामदार चूड़ियों की किनार लगा दी जाय तो ये सुकुमार हाथ कितने अधिक सुशोभित हो जायंगे।

अन्तासेठ ने अपनी कारीगरी पर खुश होते हुए बड़े अभिमान के साथ शेवन्ती से पूछा, "क्यों, कैसी हैं ये चूड़ियां ?"

"बड़ी अच्छी !" उसने हँसते हुए उत्तर दिया और दूसरे ही क्षण वह उन चूड़ियों को हाथ से उतारने लगी।

"मुझे उन्हें अच्छी तरह देख तो लेने दे, बेटी। सोने के अलंकार पहनने पर अपने बड़ों को प्रणाम करना चाहिए," अन्तासेठ ने कहा।

शेवन्ती के शब्द मुह-के-मुह में रह गये। झुककर और जमीन को छूकर उसने अन्तासेठ को प्रणाम किया। अन्तासेठ ने बैठे-बैठे ही उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "सुखी हो, बेटी। देख, मेरी तरह उस विधाता की बुद्धि भी बुढ़ापे के कारण भ्रष्ट हो रही है। उसे इस बात का कुछ खयाल ही नहीं है कि किसको कहां जन्म दिया जाय। अच्छा बेटी, घर में जाकर मां को भी प्रणाम कर आओ। उससे कहना कि दादा ने ये चूड़ियां पहनाई हैं।"

शेवन्ती आश्चर्यचकित रह गई। उसे क्षण भर के लिए यह सूझा ही नहीं कि वह क्या करे। अगर चूड़ियां निकालकर लौटाती है तो उससे अन्तासेठ को दुःख होता है और यदि उन्हें रख लेती है तो उसका मतलब होता है उसके भलेपन का लाभ उठाना और अपने संकल्प से द्रोह करना।

"बुढ़ापे के कारण विधाता की बुद्धि भ्रष्ट हुई है या नही, यह तो मुझे मालूम नही, लेकिन आपकी बुद्धि जरूर भ्रष्ट हो रही है।" शेवन्ती ने हँसते हुए कहा।

"अच्छा-अच्छा, बेकार की चतुराई दिखाकर मुझे मत चिढा। जा, मै कहता हूं, जा ?" जरा ऊंची आवाज में, क्रोध का आभास कराते हुए, अन्तासेठ ने कहा।

यों क्रोध दिखाकर अपनी सच्ची भावना को छिपाना उसकी हमेशा की आदत थी। शेवन्ती को उसका पूरा परिचय हो गया था। वह वहां से चुपचाप चली गई।

जब उसने घर जाकर यह सब बात मा से कही तो फूलवन्ती ने मिर्चो से उसकी नजर उतारी। उसे पास खीचकर प्यार किया। उसके सौंदर्य की खूब प्रशंसा करके गांवभर की देवदासियों को गाली दी और बहुत देर तक अपने मन से ही बातें करके हर्षातिरेक से सारा घर सिर पर उठा लिया। उस उत्साह की बाढ मे कल की लडाई का सारा कूड़ा-करकट न जाने कहा बह गया !

मां की ममता की उमंग से प्रफुल्लित होकर शेवन्ती अन्तासेठ के पास आ गई। उस समय वह अपनी धुन में अलंकारों को निखार रहा था। लाड़ में बावली-सी शेवन्ती उसके पास आकर बैठ गई और उसके हाथों बने हुए गहनो की कारीगरी को देखने लगी। उसे अंतासेठ से कुछ कहना भी तो था। संभलने पर उसने उसकी ओर देखा। अभी वर्षा की झड़ी में नहाया हुआ सामने का कटहल का पेड़ दुलहिन के सुकुमार लावण्य को न्योछावर कर रहा था।

मौन शेवन्ती की आंखों की भाषा अन्तासेठ समझता था। अपने हाथ का गहना एक ओर रखकर मन मे एक निश्चय करते हुए अन्तासेठ ने शेवन्ती से कहा, "एक बात पूछू ?"

"क्या, अब भी आपमें कुछ ऊपरीपन रह गया है ?"

अन्तासेठ बोला, "मै रात को जाग रहा था। मैंने तुम्हारी सब बातें

सुनीं, पर वे ठीक तरह से मेरी समझ में नहीं आई। तू तो अपने दुःख की बात मुझसे कहती ही नही है और अगर मै तुझसे संबंध रखनेवाले विचारों को अपने मन से निकालने की कोशिश करता हूं तो वह मुझसे होता नहीं है। मकाव का वह न्यायाधीश, उसका ढाई सो का चेक, यह सब क्या है ?"

"आपने सब सुन लिया न ? अच्छा हुआ। अपने दुःख की बात कहकर आपको दुःखी बनाना और काम में बाधा डालना मेरे लिए बड़ा कठिन होता था। मैं अन्दर-ही-अन्दर घुट रही थी। अधूरी बात मालूम करके कुछ दूसरी ही धारणा बनाने के लिए सब बातें सच-सच जान लेना कही अधिक अच्छा होगा। तो सुनिये। दो-तीन साल पहले देवालय देखने के लिए यहा एक यूरोपियन न्यायाधीश आया था। उसके सरकारी मित्रों का समूह उसे मंदिर की सारी चीजें दिखा रहा था। मै मंदिर मे बत्तियो को ऊंचा कर रही थी कि अपने ऊपर उसकी नजर देखकर मै घबरा गई और वहा से सीधी घर चली आई। इसके बाद अपने मित्रों में से किसी एक से कहकर उसने मा को बुलाया। सौदा तय हो गया। पैसे लेकर मां ने मुझे गहने पहनाये, लेकिन मुझे इस प्रसंग का कुछ भी पता न था। अन्त में बात बहुत बढ़ गई। उस समय मै बहुत झगड़ी-रोई, नाराज हुई, लेकिन तबतक बात कहीं-की-कही पहुंच चुकी थी। वह बहुत बड़ा आदमी था। सारे आंसुओ को पीकर मै उस बलिदान के लिए तैयार हो गई।

"शरीर-धर्म के हिसाब से सारी बातें हो गई, लेकिन मेरा दिल चूर-चूर हो गया। कोशिश करने के बाद भी मेरे आसू रुके नही। मेरे गालों पर से बह निकले। उस समय उसका उन्माद समाप्त हो चुका था। घबराकर, दया से भरकर और मुझसे दूर होकर उसने नरमाई के साथ मुझसे पूछा, "Offendi—a?" (क्या मुझसे कोई कसूर हुआ है ? अपमान हुआ है?)

"हमारे लिए मान-अपमान कैसा ? पुरुषों की वासना ने आजतक स्त्री के दिल का कितना ख्याल किया है ? फिर हमारी तो जाति ही देवदासी की है। हमारी जाति का मज़ाक कोई भी उड़ा सकता है।"

स्वभावतः मौन रहने वाली मैंने पुर्तगाली भाषा में उत्तर दिया। मुझे शुद्ध पुर्तगाली भाषा में बोलते देखकर वह और भी अधिक चकित हो गया। बोला, 'मुझे इस बात की कल्पना नही थी कि यह बात तुम्हारी रजामंदी के बिना हुई है। मैंने ऐसा अपराध किया है, जिसके लिए मुझे क्षमा नही मिलेगी।'

"उस रात हम दोनों एक-दूसरे को दिलासा देने का प्रयत्न करते रहे। उसमें से ही हममें एक-दूसरे के लिए एक तरह का सद्भाव पैदा हो गया। वह बड़ा कुलीन, संस्कारी, विद्वान और सहृदय आदमी था। उसके मन में हिन्दू-तत्वज्ञान और कला के लिए विलक्षण आकर्षण था और उसी आकर्षण के कारण उसके मन में हिन्दू स्त्री के मन को समझने की उत्कंठा पैदा हो गई थी, अर्थात् मुझ जैसी देवदासी की लड़की के बजाय किसी दूसरी हिन्दू स्त्री के संपर्क में आना उसके लिए असंभव था। उसने कहा, "जबतक तुम्हारे अपने उत्साह से मुझे तुम्हारा मन न मिल जाय तबतक मुझे तुम्हारे शरीर की याचना नही करनी है। तुम मेरी इस मांग को मत ठुकरा देना कि अगर हमारा प्रेमी और प्रेमिका का संबंध संभव न हो तो मित्रता का संबंध तो हमेशा ही रखा जा सकता है।"

ऐसा प्रतीत होता था, मानो शेवन्ती उन सब बातों का इस समय भी प्रत्यक्ष अनुभव कर रही हो। भावनाओं की इस खीचतान के कारण उसे थकावट आ गई, उसकी माथे पर पसीना झलक आया।

अन्तासेठ चित्रलिखित-सा बनकर सबकुछ सुन रहा था। उसने उत्सुकता से पूछा, "आगे क्या हुआ?"

"आगे जल्दी ही उसने मकाऊ (चीन) में अपनी बदली करवा ली। तब से बीच-बीच में उसकी ओर से पत्र, पुस्तकें और पैसे बराबर मेरे पास आते है। मैंने कितनी ही बार पैसे लौटाकर देखा, लेकिन उसके हृदय-द्रावक पत्रों के आगे मेरा निश्चय नहीं टिक सका। उसके पत्रों और पुस्तकों को पढ़कर घर बैठे-बैठे मेरी बुद्धि गहरी हो गई। स्त्रीत्व के महत्व और मनुष्यता की महिमा के संबंध में मेरी कल्पना विकसित हो गई। उस समय से मैंने

अपने से विश्वासघात करने वाले गहनों को शरीर से उतारकर रखा तो फिर कभी नहीं पहना। तुम्हारे कारण उनका आज उद्धार हो गया।"

"मां से तुम्हारी कहा-सुनी हो गई, वह किस कारण ?" अन्तासेठ ने पूछा।

"जिस आदमी ने मुझे उस न्यायाधीश के कमरे में ढकेलकर बहुत बड़ा सरकारी पद पाया उसने ही अब मां को नये-नये लालच दिखाकर मुझे अपने पंजे में लेने की कोशिश शुरू कर दी है। मुझे इस बात से बड़ी घृणा हो रही है कि ब्राह्मणत्व पर अपना अधिकार बताने वाले ये लोग मुझ जैसी लड़की का शील बेचकर अपना पेट पालें और जिन लोगों ने उन्हें जीविका दी है उनके साथ छल-कपट करें। मां मेरे मन को नही पहचान पातीं। मां को ऐसा लगता है कि मुझे अपनी जवानी बीतने के पहले जितना हो सके धन बटोर लेना चाहिए, नहीं तो बुढ़ापे में मुसीबतें उठानी पड़ेंगी। जिसने मेरा संबंध यूरोपियन से करवा दिया था, उसीने हमारी जाति के कान भरकर हमें जाति से बाहर-सा करवा दिया है। मां की इच्छा है कि इस बंधन से मुक्ति मिले। उसका कहना है कि इसके बिना मेरे लिए धन कमाने का रास्ता नही खुल सकेगा। महानन्दा, वासवदत्ता, कान्हो, पात्रा आदि गणिकाओं का उदाहरण देकर मुझे वह इसे मेरा धर्म बताकर रात-दिन तंग किया करती हैं; लेकिन मुझे उनकी बात पसंद नहीं है। दादा, मन्दिर की आमदनी, मेरी सीने-पिरोने की कमाई, उस न्यायाधीश की और आपकी कृपा, इतने से हमारा काम ठीक तरह चल रहा है। फिर रात-दिन यह पैसे की प्यास कैसी ? या तो हमें उस साहब के पैसे लौटा देने चाहिए या अगर हम उन्हें लेते ही है तो उसके प्रति निष्ठा रखनी चाहिए।"

"इस संबंध में फूलवन्ती का क्या कहना है ?"

"'देवदासी में निष्ठा कैसी ? यदि वह निष्ठा से रहे तो उसके प्रति कौन निष्ठा रखेगा ? और निष्ठा चाहनेवाला विवाहिता पत्नी को छोड़ कर देवदासी की देहली पर चढ़ेगा ही क्यों ? बुढ़ापे की उम्र तक हममें से कितनी स्त्रियों को आजतक कितने लोगों ने पाला है ?' यह है उसका

कहना।"

"उसकी बातें तजुरबे से भरी हैं। उसका कहना बहुत गलत नहीं है।" अन्तासेठ ने उदास होकर कहा।

"हम देवदासियों की जाति बना देने के लिए अगर समाज अपराधी हैं तो समाज के प्रति उसकी चाही हुई निष्ठा न दिखाने के कारण हम पतित हैं! अगर ऐसा न होता तो पतित समाज में हमें पवित्र माना जाता। 'देवदासी हर किसी के उपयोग के लिए है' इस प्रकार की कहावत बनाकर हमारी इतनी अप्रतिष्ठा न होती। आवश्यकता पड़ने पर बलिदान करके भी मुझे अपनी जाति को इस खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करा देना है।"

उसके उद्गारों में अब एक विलक्षण तीक्ष्णता आ गई थी। अन्तासेठ को ऐसा प्रतीत हुआ कि जिस प्रकार म्यान से निकली हुई तलवार पूरी शक्ति से आंखों के सामने चमकती है, उसी प्रकार इतने दिनों तक शील से ढका हुआ शेवन्ती का व्यक्तित्व उसके सामने दमक रहा था।

"शेवन्ती, तू देवदासी की लड़की नहीं है। तू एक शापित देवी है। इतने दिनों तक मैंने एक बात तुझसे गुप्त रखी। देवी ने मुझे शुभ शकुन दिया, लेकिन मेरे हृदय ने कभी भी मुझे शांति के साथ नहीं सोने दिया। तुझे ही देवी मानकर मैं देवी की मूर्त्ति बना रहा था। फिर भी तुझसे सत्य कहने का साहस मुझे नहीं हुआ। इस अपराध के लिए मुझे अच्छी सजा मिल चुकी है। इसीलिए मन कड़ा करके आज तुझसे सबकुछ कहने को तैयार हो गया हूं। मैंने जो तेरे घर-खर्च का बोझ अपने ऊपर लिया, उसमें कोई दया-भावना नहीं थी। वह तो स्वार्थ था। महान् कलाकृति तैयार करने की कामना से, कर्ज से ऊबकर मरने की एकमात्र इच्छा से, तेरी सोने जैसी उम्र का सत्यानाश करने वाला मैं एक अत्यन्त दुष्ट व्यक्ति हूं।"—कहते-कहते उसके माथे और सीने पर पसीने की धारा बहने लग गई और उसने शक्तिहीन होकर दीवार का सहारा ले लिया।

शेवन्ती घबराकर दौड़ती हुई घर में गई, एक कटोरे में पानी लेकर आई और उसे उसके मुंह से लगा दिया। दो-तीन घूंट पीने पर उसकी तबी-

यत संभली ।

"दादा, अब तबीयत ठीक हो गई ! आपने मुझपर कितना बड़ा उपकार किया है, इसकी कल्पना आपको नही है, तभी आप ऐसा कहते हैं । प्रत्यक्ष जन्म से भी ज्यादा अच्छा जन्म आपने मुझे दिया है । वासना का विषय बन जानेवाले मेरे इस शरीर को देवी की प्रतिमा बनने की बनिस्बत और कौन-सी अच्छी गति मिल सकती है ? सचमुच मैं आपकी अनन्त जन्मों की ऋणी हूं । अपनी मूर्त्ति बनाने का काम बड़े उत्साह से कीजिए । उसके पूरी होने की घड़ी में अगर मैं सचमुच ही भस्म हो गई तो मेरा सोना बन जायगा ।"

"देवी शांते !" कहकर अन्तासेठ ने उसे प्रणाम किया । उस समय अन्धेरा हो गया था । यह दृश्य किसीको भी दिखाई नहीं दिया ।

"यदि बड़े-बूढ़े छोटे को प्रणाम करते है तो उम्र कम होती है, दादा । यह बात आपको मालूम है ?" शेवन्ती गद्गद् स्वर में बोली ।

इसके बाद वह घर में गई और दीपक जलाकर ले आई । उस प्रकाश में उसे अन्तासेठ के आंसू स्पष्ट रूप से दिखाई दिये । अन्तासेठ ने "शुभं करोति—" कहकर हाथ जोड़े और देवी के स्तोत्र का पाठ करने लगा ।

कितने ही समय तक अनिमेष नेत्रों से उस वृद्ध कलाविद् की भावविह्वल मूर्त्ति शेवन्ती देखती रही ।

: ३ :

अघनाशिनी के विस्तीर्ण नीले प्रवाह में छप्-छप् पानी काटती हुई एक नाव तेजी से जा रही थी । वर्षा की जल-समृद्धि के कारण खाड़ी का यौवन एक-एक लहर से फूटा पड़ता था । दोनों ओर की हरी-हरी झाड़ी और स्वस्थ कोमल खेत, वर्षा समाप्त होने के बाद की मन्द-मन्द धूप में सुन्दरता से चमक रहे थे । हवा के झोंके में हृषी के खुले हुए बाल उड़ रहे थे और गले की लाल रेशमी टाई उसकी मनोभावनाओं की ही भांति

स्वच्छन्दता से उड़ रही थी। नाव की तालों के कारण उसे एक प्रकार की तन्द्रा-सी हो गई थी। उसकी आंखें चारों ओर के क्षण-क्षण बदलने वाले सौंदर्य को पीकर मस्त हो गई थीं और असंख्य उन्मत्त भावनाओं से उसका मन संज्ञाशून्य हो गया था।

पिछले दो-तीन महीनों में उसने रात-रात भर जागकर सैकड़ों पुस्तकें उलट-पुलट डाली थीं। आज उस सारे परिश्रम का फल मिला था। लिखित परीक्षा में उसे प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त हुए थे और मौखिक परीक्षा में उसे गिराने के लिए बैठे हुए सारे परीक्षकों को हराकर उनके ही मुह से उसने शाबाशी प्राप्त की थी। प्रोफेसरी की परीक्षा में उसने पहला स्थान प्राप्त किया था।

लोकतंत्र के जमाने में लिसेब के पहले भावी हिन्दू प्रोफेसर के रूप में उसका नाम आज पणजी शहर में सबकी जबान पर था। परीक्षा-फल देखने के लिए सुशिक्षित स्त्री-पुरुषों की बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। परिचित और अपरिचित सैकड़ों दर्शकों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा के फूल बरसा कर और हाथ मिलाकर उसे स्नेह-भार से दबा दिया था। विशेषतः उसकी बुद्धिमत्ता, कार्य-कुशलता और सौंदर्य के लिए उसकी सुन्दर तरुण छात्राओं एवं रिश्तेदार स्त्रियों ने उसके प्रति जो प्रोत्साहित करनेवाले गौरवपूर्ण उद्गार प्रकट किये थे, वे चिरस्मरणीय गीत की अन्तिम तान की तरह बार-बार उसे आनन्द दे रहे थे।

लेकिन इस सारे सुख में उसे एक कमी लगातार अनुभव हो रही थी और वह थी उसके अभिन्न मित्र केशव की। उसे निरन्तर अनुभव हो रहा था कि केशव के न देखने से उसका यह सारा पराक्रम व्यर्थ गया। "किसी विशेष कारण से वह न आ सका होगा। कमली की तबियत तो ठीक होगी न? उसे लाने के लिए वह ससुराल तो नहीं गया होगा अथवा उस के हरिजन-कार्य में कोई नया बखेड़ा तो नहीं पैदा हुआ?"—इस तरह एक-के-बाद एक अनेक प्रश्न उसके मन में उठने लगे। वह अतिश्रम के कारण थक गया था, लेकिन अभी उसे जो गौरव प्राप्त हुआ था और उसकी जो

कीर्ति फैली थी, उससे उसकी वृत्ति प्रसन्न और प्रफुल्लित हो गई थी। उस प्रसन्नता में यदि कमी थी तो वह केशव की उपस्थिति की, उसके उत्साह-वर्धक शब्दों की और उससे दिल भरकर बातें करने की। नाविक उसके गांव के घाट की ओर मुड़ रहा था। उसने टिकिट भी वहीं का खरीदा था। मछुओं के छोटे-बड़े घर और झोंपड़ों के परिवार में उन सबके लिए पर-म्परागत आश्वासन बने हुए पत्थरों के बाड़े को देखकर हृषी का हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों वह उसके स्वागत के लिए अधीर है और उसके रूप में वंश का पुण्य ही मानों उसकी पीठ ठोंकने को खड़ा है। उठने की तैयारी में उसने पास का चमड़े का बैग उठाया, लेकिन दूसरे ही क्षण कुछ कटुता की टीस से उसका मन भर आया। उसका उत्साह ठंडा पड़ गया। उसने बैग पूर्ववत् रख दिया। कहां उसका स्वतंत्र, रसमय और उल्लासपूर्ण जीवन और कहां घर का संकुचित, जीर्ण और निष्प्राण वायुमंडल! यह तुलना उसके मन में जाग्रत हो गई। उसे विश्वास था कि जीवन का यह आज का अभूतपूर्व आनन्द घर में पैर रखते ही समाप्त हो जायगा। पिताजी की ओर से प्रोत्साहन का एक शब्द भी नहीं मिलता। हां, कोई चुभनेवाली बात अवश्य सुनाई दे जाती है। उसे मां की याद आ गई। एक बार ऐसा लगा कि कम-से-कम मां के लिए तो घर जाना ही चाहिए। लेकिन,हालांकि बेटे की कीर्ति से मां को आनन्द जरूर मिल जाता, फिर भी उसका महत्व रमाअक्का की समझ में थोड़े ही आता। उसने निश्चय किया कि कुछ भी हो,आज का दिन व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए और उसने सावर्डा से नाना के गांव का टिकट खरीदा। वहां मामा की सितार सुनने को मिलेगी, रंजना का प्रसंग छेड़कर कमली उसका मजाक उड़ायगी। यदि केशव आ गया होगा तो उससे दिल खोलकर बातचीत हो सकेगी, रंजना से भी बात करने का मौका मिलेगा। इस प्रकार की कितनी ही मधुर कल्प-नाएं तितलियों के दल की भांति एक-दो क्षण के लिए उसके मन में घूम गईं। लेकिन जब घाट छोड़कर नाव चलने लगी तो उसकी वे मादक और स्वप्निल आंखें गीली हुए बिना न रहीं।

कितने ही समय तक पुरानी स्मृतियों और नये स्वप्नों में हृषी का कोमल मन झोंके खाता रहा। इसी समय मेंडोलिन पर गाये जाने वाले कोकणी गीत का चरण उसे सुनाई दिया। वह प्रकृतिस्थ हुआ। उसने मुड़कर दूसरी ओर देखा। कुछ नवयुवतियों के झुंड में एक ईसाई युवक अपनी मुद्रा और अभिनय के शब्दों का अर्थ अभिव्यक्त करता हुआ गा रहा था :

दोरयाच्या ल्हारारी । चोंद्रिमाच्या उजवाडारी
ते तुज्या केसांच्या फांतयेरी । ज्युरार जातां देवाच्या मुखारी
यो गो मोगा ! चोय गो माका। मोगाचे दोळे लाय गो माका।[1]

गीत सुनते-सुनते हृषी उसकी भावना से एकरूप हो गया। उसे ऐसा लगा, मानों उसकी अपनी ही गूढ़ मूक व्यथा उसके मुह से विलाप कर रही है। अनजाने ही वह भी उस रंगीली मंडली में शामिल हो गया और दूसरों के साथ 'वाह-वाह' करने लगा। गीत पूरा होने पर भावावेश में उसने वर्षों पुराने मित्रों की तरह उनके कंधे हिलाकर अभिनन्दन किया। सुबह उसकी परीक्षा के समय उपस्थित रहने वाले समूह में की कुछ युवतियां भी उस टोली में थीं। बोलते-बोलते ही जान-पहचान, परिचय, बातचीत, हँसी-मजाक आदि बातें क्रमानुसार होती गई और हृषी के सुसंस्कृत और स्वच्छ संभाषण-चातुर्य के प्रवाह में सारी मंडली रंग गई। अब दूसरों को भी ऐसा प्रतीत होने लगा होगा कि हृषी इन सबका कितने ही वर्षों का घनिष्ठ मित्र है।

बन्दरगाहों पर रुकती नाव आगे बढ़ने लगी। यात्री उतरने लगे। वह गाने वाला युवक और उसके साथ मैना जैसी बोलने वाली वह लड़की अपना स्थान आया हुआ देखकर जाने के लिए उठ खड़े हुए। किसीने उनसे उनका

---

[1] **आज लहर के नव विकास में, मधुर चन्द्रमा के प्रकाश में,**
प्रेयसि प्रभु के सम्मुख होकर, इस वेणी की कसमें खाकर,
कहता हूं—"मैं तो तेरा हूं, तेरा दीवाना चेरा हूं।
इधर देख यह दिल आहत है, प्रेम-दृष्टि ही इसे बहुत है।"

पता पूछा, किसीने उन्हें अपने पते दिए, किसीने उनसे मिलने का आग्रह किया तो किसीने अपनी याद रखने के लिए दो-दो बार कहा और उन्होंने हँसते-हँसते और हाथ हिलाते-हिलाते उनसे विदा ली।

शीघ्र ही अन्तिम स्थान अर्थात् सावर्डा बन्दरगाह आने वाला था। अब इक्के-दुक्के यात्री ही नाव में रह गये थे। हृषी फिर विचारों में खो गया। उसका भावनाशील मन उपर्युक्त कोकणी गीत के चरण गुनगुनाते हुए रंजना की कल्पित मूर्ति के आस-पास चक्कर काटने लगा।

रंजना उसकी चचेरी बहन थी। बचपन में वे दोनों साथ-साथ खेले और बड़े हुए थे। बाल्यावस्था में परस्पर पति-पत्नी की कल्पना करके उन्होंने गृहस्थी के नाटक का खेल भी खेला था, लेकिन उस उम्र के आने पर दोनों ही घरों में मज़ाक में कहे जाने वाले इस पति-पत्नी के संबंध को अलिखित रूप प्राप्त हो गया था। इस संबंध में उन दोनों से किसीने पूछा भी नहीं था, केवल सामाजिक संकेतानुसार अब वे एक-दूसरे से दूर हो गए थे। अब उन्हें एक-दूसरे से पहले जैसी मिलने-जुलने की स्वतंत्रता नहीं रही थी और मालूम नहीं, उसी कारण से या किसी दूसरे कारण से उनके बढ़ते हुए अन्तर के साथ उनमें आकर्षण भी बढ़ रहा था। अभी विवाह की बात निश्चित नहीं हुई थी, लेकिन इस कौटुम्बिक संकेत का हृषी पर अनजाने ही प्रभाव पड़ रहा था और इसी कारण जब-जब उसके संपर्क में आने वाली ईसाई लड़कियों के प्रणयालाप से उसका मन मोह में फंसने लगता था तब-तब उसके ऊपर इस कल्पना का अंकुश रहता था कि वह रंजना के साथ बंध चुका है और उसका स्वप्नदर्शी मन उधर से हट जाता था।

कुछ दूर चलने के बाद वह मामा के घर आ गया। उस समय घर के पिछले बाड़े में घीया-तुरई के पीले-पीले फूल गहरे हरे रंग के पत्तों में से आधी आंखें मूंदकर हँसे और उन्होंने उसका स्वागत किया। पौधों के नीचे की लाल मिट्टी से यह प्रकट हो रहा था कि साग की क्यारियों को अभी-अभी ही किसीने सार-संवार की है। उसी समय उसके ध्यान में यह बात आ गई कि वह काम रंजना ने ही किया होगा। वह जानता था कि

साग-सब्जी लगाने का शौक उसे बचपन से ही है। वह उसके लिए जगह-जगह से साग-सब्जी के बीज ले आता था। ओटले पर निस्तब्धता छाई हुई थी। उसके मन में विनोद की एक कल्पना आई कि वह भाभी के सामने एकदम प्रकट होकर उसे चकित कर दे। बैग और बूट बाहर रखकर उसने अन्दर प्रवेश किया और ओसारे को लांघकर ज्योंही उसने बीच के कमरे में कदम रखा त्योंही बिजली के कड़कने से जैसे आंखें चौंधिया जाती हैं और दिल धड़कने लगता है, वही हालत उसकी हो गई। झिरझिरी सफेद आधी पहनी हुई गीली साड़ी में बड़े प्रयत्न से अपने उभरते यौवन को छिपाती रंजना लकड़ी पर सूखती हुई गुलाबी साड़ी खींच रही थी। संगमरमर की मूर्त्ति की तरह उसके सारे अवयव गोल, सुदृढ़ एवं सुडौल थे; लेकिन उस शिल्प में मक्खन-सी कोमलता, हृदय की संजीवनी-शक्ति एवं अग्नि की दाहकता की ऐसी लहरें एक क्षण में ही उठीं कि हृषी को प्रतीत हुआ, मानों मदन की माया नगरी ही उसके सामने प्रकट हो गई मानों उसके पैर के नीचे की धरती खिसक रही है। भीगी हुई रंजना का घनीभूत सौंदर्य गुलेल के कंकर की भांति उसके हृदय को लगा और मदिरा का मधुर नशा उसपर चढ़ गया। खिंची हुई साड़ी हाथ में आते ही उसकी आंखें नीची हुई और हृषी की आंखों से मिलीं। उसी समय लज्जा से मानो अर्धमृत होकर उसने अपने दोनों हाथों से उरोजों को ढक लिया और एक बारीक चीत्कार के साथ लज्जा से गड़ गई। वर्षा में भीगे हुए पके काजू के फल की भांति उसके गाल लाल हो गए। मन में उमड़ते हुए मोह को रोककर उसी समय हृषी लौट पड़ा, लेकिन कच्ची सुपारी पड़ा पान जैसे कलेजे में लग जाता है, वही हालत उसकी हुई।

थोड़ी देर के बाद रंजना ने ही रसोईघर में जाकर मां को हृषी के आने की सूचना दी।

चाय पीते समय उसकी और भाभी की बातें होने लगीं। आज जैसे हृषी की जबान में विलक्षण धार आ गई थी। उत्साह में मस्त होकर वह बातें कर रहा था और दरवाजे की ओट में खड़ी होकर भक्तिभाव से उसकी

बातें सुननेवाली रंजना पर एक-आध वार दृष्टि डालकर वह देख रहा था कि उसकी बातों का उसपर क्या असर हो रहा है ।

हरिजन-विद्यालय के बालक बीमार हो जाने के कारण केशव परसों ही कमली को लेकर वहां से गया था । शिकार खेलने के लिए कुला (ग्राम) में गये हुए मामा बहुत करके दूसरे दिन आने वाले थे । यह सब जानकर हृषी थोड़ा उदास हुआ, लेकिन यह देखकर कि रंजना के साथ स्वतन्त्रता से बोलने क लिए, उसके मन की थाह लेने के लिए, उसके स्वभाव-विकास को पहचानने के लिए अनायास यह अवसर आ रहा है, उसे एक तरह का संतोष भी हुआ ।

अंधेरा हुआ और जैसे-जैसे रात बढ़ने लगी, वैसे-वैसे उसका मन दिन भर की भावनाओं के परिणाम-स्वरूप अस्वस्थ होने लगा । उसके थके हुए एकाकी एवं काम-वाणों से विंधे हुए अन्तःकरण में, स्नेह की, स्त्री-सहवास की और भावनाओं के साहचर्य की तृषा पैदा हुई और वह निरन्तर बढने लगी । स्वादिष्ट होने पर भी वह पेट भरकर भोजन नही कर सका । रंजना की सद्यस्नाता मूर्त्ति बार-बार उसकी आंखों में घूमती रही और उसके मनो-विकारों को प्रज्वलित करती रहती । हृदय में कांटा चुभे हुए व्यक्ति की भांति उसका मन किसी काम में नहीं लग रहा था ।

कमरे के पलंग पर उसके लिए अत्यन्त सफाई से स्वच्छ बिस्तर किया गया था, पास के स्टूल पर कसीदा किया हुआ रूमाल बिछाकर टेबल लेम्प रखा गया था और उसके पास तश्तरी में जाई के फूल मधुर सुगंधि से सुवासित हो रहे थे । खोली की सजावट देखकर हृषी की मनोव्यथा और भी अधिक तीव्र हो गई । उसने बैग में से फ्रेंच कविता का नया संग्रह निकाला और उसे उलटने लगा । उसके पढ़ने से तो उसका मन और भी क्षुब्ध हो गया । आज हर बात उसे अधिकाधिक अस्वस्थ कर रही थी और उसका काम-विकार बढ़ा रही थी । कुछ चिढ़कर उसने पुस्तक एक ओर फेंक दी और गुनगुनाने लगा—

दोर्यांच्या ल्हारारी । चोन्द्रिमाच्या उजवाडारी
ते तुज्या केसांच्या फांतयेरी । ज्युरार जातां वेवाच्या मुखारी

यो गो मोगा ! चोय गो माका । मोगाचे दोळ लायगो माका*

उसकी आवाज स्वभावतः ही मधुर थी और आज भावनाओं की व्याकुलता के कारण उसमें विलक्षण शक्ति आ गई थी। उस स्वर को सुन कर रंजना हृषी के कमरे के दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें और काली घनी केश राशि देख कर हृषी के मुह के शब्द मुंह में ही रह गये। गुलाबी साड़ी पहने हुई उसकी वह सुन्दर मूर्त्ति देखते-देखते उसकी आंखों से वास्तविक रंजना ओझल हो गई और सद्यस्नाता रंजना उसकी दृष्टि के सामने आ गई और उसे फिर से वही अनुभूति होने लगी। घबराई हुई आवाज में उसने पूछा, "मामी क्या कर रही है ?"

"रसोई-घर में चौका लगा रही हैं।" उसने धीरे से उत्तर दिया।

"क्या मुझे थोड़ा पानी ला दोगी ?"

ठंडे पानी से भरा हुआ चांदी का गिलास जब रंजना ने उसके हाथ में दिया उस समय रंजना के ठंडे हाथों से हृषी के सर्वांग में बिजली-सी दौड़ गई। पानी की सतह पर उंगली मार कर उसने उसके मुंह पर पानी के छींटे डाल दिये। रंजना शरमा गई और उसके गाल एक बार फिर काजूफल की भांति लाल हो गये। मदहोश होकर हृषी ने उसे पास खीच लिया और अपने पास बैठने का आग्रह किया, लेकिन रंजना घबराकर खिसकने का प्रयत्न करने लगी। इससे वह और भी अधिक विवश हो गया। उसने उसे अपने बाहुपाश में जकड़ लिया और पागल की भांति उसे कसकर उतावले व्यक्ति की तरह उसके ओठों को, गालों को और आंखों को बार-बार चूमने लगा। प्रारम्भ में रंजना ने काफी प्रतिकार किया, लेकिन अन्त में वह विवश हो गई। उन्माद का आवेश कम होने तथा प्रकृतिस्थ होने पर जब हृषी ने उसकी ओर देखा तो उसकी मुद्रा स्वप्न-भंग व्यक्ति की तरह उदास और

---

* **आज लहर के नव विकास में, मधुर चन्द्रमा के प्रकाश में,**
प्रेयसि प्रभु के सम्मुख होकर, इस वेणी की कसमें खाकर,
कहता हूँ--"मैं तो तेरा हूँ, तेरा दीवाना चेरा हूँ।
इधर देख यह दिल आहत है, प्रेम-वृष्टि हो इसे बहुत है।"

दुखी बनी हुई दिखाई दी। उसकी आंखों में आंसू भर आये। ओंठ फीके पड़ गये। उसकी मुद्रा की बदलती हुई स्थिति देखकर हृषी लज्जित हो गया। क्षमा-याचना करने के लिए उसकी आंखें भर आईं। उसका मन अत्यन्त उदास हो गया।

"मुझे कल्पना नहीं थी कि पूजा के पूर्व ही आप उसे इस तरह बिखेर देंगे। मैंने अपने देव की ऐसी कल्पना नहीं की थी।" रंजना ने कहा। उसके क्षीण स्वर में अपार व्यथा थी और जबान में हृदय को चीर देनेवाली धार।

हृषी आगे बोलनेवाला था, जो हुआ उसे भुला देने वाला था, क्षमा मांगने वाला था; लेकिन रंजना उसके लिए क्षण भर भी नहीं ठहरी, न फिर उसके सामने दिखाई दी।

आज जीवन में असाधारण यश प्राप्त करने के बाद उससे भी अधिक असाधारण अपयश उसके हिस्से में आ गया था। उसकी स्वाभिमानी दृष्टि का आज पहली बार इस प्रकार अपमान हुआ था और वह भी उसकी जन्म भर पूजा करनेवाली प्रियतमा के द्वारा। रंजना के शब्दों की वह तीव्र धिक्कार, गरम शलाखों की भांति, सारी रात उसके हृदय को जलाती रही। उसने सारी रात तड़पते हुए, अपनेको धिक्कारते हुए और सिगरेट का डब्बा खाली करते हुए व्यतीत की। दुमंजले के जंगले से यह दृश्य रंजना को दिखाई दे रहा था। वह रो रही थी और उसके पास जाने और उसे सान्त्वना देने के लिए अधीर हो रही थी; लेकिन उसे साहस नहीं हो रहा था।

दूसरे दिन पच्चीस दिन की बीमारी के बाद उठने वाले व्यक्ति की भांति अशक्य होकर मामा के लिए न ठहरकर जरूरी काम का कारण बताकर हृषी जाने को तैयार हो गया। उस समय रंजना उससे आग्रह करने के लिए स्वयं नीचे आई। उसकी सूजी हुई और अन्दर गड़ी हुई आंखें देखकर वह और कठोर हो गया और बोला, "मुझे क्षमा करो। मुझे अब जाना ही चाहिए।"

उसके जाने पर रंजना कितनी ही देर तक रोती रही।

: ४ :

श्रावण का महीना था। शस्यश्यामला सृष्टि नाना वर्ण और आकृति के पुष्पों से सुशोभित हो रही थी। अघनाशिनी के एक किनारे पर मछलियों के लिए प्रसिद्ध दुर्भाट नामक ग्राम में मछुओं के छोटे-मोटे मकान थे। उसके मध्य-भाग में रवलू कामत का मकान अपने खानदानी गर्व से आतिथ्य के द्वार खोल कर एक अभिभावक की भांति खड़ा था। सामने के प्रशस्त मैदान में नारियलों के ढेर पड़े थे और तेज पत्तियों के तीन शूलों पर तीन मजदूर विद्युत गति से नारियल छीलने का काम कर रहे थे। दूसरी ओर कुछ मजदूरिनें नारियल फोड़कर उन्हें सुखा रही थीं। दोपहर की चढ़ती धूप में मजदूरों के शरीरों से बहती पसीने की धाराएं और उसी समय फोड़े हुए नारियलों की गीली सफेद कटोरियां, अपने-अपने वर्णलावण्य से आकर्षित कर रही थीं। बराण्डे में बांस की चटाई पर चौपड़ का खेल जम रहा था और 'यह द्रौपदी', 'यह घसास', 'यह फूल'* आदि-आदि बोल कर दोनों पक्षों के लोगों ने वहां कुरुक्षेत्र मचा रखा था। मकान के एक ओर का भाग यूरोपियन पद्धति के फर्नीचर, चित्र और पुस्तकों से सजाया गया था और वहां रवलू कामत का अभी-अभी प्रोफेसरी की परीक्षा में पहले नंबर पास होनेवाला लड़का हृषी धोबी द्वारा लाये हुए कपड़ों को गिन रहा था और उनकी इस्त्री पर चिढ़कर तथा परेशान होकर धोबी से शिकायत कर रहा था। दूसरी ओर के कमरे में हिन्दू-पद्धति की बिछायत थी। छत में अन्दर की ओर टूटे हुए लोलकों की एक झूमर थी और उसके चारों ओर चार हण्डियां लगी हुई थीं। दरवाजे के सामने दीवार के दोनों तरफ शीशम की लकड़ी के आधार पर दो काफी बड़े बिल्लोरे शीशे, रविवर्मा के लक्ष्मी-

---

***चौपड़ के खेल में गोआ की ओर जब पांच पड़ते हैं तो उसे द्रौपदी, छः पड़ते हैं तो घसास और एक पड़ता है तो उसे फूल कहते हैं।**

सरस्वती के सुप्रसिद्ध तिरंगे चित्र,राजबन्धु दुआफोंस का चित्र और शीशे पर बनाए हुए लाल रेखाओं के दो-तीन पुराने चित्र जहां-तहां रखे हुए थे। हां, कमरे की स्वच्छता प्रशंसनीय थी। घर के मालिक रवलू कामत पीतल की छोटी-सी लुटिया में से कान में नारियल का तेल डालकर कान को हिलाते हुए तेल की शीतलता को अनुभव कर रहे थे। उनका रंग काफी काला था और अभी-अभी की हुई तेल की मालिश से चमक रहा था। शरीर के ऊपर पड़ा हुआ जनेऊ का जोड़ा, उंगली में पहने हुए सोने के छल्ले, चांदी के छल्ले में डाली हुई चाबियां और काफी मोटी चोटी, इन सबके कारण रवलू कामत की भव्य देह को यद्यपि 'ग्रामीणता की शान' प्राप्त हो गई थी, तथापि भव्य ललाट, सीधी नाक, कसी हुई तथा चौड़ी ठोडी के कारण उन्हें देखते ही किसी के भी मन पर उनकी धाक बैठ जाती थी। उन्हें देखते ही कोई भी कह सकता था कि यह व्यक्ति जितना पुरुषार्थी है, उतना ही दृढ़-निश्चयी भी है।

जामुनी रंग की माहेश्वरी साड़ी पहने व रोली का लाल लम्बा तिलक लगाए उनकी गोरी पत्नी रमाअक्का बहुत देर से उनसे बोलने के लिए दर-वाजे की आड़ में खड़ी थी। रवलू कामत तेल की मालिश में मग्न थे और उसमें बाधा डालने का साहस रमाअक्का में नहीं था।

अन्त में रवलू कामत का ध्यान उसकी ओर गया। बिना मुड़े ही उन्होंने पूछा, "श्रावणी सोमवार की पूरी तैयारी कर ली है न ? तेरी पीहर की देवी की मूर्ति का उत्सव है और हमारे शालिगराम का पहला सोमवार है। गांव के सौ से ज्यादा मछुए आवेंगे, कवल ग्राम को जाने के लिए नाव से कितने लोग यहां उतरेंगे, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। भोजन का काफी अच्छा डौल जमा लो। बच गया तो कोई बात नहीं, कम नहीं पड़ना चाहिए।"

"सब ठीक हो गया है।"

"तब फिर और क्या रह गया है ? हृषी से कहना कि घाट पर जा-कर सारे मेहमानों को ज़रा जोर लगाकर बुला लावे। एक आदमी भी

दूसरी जगह न जाने पावे ।"

"लेकिन ...."

"लेकिन क्या ?"

"अपने लिखे हिसाब से केशव कमली को लेकर आ जायगा । उसके लिए क्या करना चाहिए ?" डरते-डरते रमाअक्का ने पूछा ।

"घर में मझुए-मजूर भोजन करनेवाले हैं न । फिर केशव की चिन्ता क्यों ? वह चाहे मेहतर के हाथ का खाय, चाहे चमार के हाथ का । तुम्हारा और मेरा तो उपवास है ही । हमारे पंगत में बैठने का कोई सवाल ही नहीं है और तुम्हारे स्मार्ता के स्वामीजी ने उसके विरुद्ध अबतक बहिष्कार की घोषणा भी नहीं की है । अच्छा, अगर सिर्फ अपना ही विचार करें तो इस घर में भी पूर्वजों की पवित्रता कहां रही ? अपने पुत्र ने फिरंगी शिक्षा के साथ चोटी को नमस्कार कर लिया । बूट-पेंट घर में आ गये । होटल के भोजनालय में वह किसके हाथ का भोजन खाता है, यह भगवान ही जाने । आज इस श्रावणी सोमवार के दिन भी उसके ईसाई मित्रों का चाय-पान हुआ । तब यदि मलेच्छों का यह संसर्ग दीवानखाने से रसोईघर में भी पहुंच जाय तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा । उसपर भी अब तो वह लिसेव का प्रोफेसर होगा । फिर मुझ जैसे के लिए कहने की गुजाइश ही नहीं रही । इस प्रकार की ढिलाई की अपेक्षा तत्वनिष्ठा के नतीजे के रूप में पैदा हुआ केशव का विद्रोह कोई बुरा नहीं है ।"

रवलू दादा की यह बातचीत जिस स्वर में हो रही थी उसपर से रमाअक्का ने पहचान लिया कि यह उसके बजाय हृषी को ही सुनाने के लिए है । रमाअक्का ने यह समझ लिया, लेकिन जैसे इस रुख को वह समझ ही न पाई हो, इस प्रकार का बहाना करके उसने कहा, "केशव हमारे घर का ही है । आज के समारम्भ में वह मेरे भाई के दामाद के रूप में आनेवाला है । हमारे घर और उसमें भी अपनी पत्नी को लेकर आने पर उसका अपमान नहीं होने देना चाहिए ।"

"तू उसकी चिन्ता मत कर । पंगत में पहले नम्बर पर उसे बिठाकर

हृषी उसके पास बैठ जायगा। अपना कुल-धर्म हम पालें, दूसरे लोग उसके पास बैठें, चाहे न बैठें। यह परिस्थिति केशव ने स्वयं ही पैदा की है और वह उसका मुकाबला करने में समर्थ है।" इतना कहकर रवलूदादा तौलिया कंधे पर डाल कर स्नान करने के लिए अन्दर चले गए, लेकिन रमाअक्का जानती थी कि वे उससे भी अधिक अस्वस्थ थे।

शालिगराम की पूजा और अन्नादि नैवेद्य हो चुका था। अन्दर के चारों बराण्डों में केले के पत्ते दोनों ओर पंक्तियों में रखे गए थे और उस बीस-पच्चीस मनुष्यों के सम्मिलित कुटुम्ब की बहू-बेटियां साग-भाजी व पापड़-अचार परोसने में लगी थी। रमाअक्का सबकी देख-रेख कर रही थी और रवलूदादा घर के नौकर-चाकरों पर हुक्म चलाकर मेहमानों की राह देख रहे थे। गोपी-चन्दन लगाये एवं जरी किनारी का पीताम्बर पहने हुए ऐसा लगता था मानों उनकी भव्य मूर्ति उस घर की पवित्रता की प्रतिष्ठा हो।

हृषी मेहमानों को लेकर आ गया। उनमें केशव और कमली अपनी खादी की वेशभूषा के कारण स्पष्ट रूप से अलग दिखाई देते थे। सब लोग कपड़े निकालकर स्नान करने की जल्दी में थे। लेकिन कोई इशारे से, तो कोई धीमी आवाज में केशव के बारे में बातें कर रहा था। हां, केशव का ध्यान इनमें से किसीकी ओर नही था। कमली तो कभी की अन्दर चली गई थी। घर के व्यक्ति की तरह हृषी के साथ केशव भी मेहमानों की सेवा और उनके स्नान की व्यवस्था कर रहा था।

उसके प्रेमपूर्ण और हँसमुख व्यवहार के कारण इच्छा होते हुए भी लोग उसका अपमान नहीं कर पाते थे। न उससे दूर ही रह पाते थे। युवक-मंडली तो उसे आदर और अभिमान से देखती थी।

बचपन में ही घर से भागकर अपनी स्वयं की हिम्मत पर काशी से संस्कृत का अध्ययन करके आने वाले, स्वामीजी के विशेष रूप से बुलाकर अपना शिष्य बनाकर रखने की इच्छा प्रदर्शित करने पर भी संकुचित पथवाद का विरोध करके इस महान् अवसर को ठुकरा देने वाले, महात्माजी के आश्रम में रहकर उनके सत्याग्रह में भाग लेनेवाले, प्रतिष्ठित नौकरी के लोभ को

लात मारकर हरिजन-वस्ती में स्कूल खोलकर बैठने वाले और मराठा-गायक-समाज के आन्दोलन को बल देकर वेश्याओं के विवाह का समर्थन करने वाले एक क्रांतिकारी युवक के रूप में वह सारे गोमांतक में प्रसिद्ध हो गया था ।

जिन बातों से उसने नई पीढ़ी में मान पाया था, उन्हीं बातों के कारण वह बड़े-बूढ़ों की दृष्टि में आलोचना और संताप का विषय हो गया । समाज की व्यवस्था बिगाड़ने का प्रयत्न करने वाले इस केशव को समय पर ही सबक सिखा देना चाहिए, यही विचार करके समाज की चिन्ता के बोझ से दबे हुए कितने ही सभ्य व्यक्ति उसके विरुद्ध बहिष्कार की घोषणा करने के प्रयत्न में थे ।

कौन-सी बात की जाय, जिससे कि इस सारी परिस्थिति के कारण किसी के मन में उसके प्रति अच्छी भावना न होने पावे और यदि वह पंगत में बैठ गया तो कौन-सा रास्ता निकाला जाय, इसी चिन्ता में मेहमानों में से बहुत-से लोग व्यग्र हो रहे थे ।

लोग भोजन करने के लिए पंगत में बैठे । अब भी बहुत-से लोग बैठने की बात टालकर यही राह देखते हुए समय बिता रहे थे कि केशव कहां बैठता है । अन्त में रवलूदादा ने ही केशव से बैठने का आग्रह किया तो केशव बोला, "आज मेरा सोमवार का व्रत है ।"

"तू भी सोमवार का व्रत करता है ?"

"हां, लेकिन सिर्फ श्रावण में ही नहीं । सोमवार महात्माजी का मौन-दन है । मैं इस दिन व्रत रखता हूँ । हम जैसे अछूतों की उन्हें बड़ी चिन्ता है । इसलिए आज अनायास श्रावणी सोमवार का और आज की शुक्ल त्रयोदशी को मूर्त्ति के उत्सव का दुहरा पुण्य चित्रगुप्त मेरे खाते में लिख देगा ।" इतना कहकर वह कुछ ऐसी मीठी हँसी हँसा कि उसके शब्दों से लज्जित हो जाने वाले लोग भी क्षण भर के लिए प्रसन्न हो गए ।

भोजन अच्छी तरह निबट गया । गपशप और थोड़ी देर विश्राम के बाद कुण्डई ग्राम से निकलनेवाली मूर्त्ति की पालकी का जुलूस कहां, कब और

कैसे मिल सकेगा, इस बात की चर्चा लोगों में शुरू हो गई। डोली को सजाकर चार भोई* तैयार हो गए। रमाअक्का और कमली डोली में बैठने के लिए उद्यत हो गई। इतने में रवलूदादा रमाअक्का को संबोधित कर इस तरह बोले कि केशव भी सुन ले, "हृषी से कहना कि कम-से-कम आज तो सूट-बूट पहनकर जुलूस मे न जाय। बेकार हमारी बदनामी न हो।"

उन दोनों को बिठाकर डोली झूलती हुई चलने लगी और पुरुष वर्ग भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। अभीतक हृषी ने कपड़े नही पहने थे। केशव उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

"रवलूदादा ने जो कुछ कहा, वह तुमने सुना है न ?" केशव ने हृषी से कहा।

"मेरे कान विल्कुल फूटे नही है। उनको ऐसा लगता है कि मैं अब भी दूध-पीता बच्चा ही हूँ। ऐसी छोटी-छोटी बातें भी मुझसे कही जाती है। ऐसा देखकर लगता है कि जान-बूझकर वैसा किया जाय। आज तुम्हारे साथ उत्सव का आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिलेगा, इस विचार मे मैं कितने आनन्द मे था, लेकिन ऐन मौके पर बाबा कुछ ऐसी बात बोल देते है कि सारे उत्साह पर पानी फिर जाता है।" संत्रस्त होकर हृषी ने कहा।

"कुछ लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है, हृषी। सूखी लकड़ी को झुकाने की कोशिश करेंगे तो टूट जायगी। हम युवक हैं, हमें यह समझना चाहिए। मुझे यह देखकर बड़ा डर लगता है कि छोटी-छोटी बातें भी तुम्हें चुभ जाती है। ऐसा लगता है कि अब तो तुम्हारा यह स्वभाव और भी अधिक बढ़ गया है। बार-बार तुम्हारी ओर से आने वाले मधुर पत्र और उनसे झरनेवाला भावनाओं का वह काव्य जी भरकर पीते समय भी छोटी-छोटी बात में दुखी हो जाने, उसमें दुःख का तत्त्वज्ञान ढूढ़ने की तुम्हारी वृत्ति देखकर मै सचमुच बहुत बेचैन हो जाता हूँ। तुम्हारा भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। मै तुम्हारी ओर कितनी आशा से देखता हूँ।"

"केशव, तेरे सिवाय मेरे मन को कोई नहीं समझता। इस घर में

---

*एक जाति, जो महाराष्ट्र में पालकी उठाने का काम करती है।

मेरा जी घुटता रहता है। भावनाओं का मार्ग खोले बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकता और यहां उस तरह जीना संभव नहीं है। पुराण-काल की कुछ भी कल्पना हृदय में रखकर प्रकृति के विरुद्ध लड़ने का हठ इन लोगों ने ठान रखा है। इतने दिनों तक मैं यह सब सहता रहा। पढ़ाई-लिखाई के लिए बहुत-सा समय पणजी-मडगांव में बिताने के कारण जो दुःख मुझे केवल छुट्टी के दिनों सहना होता था, वह अब रात-दिन सहना पड़ता है। उसमें भी अभी-अभी परीक्षा के कारण मुझे जो भारी मेहनत करनी पड़ी है, उससे मेरा दिमाग कुछ ऐसा थक गया है कि अपने मन के विरुद्ध थोड़ो-सी भी बात देखकर मैं चिढ़ जाता हूँ। परीक्षा में सबने मेरी प्रशंसा की, लेकिन बाबा के मुंह से शाबाशी का एक भी शब्द निकला हो तो बताओ, उलटे वह रात-दिन यही कहते रहते हैं कि इसने घर को म्लेच्छों का घर बना दिया है।"

"लेकिन रवलूदादा को तुम्हारे ऊपर कितना गर्व है, यह तुम्हें भले ही मालूम न हो, मुझे मालूम है। पुराने लोग अपनी इस प्रकार की भावना अपने लोगों के सामने प्रकट नही करते।"

"लेकिन उससे हम युवकों की भावना मुरझा जाती है। हमारा तो व्यक्तित्व मर जाता है। उनका क्या?"

"जिस सामाजिक कल्पना की जड़ परम्परा से मजबूत बन जाती है, उसे जिद्द करके उखाड़ा नहीं जा सकता। समाज का विकास निश्चय से किन्तु धैर्य से, मौन त्याग और सहृदय विवेक से ही किया जा सकता है। लेकिन ये बातें हम रास्ते में करेंगे। हमें जितना जल्दी हो सके, पालकी का जुलूस पकड़ना है। कवल ग्राम की हरिजन-बस्ती में इस परगने के सारे हरिजन देवी के दर्शन के लिए एकत्र होनेवाले है। पालकी के मन्दिर में पहुँचने के पहले ही निष्ठावान् भक्त को उसका दर्शन कर लेना चाहिए। उसके स्वागत करने का पुण्य ले लेना चाहिए।"

"लेकिन हमारे रूढ़िग्रस्त समाज में यह होगा कैसे?" धोती की तह करते हुए हृषी ने पूछा।

"धर्म-भ्रष्टता के समय हमारी इस गोआ की देवी ने हरिजन-बस्ती ही

अपने लिए मांग ली और समाज द्वारा बहिष्कृत किये हुए उसके इन लाड़ले बालकों ने अपना स्थान मां के लिए खाली करके अपने घर गांव की सीमा पर बना लिये। इस बात की स्मृति में ही हरिजनों के लिए महापर्वणी के दूसरे दिन महा चौक पर जाकर माता का दर्शन करने की इजाजत चाहे एक ही दिन की क्यों न हो, आजतक है। वहां देवी के भक्तों के पहले अब हरिजन-दंपत्ति का सम्मान होता है। गोआ की यह मूल संस्कृति, हरिहर का कलह मिटाने वाली देवी शान्ता की यह उदारता, हम आज भ्रष्ट कर रहे हे। इसीलिए हम दूसरे दिन इस विचार से उसकी शुद्धि करते हे कि हरिजनों के स्पर्श से मन्दिर भ्रष्ट हो गया है। जिस समय मैंने महात्माजी से यह बात कही, उस समय गोआ की इस संस्कृति पर उनको जितना गर्व हुआ, उतना ही उसकी आज की स्थिति पर खेद हुआ।

"महात्माजी ने कहा, तो फिर तुम्हारा सबसे बड़ा काम देवी शान्ता के इस कलंक को मिटाना है। उसके बिना यदि तुम्हें स्वतंत्रता मिलती भी है तो भी व्यर्थ रहेगी।"

"लेकिन हरिजन-बस्ती में पालकी ले जाने का काम कैसे पूरा होगा?" हृषी ने पूछा।

"क्यों नहीं हो सकेगा? आज मै सन्तूबाबा को पुराने इतिहास की याद दिलानेवाला हूँ। मैं समाज की कृतज्ञता का आवाहन करनेवाला हूँ और मुझे विश्वास है कि उनकी कुलीनता, उनकी सहृदयता, झूठे धर्माभिमान की शरण नहीं जायगी। दुर्भाग्य से यदि मेरी यह कल्पना झूठी सिद्ध हुई तो मेरी तत्त्व-निष्ठा के और उज्ज्वल होने का एक अवसर मिलेगा। प्रसंग आने पर तो तुम ही देखोगे। चलो, अब देर मत करो।"

केशव और हृषी जल्दी-जल्दी चलने लगे। आस-पास हरे-हरे खेत तालाब की भांति फैले हुए थे। संध्या में नहाए हुए नारियल के पत्तों के पंखे शीतल वायु के झोंके से विमलोदक का छिड़काव कर रहे थे। वे अभ्रक के पंखेवाले किरमिजी रंग के गंधर्व के विमान की भांति हवा में हिल रहे थे और एक-आध बगुलों की पंक्ति आकाश में मंगल के शुभ्र तोरण बनाती हुई जा रही थी।

दूर से हरे-नीले पहाड पर कभी चौपाये चढते हुए दीखते थे तो कभी कोई मोटा-सा मेंढक जलशैय्या पर बैठकर "टर्र-टर्र" स्वर में गाता हुआ सुनाई देता था।

जब कभी केशव और हृषी एक-दूसरे से मिलते थे तो उनकी बड़बड़ाहट का कोई ठिकाना न रहता था। लेकिन यदि यह कहा जाय कि आज दोनों ही मूक बन गये थे तो अत्युचित न होगी। कभी-कभी एक-आध प्रश्नोत्तर से अधिक उनकी बातचीत नही होती थी।

हृषी को चिन्ता थी कि आज का आयोजन कैसे सफल हो और उसके लिए जिस शक्ति की आवश्यकता थी, वह केशव चिन्तन और मनन के द्वारा प्राप्त कर रहा था।

घंटे-डेढ़घंटे के बाद घाटी में से उतरनेवाली देवी की पालकी का जुलूस उन्हे दिखाई दिया। आकाश में होने वाले स्वर्ण-सिचन से वह दृश्य बड़ा ही मनोहर दिखाई दे रहा था। दोनो ने ही 'हे शान्ता माता' कह कर भक्ति-भाव से प्रणाम किया और थोड़ी ही देर में दोनो जुलूस की भीड़ में शामिल हो गए।

: ५ :

ढोल-मृदंग और भजन-गीत के स्वर के साथ स्वर्ण-प्रतिमा की पालकी धीरे-धीरे जा रही थी। पालकी के डंडों में सोने के लाल रेशमी फुन्दे लगे हुए थे जो लय के साथ हिल रहे थे। ऊँची-ऊँची सफेद मोमबत्तियों के धीमे प्रकाश में मूर्ति का सौंदर्य मन्द-मन्द टपक रहा था। सोने की नक्काशी की हुई लकड़ी लिये हुए सन्तूबावा भक्ति-भाव और अपने जन्मजात धनिकोचित रौब से पालकीके दाहिनी ओर चल रहे थे और बहुमूल्य वस्त्र धारण किये हुए सभ्य पुरुष कभी पालकी में रुपये-पैसे चढ़ाते हुए और कभी मूर्त्ति पर चँवर डुलाते हुए अपना सेवा-भाव व्यक्त कर रहे थे। आगे नर्त्तकियों का मेला और वाद्य बजानेवालों का समूह, मध्य में भजन-मण्डली, उसके बाद देवी की पालकी और उसके सेवकगण—दर्शन के लिए उत्सुक लोगों का यह जुलूस रास्ते में ठह-

रता और आरती-पूजा के बाद आगे बढ़ता जा रहा था। जैसे-जैसे पालकी आगे बढ़ती जा रही थी, वैसे-वैसे बस्तियों का मार्ग स्वच्छ और पानी छिड़का हुआ मिलता था। जगह-जगह दीपक जल रहे थे। ऐसे स्थानो पर पालकी जरा रुक जाती थी। लोग भेंट-पूजा करके मूर्त्ति की आरती करते थे। बीच में ही एक-आध स्थान पर भजन होते थे। उस समय कोई नर्त्तकी जुलवा * या कोई हिन्दुस्तानी चीज़ गाकर वातावरण को मुग्ध कर देती थी।

ऐसी पूजा-आरती लेते-लेते पालकी कवल ग्राम की सीमा में प्रवेश करने वाली ही थी कि केशव हृषी को छोडकर भीड मे घुसता हुआ सन्तूबाबा के पास आ गया और उन्हे विनयपूर्वक नमस्कार करके बोला, "बाबा, मै आपसे एक प्रार्थना करने आया हूँ। यहां से केवल पचास कदम पर देवी के परित्यक्त बालक उसका स्वागत करने के लिए पलक बिछाये हुए खडे हुए है। यदि वहां पर भी भजन-आरती के लिए जुलूस रुके तो उन असंख्य निष्ठावान् जीवों की भाति देवी को भी बहुत संतोष होगा। जिन्होने उसे स्थान दिया, उनके घरो को पैर छुआये बिना जाना देवी को भी अच्छा न लगेगा।"

केशव के मधुर व्यवहार और सहृदय भाषा से मोहित हो जाने वाले सन्तू-बाबा चौक कर रुक गये। उन्होंने पालकी ठहराने का इशारा किया। पूछा, "आप कौन है ?"

"मेरा नाम है केशव वर्दे। वरदान देकर अपनाया हुआ मै देवी का एक लाडला पुत्र हूँ। यदि हरिजन-बस्ती में इस मां की पूजा-आरती न हुई तो उसकी दृष्टि में हम अपराधी सिद्ध होंगे। मुझे ऐसा लगा कि उसकी दृष्टि में आपसे एक भूल हो जायगी और वह आपकी सेवा स्वीकार नही करेगी। इसीलिए आपसे परिचय न होने पर भी मैने आपसे प्रार्थना करने का साहस किया।"

सन्तूबाबा का चित्त क्षण भर के लिए दुविधा में पड़ गया। केशव का कहना उनके अन्तःकरण को जँच रहा था, लेकिन बुद्धि हार मान रही थी। उन्होंने एकत्र लोगों की प्रतिक्रिया का अनुमान करने लिए अपने लोगों को

***एक प्रकार का मराठी छंद, जिसमें ईश्वर की स्तुति होती है।**

संबोधित करके पूछा, "बोलो भाई ! क्या करना चाहिए ?"

"नई प्रथा शुरू करना हमारा काम नहीं है। हरिजन-बस्ती में पालकी ले जाना आजतक की परम्परा के विरुद्ध है। समाज में यद्यपि आपका प्रभाव है, तथापि शास्त्र-विरुद्ध कार्य करके लोगों के मन को दुखाना अच्छा नहीं है।" किसी एक सज्जन ने उत्तर दिया।

उसका अनुकरण और भी कई लोगों ने किया। देखते-देखते बहुत-सी आवाजें आई। केशव के विरुद्ध अन्दर-ही-अन्दर दबा हुआ असंतोष कड़वे शब्दों में प्रकट हुआ।

"केशवराव, तुम्हारी बात मेरी समझ में आ रही है। उस भावना की महानता को मैं जानता हूँ। लेकिन तुम्हारा यह विचार लोगों को पसंद नहीं आया। मैं इतने लोगों को कैसे नाराज करूँ? यदि मैं ऐसा करता हूँ तो समाज द्वारा दिये हुए बहुत बड़े मान के लिए अपात्र सिद्ध होऊँगा। पंच परमेश्वर कहे जाते हैं, फिर मैं उनके निर्णय के विरुद्ध आचरण कैसे करूँ ?" सन्तूबाबा ने असमर्थता के स्वर में कड़ुवाहट टालने के उद्देश्य से कहा।

"बाबा, आपको क्या करना चाहिए, यह देखने का काम आपका है। परमेश्वर का शुभ संदेश निर्मल हृदय के स्वर्ण-पट पर मिलता है। किन्हीं भी पांच मुखों से परमेश्वर ही बोल रहा है, यह मानना भ्रमपूर्ण है। हरिजन-बस्ती में भजन-आरती के विना ही यदि पालकी आगे बढ़ गई तो मैं आपसे स्पष्ट कहता हूँ कि मां के सामने यह हमारा अक्षम्य अपराध होगा। इस अपराध के न होने देने में ही सबका कल्याण है। यदि आवश्यकता हुई तो प्राणों की भी कीमत देकर मुझे उस कल्याण को प्राप्त करना पड़ेगा।"

केशव के एक-एक शब्द से स्पष्ट रूप से निश्चय व्यक्त हो रहा था। सन्तूबाबा चक्कर में पड़ गये। वे इस भय से कि कहीं जुलूस में कोई अपशकुन न हो जाय, घबरा उठे। "क्या तुम पालकी रोकोगे ?" लोगों में से एक ने बड़ी अकड़ से पूछा।

"आपने मेरी बात का बिल्कुल गलत अर्थ लगाया है।" केशव ने शांति-पूर्वक उत्तर दिया, "मेरे कथन का सत्य आपके अन्तःकरण को जँचे, मां शान्ता

की सही इच्छा आप पहचानें, इसी दृष्टि से इस अन्याय के परिमार्जन के लिए मुझे देवी के द्वार पर आमरण अनशन करना पड़ेगा। जुलूस में कोई भी बाधा डालने की मेरी इच्छा नहीं है। वह जैसी आपकी मां हैं, वैसी ही मेरी भी हैं।"

केशव की धीर-गंभीर मुद्रा इस समय असाधारण तेज से चमक रही थी। सारा समाज स्तब्ध और चकित होकर उसकी ओर देख रहा था। सबका ध्यान मूर्त्ति से हटकर उसकी ओर चला गया। यद्यपि सारा समाज प्रभावित हो गया, तथापि एक आवाज सुनाई दे ही गई, "हमने ऐसे नकली गांधी बहुत देखे हैं।"

लेकिन केशव की शक्ति को सन्तूबाबा ने पूरी तरह पहचान लिया। उन्हें इस बात में जरा भी शक नहीं रहा कि यह मनुष्य जो बात कहता है, उसे किये बिना न रहेगा। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि मूर्त्ति के उत्सव के साथ-साथ ब्रह्महत्या का पाप भी उनके सिर लगेगा। घबराकर केशव की पीठ पर हाथ फेरते हुए सन्तूबाबा ने कहा, "केशवराव, आज इस आनन्द के अवसर पर तुम्हारे जैसे गुणी व्यक्ति को प्राण की बाजी लगानी पड़े और देवी के दर्शन के लिए राह देखनेवाले लोगों का उत्साह भंग हो, यह किसीको भी शोभा नहीं देगा। यदि सद्हेतु से मेरे हाथ से सचमुच गलती हो जाय तो मां शान्ता क्षमा कर देंगी।" इतना कहकर पालकी ले जानेवालों को संबोधित करते हुए वे बोले, "चलो, पालकी मोड़ लो।" और केशव के पीछे-पीछे वे हरिजन-निवास की ओर चलने लगे। सारा जुलूस उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

सैकड़ों हरिजनों का समूह दिनभर उपवास रखकर और पवित्र रहकर कितनी ही देर से पालकी की राह देख रहा था। स्वच्छ आंगन में दो जलती हुई दीपदानियां और फल-फूल देवी के स्वागतार्थ सजाकर रखे गये थे। वहां से काफी दूर हरिजन लोग संकोच में भरे हुए खड़े थे। उत्सुकता से उनके प्राण मानों आंखों में आ गये थे। अपने केशवभाई की बातों पर पूरा विश्वास करके वे पालकी की राह अवश्य देख रहे थे, लेकिन उन्हें यह विश्वास

नहीं था कि पालकी आयगी ही। जब वह प्रत्यक्ष रूप से आकर उनके सामने खड़ी हो गई, तब भी उनको कुछ क्षण ऐसा लगा, मानों वह नहीं है। वे सब चित्र-लिखित से हो गये थे। प्रकृतिस्थ होने पर गदगद कंठ से उन्होंने माता की जय बोली और वन्दना की और भक्ति-विह्वल होकर बालकों की भांति उसकी आखों से आसुओ की धारा बहने लगी।

अन्तःकरण से कंपित होकर सन्तूबाबा को वह दृश्य दिखाता हुआ केशव बोला, "देखिये, यह भक्ति देखिये। मुझे आश्चर्य है कि अपने बालकों का प्रेम देखकर इस मां की आंखो से आसू क्यो नही उमड़ते?" मूर्त्ति की ओर उँगली दिखाकर केशव ने कहा। उसकी आंखे भर आई थीं, आवाज कांप रही थी।

सन्तूबाबा गद्‌गद होकर कहने लगे—"वह भी रो रही होगी। उसे देखने के लिए हमारे पास आंखें नही है।"

"सन्तूबाबा, आप सच्चे धनी है। आपके हृदय का यह धनीपन आपके सारे ऐश्वर्य से बड़ा है। मै किन शब्दों में आपके प्रति आभार प्रकट करूँ?" इतना कहकर केशव ने हाथ जोड़े। सैकडों हरिजनों ने भी हाथ जोड़े।

केशव शान्तामाता के अश्रु देखने का प्रयत्न करने लगा। मूर्त्ति रोने लगी लेकिन पालकी वाली नहीं। नर्तकियों के समूह की आड़ में उसकी ओर किसी का ध्यान न जाने पावे, ऐसा प्रयत्न करती हुई हाड़-मांस की मानवी मूर्त्ति शेवन्ती रो रही थी।

उसके हृदय में आज कोई नई बात ही उदय हो रही थी।

जुलूस में अव आनन्द-ही-आनन्द उमड़ रहा था। दिन कभी का अस्त हो चुका था। नारियल और सुपारी के पेड़ों की लम्बी डालियों पर चांदनी छिटक रही थी। पटाखे छूट रहे थे। जली हुई चंदन-ज्योति टपक रही थी। सोने के सर्प की तरह आतिशबाजी आकाश में टेढ़ी-तिरछी जाकर फूट रही थीं। दीप-रत्नों से सुशोभित पालकी तालाब की चूने की डोली की परिक्रमा देकर देवालय के आंगन में पहुँची। दोनों ओर अनेक प्रकार की वस्तुओं व मेवा-मिठाइयों की दूकानें लगी थीं, जो पेट्रोमेक्स के प्रकाश में अपना-अपना वैभव दिखा रही थी। मन्दिरों की भीतें, खम्भे, कलश सबकुछ जाई के फूलों

की मालाओं से ढक गये थे। आस-पासके गांवों का उस दिन का जाईका सारा वैभव देवी की सेवा के लिए खिल उठा था। त्रयोदशी की चांदनी मे एक ही जाति के श्वेत सुगंधित फूलों से सजा हुआ वह मंदिर सैकड़ों ताजमहलों से अधिक शोभायमान था। पालकी प्रत्येक स्थान पर संगीत के फुव्वारे छोड़ती हुई, सुन्दरियो के नृत्य का रंग फैलाती हुई और समई के मधुर स्वरो से वातावरण को कोमल बनाती हुई देवालय की प्रदक्षिणा कर रही थी।

जब अन्तिम मुकाम करके पालकी मन्दिर में प्रवेश करनेवाली थी, प्रथानुसार उस समय देवदासी का संगीत होने वाला था। शेवन्ती ने व्रत रखा था, अतः सुबह से अन्न का एक दाना भी उसके मुह में नहीं गया था। मन-ही-मन वह 'शिव-लीलामृत' के नवें अध्याय का पाठ कर रही थी।

वेश्या असूनि पतिव्रता। नेमिला जो पुरुष तत्त्वतां।
त्याचा दिवस न सरतां। इंद्रासहि वश्य नोहें।[1]

यह ओवी[2] उसके अन्तःकरण में निरन्तर गूज रहा था। उसे कुछ ऐसा अनुभव हो रहा था, मानों यह सारा उत्सव-समारंभ उसके ही चैतन्य का रूप है। उसकी काया तो निष्प्राण होकर छाया की तरह घूम रही थी, लेकिन उसे ऐसा लग रहा था, जैसे हवा में उड़नेवाले पर की तरह वह निरन्तर कांप रही है और सारे उत्सव की दिव्य मस्ती उसके मस्तिष्क मे चढ़ रही है। देवी की शपथ देकर मां ने आज जबर्दस्ती उसका शृंगार किया था। कांपती शेवन्ती पालकी के सामने आकर गाने लगी :

ऐशी कवणाची कवण ती, मज खुणविती हे।
मेरूचे वरती। चंद्र सूर्याचे परती। जेथें दिवस ना राती ॥१॥
हात देउनी केधवां। नेणों दृश्याचा हा दिवा। मालवितो हेवा ॥२॥

---

[1] **यद्यपि है वेश्या वह नारी, पर पतिव्रत-पद की अधिकारी।**
जोकि अवधि तक माने पति को, अर्पितकर देती मति गति को।
यदि इस बीच इंद्र ही आये। नये प्रलोभन से ललचाये।
किन्तु नहीं जो उसको लखती। एकनिष्ठ बन पति अनुसरती।

[2] **मराठी छंद**

काढुनि भेदाचें जोड़वें। परे पैलाड पड़ावें। तेथें आनन्दें क्रीडावें ॥३॥
वासना लुगडें। फेडुनि व्हावें उघड़ें। सुख बोलता कानडें ॥४॥
नेदी विकाराचें कांकण वाजों। म्हणे अतिगुह्यें निजों।
तेथुनि परतुनि ना उमजों ॥५॥
सोहिरा म्हणेना व्यभिचार। अंगीं बोधाचा संसार।
योगी जाणती चतुर ॥६॥[1]

अबतक अनेक मुकाम हो चुके थे और उतने ही भजन भिन्न-भिन्न रागों में समय के चढ़ते हुए अनुक्रम के अनुसार गाये थे। स्वरों की कोमलता और शास्त्र की निपुणता का वैभव रसिकों के कान तृप्त कर रहा था। लेकिन भजनों के शब्द, उनके भाव-सौंदर्य और अर्थ-गौरव के अस्तित्व की चिन्ता न तो गाने

---

[1] वह किसकी है, कौन कहां की, जो इंगित करती दिन-रात !
वहां उधर उस मेरु शिखर पर,
चन्द्र सूर्य से परे कहीं पर,
जहां नहीं होते दिन रात !
कैसे दृश्य दीपकों को वह, बुझा रही निज कर से रह-रह,
मुझे न कुछ होता है ज्ञात !
द्वैत मुद्रिकाएँ निकालकर, पर परावाणी के होकर,
करती है क्रीड़ा दिन-रात !
मैं त्याग वासना वस्त्र विभव, कर रहा दिगम्बर सुख अनुभव,
होता है पुलकित गात-गात !
वह विकृत विकारों के कंकण, देती न बजाने झनन-झनन,
कहती है मुझसे नई बात !
हम उस रहस्य में करें शमन—लौटें न जहां से कभी चरण,
नित जहां बहे नव मलय वात !
व्यभिचार न यह—'सोयरो' कहता, अंगों में सुख अनुभव करता,
योगी को ही यह सौख्य ज्ञात !
वह किसकी है, कौन, कहां की, जो इंगित करती दिनरात !

वालों ने और न सुननेवालों ने ही की। जन-समूह नर्त्तकियों के गायन से तथा उनके विलासी लावण्य से विमोहित हो गया था। लेकिन उससे केशव का हृदय प्रभावित नहीं हुआ था। देवी के जुलूस जैसे सात्त्विक अवसर का सौंदर्य उससे कुछ बढ़ा, ऐसा उसने अनुभव नहीं किया। उल्टे उसे यह अनुभव हो रहा था कि यह सारा संगीत अपने विलास से प्रसंग के अनुकूल भाव में विसंगति ही निर्माण कर रहा है। वह कोई बड़ा रसज्ञ या मर्मज्ञ नहीं था। लेकिन मूर्त्ति के दर्शन से उसके हृदय में असीम शांति का अनुभव हुआ था, इसीलिए उसे बनानेवाले कलाकार-हृदय से जान-पहचान करने के लिए उसने स्वयं आगे बढ़कर अन्तासेठ से परिचय कर लिया था। उधर गीत हो रहे थे, इधर केशव अन्तासेठ से बातचीत करता हुआ खड़ा था। लोग उत्सव के ठाट-बाट में मग्न थे। भक्त लोग आंखें मूंद कर मूर्त्ति को प्रणाम कर रहे थे। कोई मर्मज्ञ व्यक्ति मूर्त्ति की कारीगरी की प्रशंसा कर रहा था। दूसरे सब कुण्डईकर की भक्ति और सौंदर्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे थे। लेकिन अन्तासेठ को किसी ने पूछा भी नही था। अकेला केशव ही विशेष रूप से जानकारी प्राप्त करके उसका अभिनन्दन करने के लिए गया था।

शेवन्ती गाने लगी—स्वच्छ, सरल, निरलंकार स्वर में। उसके शब्द अर्थ की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कण्ठ से बाहर आने लगे। उस परिचित आवाज से जिस प्रकार अन्तासेठ चौंक उठा, उसी प्रकार पदों के अर्थ-वैभव से केशव चकित रह गया। दोनों ही सामने आकर उस गीत को ध्यानपूर्वक सुनने लगे। भक्ति का रस शब्द-शब्द और स्वर-स्वर से वातावरण में छल-छला रहा था। जिस केशव को प्रार्थना, ध्यान, भजन और आध्यात्म-चिन्तन की आदत और रुचि थी, वह पदों के लाक्षणिक अर्थ में पूरी तरह मग्न हो गया। हृषी उस पद के श्रृंगारिक अर्थ और करुणारंजित सौंदर्य से पागल हो गया। उसे निरन्तर ऐसा लग रहा था कि जैसे उसने कहीं उसे देखा है और उससे परिचय प्राप्त करने के लिए उसका मन अधीर हो उठा। अन्तासेठ इन दोनों अर्थों से अलिप्त इस अद्‌भुत कल्पना से कि उसकी मूर्त्ति ही मानव का रूप धारण कर हृदय में परम रस का अभिषेक कर रही

है, कृतकृत्यता का अपूर्व आनन्द लूट रहा था।

इसी बीच गीत बन्द हुआ। पालकी और उसके पीछे-पीछे लोग मंदिर में प्रविष्ट हुए। लेकिन वे तीन प्राणी जैसे पृथ्वी में गड़ गए थे। इतने में बड़े जोर का हो-हल्ला शुरू हो गया। "दौडो, लाओ.....पानी !" "डाक्टर को बुलाओ।" केशव, अन्तासेठ और हृषी प्रकृतिस्थ होकर कुछ कदम आगे गये और भीड़ को चीरते हुए अन्दर घुसे। शेवन्ती की सुकुमार गोरी देह-लता गिरकर लकडी की तरह हो गई थी और लोग उसके लिए जो-जो उन्हे सूझता था, वही उपाय करने की उतावली में थे। उस दृश्य को देखते ही "हाय भगवान !" कहकर अन्तासेठ ने सिर पीट लिया और शिथिल अंग से वह वही बैठ गया। फूलवन्ती अपनी बालिका को गोद में लेकर सारे देवों को पुकारती हुई रोने लगी। सिर में पत्थर की चोट लगे हुए व्यक्ति की तरह हृषी वही-का-वही बैठ गया।

केशव तीर की तरह डाक्टर को ढूंढने गया। थोड़ी देर में वह डाक्टर को ले आया। उस समय वहां सब सुनसान था। मूर्च्छित शेवन्ती को लोगों ने घर पहुँचा दिया था। डाक्टर को शेवन्ती के पास पहुँचाने की व्यवस्था करके केशव ने हृषी को तलाश किया। उसे मालूम हुआ कि वह भी लोगों के साथ उधर ही गया है।

उस निर्जन स्थान में इस विचार से कि शेवन्ती जल्दी ही अच्छी हो जाय, उसने देवी की प्रार्थना की और मानता की। इसके बाद वह मन्दिर में आकर बैठ गया। जब मन कुछ शांत हुआ तो उसे स्वयं ही इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसका मन इतना दुर्बल कैसे हो गया कि वह मानता करने लग गया।

उसके मन में यह हलचल पैदा हो रही थी कि शेवन्ती के पास न जाकर इस समय वह यहां बैठा है, यह ठीक है या नहीं !

: ६ :

हरिजन-बस्ती में अब नई चेतना आ गई थी। मां शान्ता उनके घर आ

गई थीं और जाते समय अपनी पवित्रता से उनके घर-द्वार और अन्तःकरण पवित्र कर गई थी। इस घटना के उदाहरण से केशव ने उन लोगों के मन में यह बात बैठा दी थी कि तुम लोग शांता मां के प्यारे पुत्र हो। यदि तुमने हमेशा इस बात को याद रखा और उसके अनुसार अपना आचार-विचार और व्यवहार रखा तो युगों से जो छुआछूत तुम्हारे भाग्य में चली आ रही है, वह दूर हो जायगी। केशव ने स्वयं अपने कार्य और व्यवहार से उन्हें सिखाया था कि मरे हुए जानवरों की चीर-फाड़ करना, उनका चमड़ा सुखाना आदि बातें स्वयं साफ रहकर किस प्रकार कुशलता से की जा सकती हैं। बांस की हस्त-कौशल की भिन्न-भिन्न चीजें किस प्रकार सुन्दर और टिकाऊ बनाई जा सकती हैं, यह भी उन्हें सिखाया था। यह काम करते-करते वह उनको इतिहास-पुराण की कथाएँ भी सुनाता था और उनके द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उनके मन पर अच्छे संस्कार पड़ रहे थे। लेकिन एक बात में उसे सफलता नहीं मिल रही थी। वह थी हरिजनों का शराब का व्यसन मिटाना। प्रति शनिवार और त्यौहार पर केशव सच्चे मन से प्रवचन देने लगा और शराब पीने से जो सत्यानाश होता है, उसका वर्णन करने लगा, जिससे वे भोले-भाले प्राणी संतप्त होकर अश्रुपात करने लगते थे और शराब छोड़ने का वायदा भी करते थे। लेकिन उस समय के बीतने पर या दो दिन बाद ही फिर वही बात शुरू हो जाती और शराब उनके घरों में ऊधम मचाने लगती। सरकार के द्वारा कदम-कदम पर शराब की दूकानें खोलने की स्वतन्त्रता दिये जाने के कारण और अधिक उत्पादन की आशा से नारियल के पेड़ शराब के लिए देने तथा जमींदारों का सरकार से सहयोग करने के कारण, हरिजनों के अन्तःकरण का आवाहन करके केशव ने शराबबन्दी का जो आन्दोलन प्रारम्भ किया था वह बार-बार असफल हो जाता था। यद्यपि उसकी निष्ठा कम नहीं हुई थी तथापि इस परिस्थिति का मुकाबला करते-करते उसका मन रुआसा होने लगा था। लेकिन अभी-अभी उसे जो सफलता मिली थी, उससे उसे बड़ा धैर्य मिला था। उसका मन नई-नई कल्पनाओं से पल्लवित हो गया था।

"हमने उस दिन मानता की थी कि आपके हाथ से देवी का महारुद्र करवायेंगे। अब उसे पूरा करना चाहिए। अतः मालिक अब हमारा यह काम कर डालिये।" बूढ़ा गेनू बड़े आदर से उसके पास आकर बोला।

"गेनूदादा, मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि यह 'मालिक-नौकर' की भाषा बन्द करो। हम सब उस एक ही परमेश्वर के बच्चे हैं। यदि मालिक कोई है ,तो अकेला वह। हम सब भाई-भाई हैं, इसलिए मैं तुमसे हमेशा कहता हूँ कि मुझे 'भाई' कहो। मैं तो तुम्हारे लड़के की उम्र का हूँ। वास्तव में तो मुझे तुमको 'केशव' ही कहना चाहिए।" थोड़ा चिढ़कर केशव ने कहा।

बेचारा गेनू खिसिया गया। किसी प्रकार की बहानेबाजी न करके बातचीत का सिलसिला वैसा ही छोड़कर वह विनम्रता से बोला, "फिर हमारा यह काम कब करोगे ?"

"अगर एक वचन दो तो मैं यह खतरा उठा सकता हूँ। तुम अपने कुटुम्ब के बड़े-बूढ़े हो। अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी मानता पूरी हो और बाल-बच्चों का वास्तव में भला हो तो कम-से-कम तुमको तो सारे अमंगल से दूर रहना ही पड़ेगा। यदि तुम्हारे मुंह में औषधि के रूप में भी शराब की बूंद गई तो तुम्हारी मानता तो बेकार हो ही जायगी, साथ ही कुल के सत्यानाश का पाप भी तुम्हें लगेगा। दूसरे कुछ भी करें, तुमको शराब छूनी भी नहीं चाहिए। यदि तुमको यह स्वीकार हो तो मैं तुम्हारे नाम से मानता पूरी करने के लिए बड़ी खुशी से तैयार हो जाऊँगा। बोलो, मंजूर है ?"

बवण्डर के पत्ते की तरह गेनू इस प्रश्न से कांपने लगा। उसके होठों पर 'हां' आ गया था, लेकिन उसका मन अस्थिर हो रहा था।

"यह बात नहीं है कि मुझे अभी उत्तर की आवश्यकता हो। मैं ठहर सकता हूँ। यदि तुमने इंकार किया तो मुझे दुःख होगा। लेकिन मुझे तुमपर क्रोध नहीं आयगा। मैं जानता हूँ कि वर्षों की आदत एक क्षण में नहीं छूट सकती। लेकिन यदि शराब की अपेक्षा देवी पर तुम्हारी भक्ति अधिक हो तो वर्षों की आदत एक क्षण में तोड़ देना तुम्हारे लिए असंभव नहीं होगा।

ईश्वर कभी भी भक्तों का संकल्प व्यर्थ नहीं जाने देता।"

केशव के इन शब्दों से गेनू के मन में नई शक्ति का संचार हो गया। उसका मन दृढ़ हो गया। वह निश्चय के स्वर में बोला, "माता-पिता की नहीं, तुम्हारी शपथ लेकर इन गांधीबाबा के सामने मैं तुमसे कहता हूँ कि मैं आज से शराब को छुऊँगा भी नहीं।"

केशव ने दीवार पर लगे हुए महात्माजी के सस्मित चित्र को अन्तःकरण से देखा और कहा, "बापूजी, अपने इस बूढ़े बालक को अपनी प्रार्थना से बल देते रहिए।" इसके बाद वह गेनू की ओर देखकर बोला, "गेनूदादा, इसी शुभ मुहूर्त में तुम अपना यह पवित्र संकल्प मुहल्ले की सभी स्त्रियों और बच्चों को अपने ही मुह से सुना दो। उनसे कहना कि मुझसे भूल हो जाय और मैं अपनी शपथ को भूल जाऊँ तो मेरी उम्र की ओर न देखते हुए मुझे सही रास्ते की ओर ले आना। चलो-चलो, इसी शुभ मुहूर्त्त में यह अच्छी बात शुरू कर दो। एक क्षण भी व्यर्थ मत खोओ।"

जब केशव का यह कथन गेनू ने अक्षरशः पूरा किया तो सारा हरिजन-मुहल्ला आश्चर्य और आनन्द से पुलकित हो गया। उसके जैसे जबर्दस्त पीने वाले ने सबके सामने यह बात कही थी। इस विचार से कि अब बच्चों की देख-रेख अच्छी तरह होगी, हमारे भाग्य में जो मार-पीट चली आ रही है, मिटेंगी और घर में अच्छे दिन आयंगे, स्त्रियों के मुंह पर चमक आ गई।

बहुत दिनों के बाद केशव ने गेनू की संकल्प-निष्ठा कसौटी पर कस कर देखी। इसके बाद सारी हरिजन-मंडली को बुलाकर एक समारंभ के द्वारा गेनू का अभिनन्दन किया। स्कूल में उसके हाथ से सत्यनारायण की कथा करवाई और बच्चों को गांधीजी की प्रतिमाएँ बांटीं। इतना करने के बाद नवरात्रि की छुट्टी का लाभ उठाकर मानता पूरी करने के लिए वह कवला गया। शेवन्ती के लिए की हुई मानता भी उसे पूरी करनी थी।

जब वह कवला पहुँचा, देवस्थान के अध्यक्ष ने उसका समुचित आतिथ्य किया। उसके ठहरने की व्यवस्था धर्मशाला में की गई। देव-समिति के सदस्यों ने उसके साथ अच्छा व्यवहार किया, लेकिन जब उसने

महारुद्र करने का संकल्प प्रकट किया तो वे बड़ी उलझन में पड़ गए। किसी ने भी स्पष्ट बात नही की। केशव ने ताड़ लिया था कि कोई नई गड़बड़ पैदा हुई होगी।

"जो कुछ हो, वह साफ कहो न ?" उस गोलमाल को असह्य अनुभव कर केशव ने कहा।

अन्त में व्यवस्थापक ने साहस करके कहना शुरू किया, "आपको मालूम ही है कि विगत कितने ही महीने से हमारे मठाधिपति इस मठ मे है। आप यहां हमेशा आते है, लेकिन उनको प्रणाम करने के लिए नही जाते। यह अच्छा नहीं है।"

"वह मेरा प्रश्न है। नमस्कार तो हृदय से निकलता है। किसी को खुश करने के लिए उसके पास विशेष रूप मे केवल प्रणाम करने के लिए जाना मेरे स्वभाव में नही है।" केशव ने उत्तर दिया।

"परन्तु यदि स्वभाव को बदलकर व्यवहार को नही सँभाला तो बाधा पैदा होती है न ? अब अपनी ही बात देखो। मठाधिपति के सामने तुम्हारे विरुद्ध अबतक कई शिकायतें पहुँची है। सुना है कि तुम्हारे ऊपर यह गंभीर आरोप है कि तुम्हारा अछूतो से रोटी-व्यवहार है। पता लगा है कि इस आशय का एक प्रार्थना-पत्र ब्राह्मणों में से कई प्रतिष्ठित लोगों के हस्ताक्षरों से उनके पास गया है। अभी इस प्रकरण की जांच चल रही है और मठाधीश-जी ने व्यवस्था-मंडल से कहा है कि जबतक निर्णय न हो, तबतक तुमको कोई देव-कृत्य मन्दिर में न करने दें।"

"अच्छा . . ." कहकर केशव कुछ देर ठहरा और सब पंचों को ऊपर से नीचे देखकर बोला, "पंचो, यह जनतंत्र का युग है, समझे ! ग्रामजनों के अधिकार न तो व्यवस्थापक-मंडल और न मठाधीश ही ताक में रख सकते है। इसके अतिरिक्त मठाधीश की अनुचित आज्ञा को मानने के लिए देव-स्थान के लोग उनके नौकर नहीं है।"

"लेकिन यह आज्ञा नियम-विरुद्ध कैसी ?" पंचों में से एक दूसरे व्यक्ति ने पूछा।

"यह नियम-विरुद्ध नहीं तो क्या है ? जबतक मेरे ऊपर लगाया हुआ आरोप सिद्ध नहीं होता, मेरे संबंध में नियमानुसार बहिष्कार की घोषणा नहीं होती तबतक मेरे मन्दिर-संबंधी परम्परागत अधिकार को मठाचार्यजी छीन नहीं सकते। मुझे यह समझना आवश्यक है कि सीधे रास्ते न चल कर उन्होंने टेढ़ा रास्ता क्यों अख्तियार किया है ? उसे आप कानून की तरह कैसे मान सकते है ?" केशव के शब्दों में अब तेजी आने लगी थी।

"हमारी यह परम्परागत प्रथा है कि बिना कुछ कहे मठाचार्यजी की आज्ञा का पालन करें। विदेशी शासकों के कानून के आधार पर स्वधर्म से द्रोह करना आप-जैसे को शोभा नहीं देता।" व्यवस्थापक ने कहा।

"अपने खुद के धर्म के संबंध में दूसरे के कानून का आश्रय न लेना मुझे भी पसंद है, लेकिन मेरा यह दावा है कि आपकी यह प्रथा ही धर्म-द्रोह करने वाली है। पर आप लोगों से यह चर्चा करना अनुचित है। आप यहां धर्म की मीमांसा करनेवालों का स्थान ग्रहण करके नहीं बैठे हैं। जो रूढ़ि सच्चे धर्म को स्वीकार नहीं है, उसे तोड़कर समाज का हित करने से ही हम 'वर्दे'[१] कहलाये। वह सात्त्विक विद्रोह का विरुद है और यही मुझे आगे चालू रखना है। बेशक ऐसी बातें समाज के अन्तःकरण का समर्थन लेकर ही मैं करूँगा। लेकिन यदि समाज का हृदय मोहवश है तो कानून के चाबुक लगाकर भी उसे होश में लाने से चूकूंगा नहीं।"

केशव की इस अन्तिम फटकार से पंच-मंडली परेशानी में पड़ गई। कानून की दृष्टि से उनका पक्ष कितना कमजोर है और वे सहज ही किस प्रकार कानून के शिकंजे में आ सकते हैं, यह वे जानते थे। अतः उन्होंने पैंतरा बदला और नम्र भाषा में उसे पुचकारकर 'भैया-दादा' कहते हुए बोले—

"केशवभाई, जरा शांति रखो। हमें थोड़ा समय दो। एक ही पक्ष की बात सुनकर मठाधीशजी का मत बिल्कुल पक्का मानने की आवश्यकता नहीं है। बात को ज्यादा बढ़ाकर समझौते की संभावना समाप्त कर देना बुद्धिमानी नहीं है। यदि आप जरा शांतिपूर्वक विचार करेंगे तो आपको

१. जिसे देवी ने वरदान दिया हो।

भी यह बात जँच जायगी। ऐसा प्रयत्न करने का एक मौका हमें भी दीजिये न? उतने भर से आपका कोई बड़ा नुकसान नहीं होता।"

केशव की खीज कम हो गई थी। वह बोला, "ठीक है। मैं पुरोहित को सुपारी दूंगा और महारुद्र का काम प्रारम्भ करने के लिए कह दूंगा। यदि यह विवाद शांति से समाप्त हो सकता है तो जानबूझकर झगड़ा करने की मेरी भी इच्छा नहीं है।"

इसके बाद पंच लोगों ने केशव के लिए चाय-चिउड़ा मँगवाया। केशव बोला—"क्षमा कीजिये, मैं चाय नहीं पीता—अभी ही नहीं, बचपन से ही।"

उसके उत्तर से पंच लोगों को आश्चर्य हुआ। उनकी समझ में नहीं आया कि चाय तक न पीने वाला यह व्यक्ति हरिजनों के हाथ का भोजन करता है! लेकिन ऐसा पूछने का साहस किसी को नहीं हुआ।

अपने वचनों के अनुसार पुरोहित को सुपारी देकर केशव ने महारुद्र का काम प्रारम्भ कर दिया। ब्राह्मणों के मंत्र-घोष से मन को पवित्र करनेवाली देवालय की शांति का अनुभव करके उसे अत्यंत सुख हो रहा था। कितने ही दिनों तक सारी शक्ति लगाकर काम करने के कारण देवालय का वह प्रसन्न व शांत वातावरण उसे आराम दे रहा था और उस आराम से प्राप्त होनेवाले एकान्त और एकाग्रता से उसकी अन्तःशक्तियां ताजगी प्राप्त कर रही थीं। आसपास के प्रदेश के सार्वजनिक जीवन में आस्था रखनेवाले लोग उससे मिलने आकर यद्यपि उसका बहुत-सा समय ले लेते थे, तथापि उसकी मनःशक्ति में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती थी। उल्टे यह विचार करके कि अपने इस आराम के समय का भी सदुपयोग हो रहा है, उसका सुख बढ़ता ही था। कार्याधिक्य के कारण इच्छा और रुचि होने पर भी उसकी इच्छानुसार पाठ नहीं हो पाता था। उसकी यही भूख यहां अनायास पूरी हो रही थी। मन्दिर में अनेक अप्राप्य ग्रंथों का संग्रह था। सहसा गुप्त खजाने की तरह वह उसके हाथों में आ गया। उसमें सोहिरोबानाथ का अपूर्व अप्राप्य ग्रंथ उसे मिल गया। सोहिरोबा के भजन उसने बचपन में अपने घर में सुने थे और उनमें से कितने ही भजन रचना की मधुरता और राग की सुन्दरता के कारण उसे याद रह

गए थे। लेकिन उनकी अनुभूति की महत्ता की ओर कभी भी उसका ध्यान नहीं गया था। पर देवी की स्वर्ण प्रतिमा के उत्सव में सुने हुए उस भजन ने उसके मन पर गहरा असर डाला था। उसके अर्थ-गौरव के कारण वह उसे याद हो गया था। उसने अपनी प्रार्थना के बाद के भजनों में उसका समावेश कर लिया था। उसी समय से उसके मन में यह उत्कंठा पैदा हो गई थी कि ये सारे पद उसे मिल जायँ। उस उत्कंठा को इस प्रकार योगायोग से पूरी होते देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। 'सिद्धांत-संहिता' और 'महदनुभवेश्वरी' को फुरसत के समय में पढ़ने का निश्चय करके वह सोहिरोबा के मराठी एवं हिन्दी पद पढ़ने लगा। उस समय का ज्ञानेश्वर के मुकाबले का गोआ का यह महाकवि देवदासियों की जबान पर अब भी है, यह जानकर उसे जितना गर्व हुआ, उतना ही इस बात का खेद भी कि उसके जैसे व्यक्ति को उसका पारखी बनना पड़ा। "दौलत देख दिवाना मेरी" यह बात महादजी सिंधिया के मुंह के सामने कहनेवाले निस्पृही और उपदेश करने पर चिढ़ जानेवाले विट्ठलाचार्य ने उसे कुएँ में फेंक दिया।

म्हणे साहिरा शेषशायी हा झाला विट्ठलदास।
खलमित्रासम मानुनि केला क्षीरसागर हा वास ॥*

ऐसा कहनेवाला शान्तिब्रह्म जैसा यह योगी सन्त अलक्षित और उपेक्षित रहे, यह अपनी गोआ की सांस्कृतिक अवनति पर विदारक प्रकाश डालनवाली बात है—यह अनुभव करके उसका मन दुखी हो गया।

पुस्तक एक ओर रखकर अभी पढ़कर समाप्त किये हुए अभंग के चरण वह मन-ही-मन गुनगुना रहा था :

'अग्निमार्जी' सती एकलीच जळे।
आणि पाहावया मिळे सकळ जन।†

---

* सोयरा आज शेषशायी हो गया स्वयं ही विट्ठलदास !
खल को मित्र समान मानकर किया क्षीरसागर में वास !

† धूं-धूं करती चिता-अग्नि में सती अकेली जल जाती है।
उधर सती का दाह देखन बड़ी भीड़ जुड़ जाती है ॥

इतने में ही ताजे पके हुए केले लेकर फूलवन्ती अग्रशाला के ऊपर की मंजिल की देहली लांघकर अन्दर आई ।

"क्यों, क्या काम है ?" केशव ने आरामकुर्सी पर फैले हुए पैरों को समेटते हुए पूछा ।

"मेरी समझ में नहीं आता कि किन शब्दों में मैं आपका आभार मानूं ? सोचा, कम-से-कम दर्शन तो कर लूं । यह सोचकर कि खाली हाथ जाना ठीक नहीं है, अपने घर के पीछे के आंगन में लगे केले ले आई हूं । ये केले शेवन्ती ने ही लगाये थे ।" केलों को उसके पैरों के पास रखकर स्नेहपूर्ण स्वर में फूलवन्ती ने कहा ।

"शेवन्ती ? वह कौन है ? और मेरा कैसा उपकार ? यह कुछ मेरी समझ में नहीं आया । बहन, ऐसा लगता है, तुम्हें कोई गलतफहमी हो गई है ।" आश्चर्य-चकित होकर केशव ने कहा ।

"ऐसा कैसे हो सकता है ? उस दिन जब शेवन्ती को चक्कर आया और मेरे ऊपर मुसीबत आई, तब तुम्हीने तो डाक्टर को बुलाया था न ? उसने फीस भी नहीं ली और कहा कि आपने पहले ही उसका प्रबन्ध कर दिया है । दान देनेवाला भूल जाता है, लेनेवाला भूल जाय तो कैसे काम चलेगा ?"

"अच्छा, वह आपकी लड़की है ? बड़ी गुणवान है । अब अच्छी तरह से है न ?" केशव ने आत्मीयता से पूछा ।

इतने बड़े आदमी के मुह से 'आपकी' जैसा सम्मान-वाचक शब्द सुन-कर फूलवन्ती चौंकी । शेवन्ती के बारे में केशव ने जो उद्गार प्रकट किये थे उससे वह उत्साहित हो गई और शेवन्ती का चित्ताकर्षक वर्णन करके उसे मोहजाल में फांसने के लिए अधीर हो उठी । लेकिन उसने जो प्रश्न पूछा था, उसका उत्तर पहले देना जरूरी था । बोली, "हां, अब वह अच्छी हो गई है । पहले की तरह मन्दिर की सेवाचाकरी करने लगी है । उसने कल आपको मन्दिर में देखा और मुझसे आकर कहा । कहने लगी कि मुझे ऐसा लगता था कि खुद ही जाकर उनका अहसान मानूं और आपसे प्रार्थना करूं

कि 'हमारे घर को भी पवित्र कीजिये।' लेकिन मेरी इतनी हिम्मत नहीं हुई। मां, तू ही जा और अपने साथ नया फल लेती जा, यह सब कहते हुए वह इतनी शरमा गई कि क्या कहूं ?"

"पहला फल भगवान् को अर्पण करते हैं, आदमी को नहीं। लेकिन अब भी वह भगवान् के ही अर्पण होगा। मेरा महारुद्र प्रारंभ होनेवाला है। मैं आपका बड़ा आभारी हूं।" केशव ने कहा। उसने उसकी बात यदि बीच में ही कुशलता से बदली न होती तो वह कितनी बढ़ गई होती, इसकी उसे पूरी-पूरी कल्पना थी।

"आप यहां के महाजन हैं, हम तो सेवक हैं। अगर हम यह पूछें कि डाक्टर के बिल के कितने पैसे हुए तो वह ठीक नहीं होगा। मेरी शेवन्ती से जो सेवा हो सके, वह लीजिये। संकोच न कीजिये। कल से वह पूजा के लिए फूल लेकर आयगी। वे हमारे घर के ही फूल हैं। हमारी शेवन्ती वेणी और गजरे बहुत सुन्दर गूंथती है।" फूलवन्ती ने कहा।

"ठीक है, अब तो अभिषेक का समय हो गया है। आप फिर कभी आइये।" ऐसा कहकर केशव ने फूलवन्ती से होशियारी के साथ छुट्टी ले ली।

उस दिन से शेवन्ती केशव के लिए नियमित रूप से भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के फूल, वेणिया, कमल, हार, गजरे आदि गूंथकर लाने लगी।

केशव के दर्शन और सान्निध्य में दिन का जितना भी समय बीतता था, उससे अन्तासेठ के जाने के कारण घर में जो उदासीनता आ गई थी उसे अब शेवन्ती भूलने लगी।

गर्मी के कारण मुरझाई हुई हरियाली वर्षा होने पर जैसे खिल जाती है, शेवन्ती के मन की भी वही स्थिति हो रही थी। जब वह केशव के लिए माला गूंथती थी तो उसकी वृत्तियां फूलों की ही तरह लहलहा उठती थीं।

अरवी या केले के हरे-हरे पत्तों में रखकर वह प्रतिदिन सुबह-शाम नियमानुसार केशव के लिए फूल लाती थी और कोई-न-कोई काम निकाल

कर हमेशा की अपेक्षा अधिक समय तक मन्दिर में ठहरी रहती थी। उन दोनों में बातचीत कभी-कभी और बहुत कम, एक-दो वाक्य में, होती थी। लेकिन दोनों का मूक अस्तित्व ही एक-दूसरे को प्रसन्न बना रहा था और उसी प्रसन्नता से भावना के धागे बुने जा रहे थे। यद्यपि इस बात का खयाल उन दोनों में से किसी को भी नहीं था, तथापि बहुत दिनों के परिचय से उत्पन्न होनेवाले स्नेह से वे अभिभूत हो रहे थे।

एक दिन सवेरे-ही-सवेरे एक छोटी-सी घटना घटी और विचित्र रीति से वास्तविक स्थिति प्रकट हो गई। शेवन्ती बड़े परिश्रम से उन दिनों न मिलन वाले सोनचम्पा के फूल लाई थी। फूल यद्यपि दस-बारह ही थे, तथापि वे बड़े अपूर्व थे। शेवन्ती के चिन्तन और भक्ति के कारण उनकी नवीनता की बहार और अधिक बढ़ गई थी। हमेशा की भांति पत्तों के दोनों में उन्हें न लाकर वह उन्हें अंजलि में लेकर आई और यह कहते-कहते कि वह उन्हें कितने प्रयत्न से लाई है, उसने उन्हें केशव के हाथ में दे दिया। उन्हें देते हुए भगवान् की साक्षी में उसके हाथों का जो स्पर्श हुआ, उससे सार्थकता की दिव्य अनुपम भावना से उसका सर्वांग तुलसी की मंजरी की भांति सुगन्धित हो उठा। सारे दिन चुपचाप वह अपने अन्तःकरण के आनन्द-सागर में जी भरकर गोते लगाती रही।

लेकिन जिस स्पर्श ने शेवन्ती के अन्तःकरण में दिव्य भावना की पावन लहर दौड़ा दी थी, उसी स्पर्श ने केशव के हृदय की भी शांति भंग कर दी। "मैं नैतिकता के शिखर से गिर गया, समष्टि के नाम पर ईश्वर-पूजन करने की पात्रता मुझमें नहीं रही और जबकि महारुद्र चल रहा है, वातावरण की पवित्रता की रक्षा करने का आन्तरिक बल मुझमें नहीं है," इस प्रकार की भावना उसने अपने मन में बना ली और अचानक स्थान छोड़ देने का निर्णय करके वह वहां से चला गया।

संध्या-समय आनन्द में मग्न शेवन्ती और दिन की अपेक्षा आज कुछ जल्दी ही मन्दिर में आ गई। उस समय भव्य पीतल की शलाखा लगी हुई कमानदार खिड़की के कोने में गरमी से झुलसे इधर-उधर पड़े

हुए चम्पई के फूल देखकर उसे ऐसा आघात पहुंचा, मानो उसपर बिजली गिर गई हो। उसके मन में अब इस बात की कोई आशंका नहीं रही कि केशव वहां से चल दिया है। पुजारी से उसकी सचाई की जांच करने का धैर्य उसके मन में न रहा।

यह कैसे हुआ, क्यों हुआ, इन सब बातों पर व्यथित मन से विचार करती हुई वह इधर-उधर घूमती रही, लेकिन उसे इस स्थिति में बहुत समय तक नहीं रहना पड़ा।

पुजारी ने आवाज दी और उसके हाथ में दो रुपये देकर बोला, "ले, ये तुझे केशवबाबा ने देने के लिए कहा है।"

"किसलिए ?"

"तेरी सेवा के लिए।"

"वे कहां हैं ?"

"मन की हालत ठीक नहीं है, यह कहकर वे गांव चले गए हैं।"

"मन्दिर की पूजा के बदले हमें तनखा मिलती है। फिर मैं पैसे कैसे लूं ?"

"केशवबाबा ऐसा नहीं मानते थे। उनका कहना था कि शेवन्ती इन्हें लेगी नहीं, लेकिन उससे कहना कि ये तो मैंने उसे विशेष रूप से दिये हैं। यदि वह इन्हें नहीं लेगी तो मुझे बहुत बुरा लगेगा। यह बात उससे कह देना।"

पुजारी के इस कथन से शेवन्ती रुआसी हो गई। अपमान की कठोरता मधुर भावना में विलीन हो गई। लेकिन आंखें बन्द करके उमड़ते आंसुओं को अन्दर-ही-अन्दर पीकर उसने उन्हें ईश्वर का प्रसाद मानकर ग्रहण कर लिया।

वापस लौटते हुए उसने खिड़की में पड़े हुए फूल इस ढंग से उठा लिये कि कोई देख न सके और उनमें ही रुपये डालकर उसने उन्हें आंचल में बांध लिया।

घर आकर उसने उनमें से दो फूल और वे दो रुपये भगवान् के सिंहासन के एक खाने में रख दिये और कमरे में आकर किवाड़ बन्द करके चारपाई

पर गिरकर फफक-फफक कर रोने लगी।

सिसकी की आवाज सुनकर फूलवन्ती ने दरवाजे की आड़ से अंदाज करने का प्रयत्न किया। चाबी लगाने के छेद में से उसने अन्दर देखा। वह स्वयं पीड़ित होकर बोली, "हे, मां, ब्राह्मण का खून हमें अब कितनी पीढ़ियों तक रुलाता रहेगा?"

: ७ :

केशव का हरिजन-विद्यालय ठीक तरह चल रहा था। परसों ही सरकारी इंस्पेक्टर ने पाठशाला का निरीक्षण करके केशव की ध्येय-निष्ठा, अध्ययन-शीलता तथा पाठशाला की स्वच्छता और अनुशासन की प्रशंसा की थी और इस प्रयत्न को गौरवशाली कहकर पणजी के 'देबात' नामक समाचार-पत्र में अपने नाम से एक लेख लिखा था।

जनतन्त्र के शासनकाल में उन दिनों जो भी उदारमतवादी पोर्तुगाली शासक गोआ में आये थे उनकी वृत्ति अभी-अभी स्वतन्त्रता प्राप्त करने से प्रफुल्लित बने हुए हिन्दू-समाज में सुधार करने के प्रयत्न को प्रोत्साहन देने की थी। इंस्पेक्टर इसी प्रकार के सज्जन व्यक्तियों में से थे। उनके आगमन से केशव के प्रयत्नों के प्रति उदासीन गांवों का शिष्ट समाज जाग्रत होने लगा और उसके मन में केशव की कुछ कीमत होने लगी। केशव को इस कल्पना से सुख के बजाय दुःख अधिक हुआ कि आज हम इतने गुलाम हो गये हैं कि सरकारी शासकों के वरदहस्त के कारण हमारे प्रयत्नों को समाज में महत्त्व प्राप्त होता है।

गेनू का निश्चय अबतक कायम था और अब यह डर भी नहीं रहा था कि वह टूट जायगा। उसके अनुकरण से हरिजन-मुहल्ले का शराब का व्यसन धीरे-धीरे कम हो रहा था। लोगों की आर्थिक स्थिति में यद्यपि स्पष्ट दिखाई देनेवाला अन्तर नहीं हुआ था तथापि स्त्री-बच्चों की मार-पीट और लड़ाई-झगड़े कम हो गये थे। निर्मलता की वृद्धि हुई थी और छात्रावास के आस-

पास उगाये अनाज और साग-भाजी में भी वृद्धि हो गई थी। बच्चों का भोजन यद्यपि कमली ही बनाती थी तथापि उसकी मदद करने का समय और फुरसत हरिजन-स्त्रियों को भी मिलने लगी थी। उसके कारण कमली का शारीरिक कष्ट जहां कम हो गया था, वहां अनायास ही कम खर्च में अच्छा भोजन बनाने की शिक्षा भी उसे मिल रही थी। यदि संक्षेप में कहा जाय तो हरिजन-मोहल्ले का स्वास्थ्य और सुसंस्कार बढ़ रहे थे और इस कारण केशव-कमली के गृह-जीवन में नई मधुरता आने लगी थी।

लेकिन डाकिये ने अभी-अभी उसे जो पत्र दिया, उसके कारण केशव अत्यन्त अस्वस्थ हो गया। हृषी का पत्र उसके अविश्रांत जीवन का आनन्द था। उसके पत्र बड़े सरल और मधुर होते थे। उन्हें पढ़ने में बड़ा सुख मिलता था, विचारों को काफी भोजन मिलता था। विद्वत्ता, साहित्य-सौष्ठव, संस्कारिता, सहृदयता और सौंदर्य-दृष्टि, इन सब गुणों से वे परिपूर्ण रहते थे। चार-चार, आठ-आठ पृष्ठों के वे पत्र, सुन्दर कागज और आकर्षक शैली के अक्षरों के कारण देखने में ही बड़े अच्छे लगते थे। केशव ने उन्हें तिथि-क्रम से लगा रक्खा था और जब हृषी के स्नेह और सहवास की उसे लालसा होती, और उसका हृदय व्याकुलता अथवा बेबसी अनुभव करता तब उन पत्रों को पढ़कर उसे बड़ी शांति मिलती। केशव यद्यपि अपनी धुन का व्यक्ति था और विलास से दूर रहता था तथापि हृषी की भावना और विलासोन्मुखी शृंगारिकता की प्रशंसा करने की उदार वृत्ति उसमें थी। उसके प्रणयोपासक मन की लहरियां और भंवर बारीकी से देखने तथा उससे उद्‌भूत प्रश्नों की मीमांसा करने और उस संबंध में खोज करके उनका उत्तर ढूंढ़ने में उसे इतना संतोष होता था कि यदि किसी सप्ताह में उसका पत्र न मिलता तो वह खोया-खोया-सा रहता था।

लेकिन आज का हृषी का पत्र पढ़कर वह बड़ा बेचैन हो गया। शब्द छूटे हुए पाठ की तरह वह पत्र जहां असम्बद्ध था, वहां वासना-विकार की उथल-पुथल के कारण अरुचिकर भी था। उसकी यह भावना हो गई कि भूकंप में नष्ट हो जानेवाले सुन्दर शहर की तरह हृषी के मन की स्थिति

हो गई है। डर के मारे केशव का मन बड़ा दुखी हो गया। उसने खूब संयम करके देखा, लेकिन उसका मन किसी भी चीज में न लगा। "कमली, ओ कमली।" उसने आवाज दी।

कमली घर के काम-काज में व्यस्त थी। जब कभी कुछ काम पड़ता तो केशव स्वयं कमली के पास चला जाता था। इस प्रकार की आवाज वह बहुत कम लगाता था। आज एक के बाद एक आवाज सुनकर सब्जी काटती हुई कमली उसे वैसी ही छोड़कर दौड़ती हुई केशव के कमरे में गई। वह संत्रस्त मनस्थिति में सिर को हाथों के बीच थामे बैठा था।

"तुम जब कुछ समय पहले पीहर गई थीं तब तुम्हें हृषी के संबंध में कुछ विशेष बात मालूम हुई थी ?"

केशव का यह प्रश्न सुनते ही कमली चौंक उठी।

"क्या बात है ?" उसने घबराई हुई आवाज में कहा।

"मुझे कोई भी बात मालूम नहीं है। तुम्हें कुछ मालूम है ? अभी हृषी का पत्र आया है। वह कुछ समझ में नहीं आता। लेकिन कुल मिलाकर ऐसा दिखाई देता है कि उसकी तबियत ठीक नहीं है।" केशव ने चिन्ता-ग्रस्त होकर कहा।

"जब मैं पीहर गई थी तब कुछ कानाफूसी चल रही थी। सच-झूठ किसी को मालूम नहीं है। उसकी सचाई-झुठाई मालूम करना भी संभव नहीं था। लेकिन कहा जाता है कि हृषी भैया का दिमाग फिर रहा है। घर के लोग बातों को दबा रहे हैं। वे सब इस बात का बड़ा खयाल रखते हैं कि बात बाहर मालूम न हो। पिताजी कह रहे थे कि यह बात सच होगी, नहीं तो मेडिकल जांच के बाद हृषी भैया को नौकरी मिल जानी चाहिए थी। रंजना का भाग्य कुछ अच्छा नहीं लगता, नहीं तो आगामी माघ में उसका विवाह हो गया होता और तुम दोनों दोस्त आपस में साड़ू बन गये होते। लड़की बिलकुल चिड़िया जैसी हो गई है।" इतना कहकर कमली ने एक निःश्वास छोड़ी।

"तो फिर इतना मालूम होने पर तुम्हारे पिताजी ने क्या किया ?"

"वह क्या करते ? कैसे करते ? यद्यपि वे मामा हैं, तथापि भावी ससुर भी तो हैं न ? उसमें भी रवलू-दादा की कुलाभिमान की कल्पना ! पूछे तो कौन और कैसे ? पेट की पीड़ा पेट में ही रखकर चुप बैठे बिना कोई रास्ता ही नहीं था। रंजना के कारण घर में भी बोलना मुश्किल। लेकिन सबसे ज्यादा जानकारी उसे ही होगी ।"

"तो फिर उसके मन की बात जानने की कोशिश की ?"

"इस इरादे से मैं कितनी ही बार वहां गई, लेकिन मुझे बात करने का साहस ही नहीं हुआ।" कमली अपराधी की भांति बोली।

"तुम सब मूर्ख हो। इतने दिनों तक चुपचाप कैसे बैठे रहे ? मुझसे कहने में तो कोई कठिनाई नहीं थी ?" चिढ़कर केशव ने कहा।

"मैं अन्दर-ही-अन्दर घुट रही थी; लेकिन आपको आघात पहुंचाने का साहस मुझे नहीं हुआ।" शरणागत की भांति कमली ने कहा।

"उधर एक व्यक्ति का सत्यानाश हो रहा है और तुम इसलिए चुप बैठती हो कि कहीं मुझे चोट न लगे ! आग के ऊपर कपड़ा डालने से क्या वह बुझ जायगी ? इन्हीं बातों से हम लोग रसातल जा रहे हैं। कोई मनो-भावना को बहुत महत्त्व देता है तो कोई कुलाभिमान को पकड़कर बैठ जाता है। यदि अब हृषी सुधार के योग्य न रहे तो उस पाप में तुम्हारा भी हिस्सा रहेगा, यह तुम जानती हो न ?" केशव ने उत्तेजित होकर कहा। कमली की आंखों से बड़े-बड़े आंसू टप-टप गिर पड़े।

"तुम्हारे पास यही एक अमोघ अस्त्र है। इसीको लेकर जन्मभर बैठी रहो। मुझे इसी समय हृषी के पास जाना चाहिए। जाओ, मेरे कपड़े ठीक कर दो।"

"आधा घंटे में भोजन तैयार किये देती हूं। कुछ खाकर जाओ।" वह डरते-डरते बोली।

"यहां से दुर्भाट कोई दस-बीस कोस पर नहीं है। यदि एक-आध दिन आदमी दो घंटे देर से भी भोजन करे तो दुनिया नहीं उलट जायगी। मैं जा रहा हूं। मैंने खाना खाया भी तो वह गले के नीचे नहीं उतरेगा। पाठशाला

की और दूसरी सारी व्यवस्था ठीक रखना। कहीं कोई कमी न होने देना।" इतना कहकर केशव ने कपड़े पहने और बाहर निकल गया।

जल्दी-जल्दी रास्ता पीछे छूटता जा रहा था। उसके मन में हजारों विचारों का तूफान चल रहा था। कुशलता के साथ सारी जानकारी कैसे प्राप्त की जाय, घर के लोगों का विश्वास कैसे पाया जाय, हृषी को अपने काबू में कैसे किया जाय और इस संकट से उसे कैसे मुक्त किया जाय, इन सब बातों पर उसका विचार-चक्र बराबर तेजी से घूम रहा था। इसके कारण यद्यपि वह जल्दी-जल्दी चल रहा था तथापि देश-काल का भान उसे नहीं था।

: ८ :

हृषी के घर के सामने का मैदान, बरामदा, दालान तथा चौक लांघकर केशव सीधा बीच के कमरे में आया। उस भरे घर में इतने लोगों की हलचल होने पर भी अस्पताल-जैसा सुनसान था। हरएक चीज जैसे चिन्ता और संकोच के बोझ से दबी हुई प्रतीत होती थी। केशव की मन:स्थिति ऐसी थी मानो उसकी छाती पर कोई पत्थर रखा हो। वह क्षण भर के लिए वहां रुका और उसने अपनी वृत्ति पर काबू पाने का प्रयत्न किया। उसके ध्यान में आया कि उसके पैर धूल में सने हैं और उसने कपड़े भी तो नहीं उतारे हैं। उसने चौक में खूंटी पर कोट-टोपी टांग दिये। छोटा-सा घड़ा लाकर मुंह-हाथ धोये और पानी डालकर सिर ठंडा करने का प्रयत्न किया। खाली घड़ा अन्दर के कमरे में उसी जगह रख दिया। इतने में रमाअक्का रसोई से बाहर आई। केशव को देखते ही वह स्तंभित रह गई। दूसरे ही क्षण रमाअक्का के गालों पर दो बड़े-बड़े आंसू ढुलक पड़े। अपराधी की भांति केशव ने गर्दन नीची कर ली।

"मैं अभी आती हूं।" कहकर वह अन्दर गई और धुला हुआ कपड़ा लेकर बाहर आई। "लो, हाथ-मुंह पोंछ लो, बेटा!" कहकर कपड़ा उसके

हाथ में दे दिया। रमाअक्का आंसू पोंछ कर आई थी। चेहरे पर जबरदस्ती अपनी हमेशा की प्रसन्नता लाने का उसने प्रयत्न किया। लेकिन उसकी कांति का तेज हृद्‌रोग के कारण जल गया है, यह बात केशव ने पहचान ली। अब उसकी समझ में नही आ रहा था कि वह क्या बोले और कैसे बोले।

रमाअक्का ने कहा, "तू तो बेटा, ऐसा आया जैसे पुकार पर भगवान् आते हैं। मैं तो तेरी राह देख ही रही थी।"

"तो फिर मुझे पत्र क्यों नहीं लिखा ? कम-से-कम नौकर के हाथ संदेश तो भिजवा ही देतीं।"

"अरे बेटा, पेट की व्यथा और घर की कथा जबान से कहना कितना मुश्किल है, यह बात हम-जैसी घर-गिरस्ती की स्त्रियों में जन्म लिये बिना कभी मालूम नहीं होती।"

"लेकिन यह सब कैसे हुआ ?" केशव ने पूछा।

"बेटा, क्या बताऊं ? बस तकदीर का खेल है, और क्या कहूं ? एक बार वह देवी की प्रतिमा के उत्सव में शामिल होने घर से बाहर निकला और भावुकता के कारण बेहोश देवदासी के घर चला गया। वही बात चारों तरफ फैल गई। वह बात हृषी के पिता के कानों में पड़ी। हृषी स्वभाव का बड़ा स्वाभिमानी है, लेकिन उसने कभी भी पिता को उलटकर जवाब नहीं दिया था। पर इस बार तो जितना ये गुस्सा हुए, उससे ज्यादा हृषी गुस्सा हुआ। उस समय से उसने सब लोगों से बोलना बन्द कर दिया है। पहले तो वह अपने मन की अच्छी-बुरी सब बातें मुझसे कह देता था, लेकिन इस बार तो वह मुझसे भी ठीक तरह नहीं बोलता। दिन भर अकेले कमरे में बन्द होकर बैठे रहना, अकेले घूमने जाना, रात को भी पढ़ते रहना, भोजन के लिए चोर की तरह आकर बैठना और चुपचाप दो कौर खाकर चले जाना, यह सब कितने ही दिनों से चल रहा है। मुझे ऐसा लगता था कि उसने सब बातें तुझसे कही होंगी और तू आये बिना नहीं रहेगा। ईश्वर ने जो कुछ मेरी तकदीर में लिखा है, उसके बुरे सपने मुझे आ रहे थे। लेकिन उनसे

बोलने की हिम्मत मुझमें कैसे हो सकती है ? अगर कुछ कहती तो वे मेरे पीहर को ही बहुत भला-बुरा कहते, उल्टे मुझसे ही कहते कि तूने बेकार का लाड़-प्यार करके उसको बिगाड़ दिया है। इतना होने पर भी बाप-बेटे का झगड़ा शांत नहीं होता। तो फिर मुंह बन्द करके चुपचाप मार सहन किये बिना दूसरा कौन-सा रास्ता था ?"

रमाअक्का यद्यपि केशव से बात कर रही थी तथापि ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह अपने आपसे ही बोल रही हो।

"अब उसकी तबियत कैसी है ?"

"भैया, कह सकने जैसी और कहकर समझने जैसी यह बात नहीं है। उसकी यह हालत मुझसे देखी नहीं जाती। देखती हूं तो जैसे दिल टूक-टूक हो जाता है और पागल होने की नौबत आ जाती है। कुछ समझ में नहीं आता। कोई उपाय नहीं सूझता। इलाज से तो वह अधिक भड़क उठता है। . . . . अरे हां, तू तो अभी तक भूखा है। तूने देखा न, मेरा दिमाग भी अब पहले जैसा नही रहा। इस दोपहर की धूप में तू वहां से चलकर आया और तेरी थाली परोसने के बजाय मैं अपना रोना रोने लग गई !" इतना कहकर उसने केशव की थाली परोसी और रसोई-घर के बरतन बाहर लाकर रखने लगी।

केशव भोजन करने बैठा और रमाअक्का उसे परोसने लगी।

"रमाअक्का, मुझे बेकार ज्यादा मत परोस देना, मेरी भूख चली गई है। खाने का समय है, सो दो कौर खाये लेता हूं। हृषी से मिले बिना और उसके दु:ख का इलाज किये बिना मुझे अब खाना-पीना अच्छा नहीं लगेगा। उससे मुझे कितनी आशाएं हैं। उसपर मेरा कितना प्रेम है, यह तुम्हें क्या बताऊं !"

"भैया, अगर इस संकट से उसे कोई पार करेगा तो तू ही। मानती हूं कि तुझे भगवान् ने ही भेजा है।"

"भगवान् ऐसा ही करे और तुम्हारी बात सही निकले। धीरज मत खोओ। ईश्वर पर श्रद्धा रखो और प्रार्थना करती रहो। आत्मा की शक्ति

अधिक बलवान है। तुम्हारी प्रार्थना से कठिनाई में पड़े हुए हृषी के मन को रास्ता दिखाई देगा और उससे मुक्त होने का बल मिलेगा। चिंता से इस तरह अन्दर-ही-अन्दर जलना और संकट में धीरज छोड़ देना अश्रद्धा है। तुम तो घर की लक्ष्मी हो। तुम हिम्मत हारोगी तो फिर सबकी कमर टूट जायगी।"

रमाअक्का को ऐसा लग रहा था कि बोलनेवाला केशव नहीं, मानो भगवान् का भेजा दूत है।

"इसी श्रद्धा के जोर पर ही तो जलती आग में ठूंठ की तरह टिकी रही हूं, भैया।"

जैसे-तैसे दो कौर खाकर केशव उठा।

दोनों ही रमाअक्का के कमरे में गये। उसे चटाई पर बिठाकर रमाअक्का कहने लगी—"भैया, क्या होनेवाला था और क्या हो गया! कैसी अच्छी तरह से पास हुआ। सारे गोआ में उसकी होशियारी की धूम मच गई। इस बात को पूरे तीन महीने भी नहीं हुए। इस बीच डाक्टरी जांच के बाद वह अपने काम पर भी चला गया होता। मैं मन के लड्डू फोड़ रही थी कि इस माघ महीने में रंजना को बहू बनाकर घर लाऊंगी, लेकिन ईश्वर को वह मंजूर न हुआ। इधर इनकी यह हालत! उस दिन के झगड़े का नतीजा यह निकलेगा, देखकर ऐसा लगता है कि इस घर की बुनियाद में दीमक लग गई है। यह सब हलाहल पीकर वे औलिया की भांति अपनी घर-गिरस्ती को समेट रहे हैं। लोग मन में कहते हैं कि यह कैसा पिता है? लेकिन नारियल के पेड़ जैसा सीधा खड़ा रहनेवाला यह आदमी कब गिर पड़ेगा, यह नहीं कहा जा सकता! यह है इनकी हालत। अगर कुछ बुरा हुआ तो हमारे दुश्मन तालियां पीटेंगे। रंजना सुनेगी तो क्या करेगी, कह नहीं सकते। इस तरह चारों तरफ संकट मुंह बाये खड़ा है। भगवान् जाने, किसी की नजर लगी है या किसी ने कुछ जादू-टौना किया है! भगवान् का प्रसाद भी ले लिया। अब तो झाड़ा-फूंकी करनी बाकी है!" एक दीर्घ निश्वास छोड़कर रमाअक्का ने कहा।

"रमाअक्का, झाड़ा-फूकी करके घर में एक और पागलपन मत लाओ। यह नजर और झाड़ा-फूंकी की बात नहीं है। हम मरी हुई कल्पनाओं के मुर्दों से चिपट कर बैठे हैं और उनका भूत हमारी छाती पर बैठकर बदला ले रहा है। मीठे नारियल को धूप में डालने से न तो उसम मिठास रहती है, न तेल ही निकलता है। वही हाल हमारी गृहस्थी में भावना का हो गया है। व्यर्थ की कल्पनाओं को तूल देकर हम लोगों की आत्मा का हनन करते हैं और फिर बाद में पछतावा होता है।"

"अब आगे क्या करें भैया ?"

"रमाअक्का, मैंने कहा न कि ईश्वर पर विश्वास रखकर चुप रहो। मैंने यह सब अपने सिर ले लिया है। सो सबकुछ मेरे ऊपर छोड़ दो और ऐसा कोई काम मत करो, जिससे मेरी कोशिशों में बाधा पड़े।" कुछ अधिकार के स्वर में केशव ने कहा। बेचारी रमाअक्का छोटे बच्चे की भांति चुप हो गई।

इसके बाद बिना पैरों की आहट किये केशव चुपचाप दूसरी मंजिल पर गया। हृषी की सारी व्यवस्था वहीं कर दी गई थी। धीरे-से दरवाजा खोलकर वह अन्दर का दृश्य देखने लगा।

यदि कोई अपरिचित व्यक्ति वह दृश्य देखता तो हँस पड़ा होता। लेकिन केशव के रोम-रोम में कांटे खड़े हो गये। हृषी ने धोती को साड़ी की तरह पहन रक्खा था। उसका सुन्दर चेहरा म्लान हो गया था। उससे उसकी सुन्दरता को कुरूपता प्राप्त हो गई थी और वह बड़ा ही भयंकर दिखाई देता था। बढ़ी हुई हजामत, बिखरे हुए घुघराले बाल उसकी भयंकरता को और बढ़ा रहे थे। वह स्त्रियोचित हाव-भाव से नाच रहा था। 'तनन··· तनन···' करके स्वर में गा रहा था।

देखते-देखते केशव की आंखें गीली हो गईं। "हृषी"—उसने आवाज दी। उसकी आवाज में जो करुणा थी, उसका पार न था।

हृषी चौंक गया, घबरा गया। अपना क्रियाकलाप बन्द करके चोर की भांति कुर्सी पर बैठ गया और शरारत-भरी नजरों से केशव की ओर

देखता रहा ।

केशव को बड़ा संतोष हुआ कि उसे देखकर हृषी गुस्सा नहीं हुआ, बल्कि उल्टे नरम हो गया । उसने सोचा कि पहले वह उसके साथ पहले जैसा व्यवहार करे और देखे कि उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है ।

"कहो भई, क्या हाल है ?"

"बहुत अच्छा ।" प्रसन्न होकर हृषी ने कहा । "बड़ी मौज है । मेरा तो राजाओं–जैसा ठाट है । जब इच्छा होती है, खाना खाता हूँ; जैसा मन में आता है बोलता हूं और जो सूझता है, करता हूं । किसी को कुछ नही समझता । सब मुझसे घबराते हैं, मेरी छाया तक से डरते हैं । इतना दिल भरकर हँसता हूं कि पूछो मत, सारा घर गूज उठता है ।"

इतना कहकर वह सचमुच 'हे-हे' करके हँसने लगा । उसकी वह हँसी केशव को रोने से भी अधिक दुस्सह लगी । पेट भर हँसने के बाद जल्दी ही गंभीर होकर हृषी बोला—"क्यों, भई, क्या तुम उसका संदेश लेकर आये हो ?"

"उसका ? किसका ?" केशव ने पूछा ।

"तुम तो बहुत बनते हो ! लेकिन भाई, मैंने तो तुम्हें गोद खिलाया है । जहां दिन नही, रात नही, वहां चांद-सूरज की चोटी पर खड़ी रहने वाली, वहां से सबको इशारे करने वाली, मां होकर कुमारी, पति बिना भी पुत्रवती, सबको आकर्षित करके किसी के भी हाथ न आने वाली ! उसे क्या तुम जानते नहीं हो ? मुझे ही बना रहे हो ?"

"उसने मुझसे सबकुछ कह दिया है !" केशव ने कहा ।

हृषी के चेहरे पर शृंगार की एक सुन्दर रेखा खिच गई । उसके चेहरे की बुझी हुई ज्योति क्षण भर के लिए फिर प्रज्वलित हो गई । उसकी ही मर्जी रखकर उसका विश्वास पाने के लिए केशव ने कहा—"तुमने बिलकुल ठीक पहचान लिया ! मैं तुम्हें उसीके पास ले चलने के लिए आया हूं ।"

"सच ?"

"हां, बिलकुल सच ! लेकिन यह तभी होगा जब तुम मेरे कहे अनुसार

करोगे। लेकिन हां, किसीको भी इसका पता न चलने पावे !"

"केशव, उसने मुझे बहुत सताया है ! वह मुझे सोने भी नहीं देती। इतना मीठा बोलती है, इतना सुन्दर हँसती है ! और जब उसे पकड़ने दौड़ता हूं तो कपूर जैसी जलकर अदृश्य हो जाती है। बस, फिर मैं रोता रहता हूं। कितने ही दिनों से वह मुझे मिली नहीं है। मै तुम्हारे पैर पड़ता हूं, एक बार कैसे ही मुझे उसके पास ले चलो। मुझे माता-पिता किसी की परवा नहीं है। तुम मेरे निकटतम मित्र हो। भाई, मेरा इतना काम जरूर कर दो।"

"जरूर करूंगा, लेकिन तुम रोओ मत ! उसे यह पसन्द नहीं है। कोई मधुर गीत गाओ और सो जाओ।"

"अभी गाऊं ?" ऐसा कहकर वह ताल-स्वर में गाने लगा :

काढुनि भेदाच जोड़वें। परे पैलाड पड़ावें। तिथें आनन्दें क्रीडावें।
ऐशी कवणाची कवण ती। मज खुणविती ॥[1]

जब वह यह पंक्ति गा रहा था, केशव के मन में असंख्य कल्पनाएँ उठ रही थीं। देवी का उत्सव, शेवन्ती की मूर्च्छा, उसके बाद मन्दिर की घटना, इनसब बातों को जिन्हें वह भूल गया था, अब फिर उसके मन में जाग्रत हो गई। हृषी के पागलपन का कारण यद्यपि किसी पर प्रकट नहीं हुआ था, तथापि केशव को उसमें एकसूत्रता दिखाई दे गई। उसके मन में यह आशा पैदा हो गई कि अब कोई रास्ता निकल सकता है।

गीत समाप्त होन पर उसने हृषी को फुसलाकर और प्रसन्न करके स्नेह के साथ सुला दिया और जब उसने यह देख लिया कि वह गहरी नीद में सो गया है तो वह उठा। हृषी के निस्तेज चेहरे को वह बहुत देर तक देखता रहा, देखते-देखते उसका हृदय बर्फ की तरह ठंडा और जड़ हो गया।

जब रमाअक्का को मालूम हुआ कि केशव ने हृषी पर अपना असर डालकर उसे सुला दिया है तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसने कहा, "भैया चार दिन यहीं रहे। तेरे यहां रहने से उसका दिमाग ठीक

---

१. अर्थ पृष्ठ ५८ पर देखिये

रहेगा।"

"रमाअक्का, मै आता-जाता रहूँगा। मै कोई डाक्टर तो हूँ नही, लेकिन जितना आप लोग समझते हैं, उतना पागल वह नहीं है। परीक्षा की मेहनत से और भावनाओं को दबाने से उसको कुछ आघात लगा है। उसके साथ सभी को प्रेम और आदर का व्यवहार करना चाहिए। उसकी मर्जी को देखकर ही उसके साथ सलूक करना चाहिए। थोड़ी-सी भी बात उसकी इच्छा के विरुद्ध न हो। उसे भरपूर आराम और सौहार्द मिलना चाहिए। उसकी बीमारी डाक्टरी दवा से ठीक होनेवाली नही है। मानसिक रोगों को दूर करनेवाले डाक्टर भी होते हैं। उनकी सलाह लेनी चाहिए। मेरा एक मित्र है, मैं उससे पूछता हूँ।"

"भगवान् करे, तुझे इसमें सफलता मिले।"

उसी रात को जब सबने भोजन कर लिया और घर के लोग सो गये तो रमाअक्का के द्वारा खलूदादा ने केशव को अपने कमरे में बुलाया। केशव अन्दर आया तो खलूदादा बिस्तर पर तकिया लगा कर बैठे थे। दीपदानी के पीले प्रकाश में उनके कपाल की शिराएँ उभरी हुई दिखाई देती थी। वे पाषाण-मूर्त्ति की भांति निश्चल बैठे थे। उन्होंने आंखों से ही केशव को बैठने का इशारा किया और दरवाजे की आड़ में खड़ी हुई रमाअक्का से उन्होंने कहा—"अब तू सो जा। तुझे जल्दी उठना है।" उनके शब्दों में स्नेह था, लेकिन आवाज में कठोरता थी। बेचारी रमाअक्का चुपचाप अन्दर चली गई। लेकिन उस ओर कान लगाकर बिस्तर पर पड़ी तड़फती रही। उन दोनों के बीच क्या बातें हुईं, उन दोनों के अतिरिक्त कभी किसी को मालूम नहीं हुईं।

: ६ :

स्वर्णचम्पा के फूलों को हृदय से लगाकर शेवन्ती जी भरकर रोई। उस दिन से उसके जीवन में एक नवीन परिवर्त्तन शुरू हो गया। अन्तासेठ चला

गया था। फूलवन्ती वहां होते हुए भी उसके लिए न होने जैसी थी। लेकिन उस दिन के बाद उसके मन का एकाकीपन समाप्त हो गया। वह तनिक-सा स्पर्श उसके सारे अस्तित्व में व्याप्त हो गया। उसके सिकुड़े हृदय-पुष्प की एक-एक पंखड़ी खिलने लगी। उसे मालूम था कि केशव विवाहित है। उसकी केशव के सम्बन्ध में भावना थी कि वह नर्क में खड़ी होकर दिव्य लोक के पुण्यात्मा की पूजा कर रही है। उसे विश्वास था कि वह अपनी नैतिकता के ऊँचे स्तर से नीचे नही आयगा। उसकी स्वप्न में भी यह इच्छा नही हुई कि वह वहां से रत्ती भर भी नीचे आये। फिर भी उसकी मानस-पूजा किये बिना वह रह नही सकती थी। उसकी बस इतनी ही इच्छा थी कि केशव उसके निरपेक्ष स्नेह को स्वीकार करने जितना विश्वास ही उसपर रखे और उतना विश्वास पाने की पात्रता प्राप्त करने के लिए ही वह अहर्निश साधना कर रही थी।

जिस दिन उसे अपने मन के इस अभिनव परिवर्तन का भान हुआ उसी दिन उसने अपने न्यायाधीश मित्र को एक लम्बा पत्र लिखा। जिसके सामने वह अपना हृदय खोल कर रख सके, ऐसा उसका अपना और कौन था ? उस पत्र में उसने बिना दुराव-छिपाव के सबकुछ लिख दिया और विस्तार के साथ यह लिखकर अंत में पैसे न भेजने के लिए दया की याचना की कि अब आगे से पैसे लेना उसके लिए किसी भी प्रकार से संभव नहीं है। पत्नी-धर्म की अपेक्षा देवदासी का धर्म कितना दारुण है, इसका जो स्पष्टीकरण उसने किया था, उसे पढ़कर वह न्यायाधीश ही नहीं, कोई भी सहृदय और सुशील व्यक्ति नत मस्तक हो जाता।

अन्तासेठ का सहारा अब नहीं रहा था। न्यायाधीश की ओर से मिलने-वाली सहायता उसने स्वयं ही बन्द करवा दी थी। जाते समय अन्तासेठ ने जो रकम जबर्दस्ती उसे दी थी उसे उसने विशेश प्रसंग के लिए अलग रख दिया था। परम्परागत इनाम और मन्दिर की अन्य प्राप्ति में इन दोनों प्राणियों का निर्वाह बड़ी कठिनाई से होता था। अतः शेवन्ती ने सिलाई का वर्ग प्रारम्भ किया। लेकिन देवदासियों के पास अपनी लड़की कौन भेजे ?

ईसाई भण्डारी की दो-चार लड़कियां आती थी, किन्तु वे गरीब थीं। फीस के रूप में प्रति माह दस रुपये देना उनके लिए कठिन था। फूलवन्ती दो-चार घरों से सिलाई का काम लाती थी और उससे कुछ प्राप्ति होती थी, लेकिन उसमें भी उधार ही ज्यादा होता था।

शवन्ती के लिए फूलवन्ती को अनेक लोगों ने तरह-तरह के प्रलोभन दिये। लेकिन इधर शेवन्ती ने सतीत्व का व्रत ले रखा था। अंत में बेबस होकर फूलवन्ती ने एक दिन उससे पूछा—

"बेटी, आजकल उस न्यायाधीश के पत्र तो आते हैं, लेकिन पैंसे नहीं आते! यह क्या बात है?"

"जन्म भर मेरी गुजर-बसर का क्या उसने ठेका ले रक्खा है?"

"वह पैसे भेजे बिना नही रह सकता। तूने ही कोई बात की होगी!"

"संसार में निष्ठा नाम की कोई चीज ही नही है तो आदमी पर इतना विश्वास कैसे रखती हो?"

"निष्ठा का होना कठिन जरूर है, लेकिन असंभव नही है।" किंचित् हार मानकर फूलवन्ती ने कहा।

"उनकी इस निष्ठा का उसी रूप में बदला देना मेरे लिए संभव नहीं था। सो मैंने स्वयं ही उनकी मदद लेने से इंकार कर दिया।" कठोरता से शेवन्ती ने उत्तर दिया।

"क्या तू सचमुच पागल हो गई है? अरे, फिर अपनी गुजर-बसर कैसे होगी? तुझे जो इतना सिखाया, वह क्या जन्म भर दुख सहने के लिए?"

"क्या तूने रकम इसलिए लगाई थी कि ज्यादा ब्याज मिलेगा? जितना भी दुख होगा मैं सह लूंगी, लेकिन तुझे किसी प्रकार की कमी नही होने दूंगी। अब तो कोई बात नही?"

"अपने छोटे-से पेट को भरने और देह के लिए ही मैंने यह सब किया है, यही तेरा कहना है न? तूने अच्छा बदला लिया!" इतना कहकर फूलवन्ती रोने लगी।

मां को इस प्रकार रोते देखकर शेवन्ती को आश्चर्य हुआ कि वह इतने

कटु शब्द कैसे कह गई और वह अत्यन्त दुःखी हो गई ।

"माँ, मेरे मुंह से कुछ-के-कुछ शब्द निकल गये । मुझे क्षमा कर । अभी मेरी तबियत ठीक नहीं है । सूझ ही नहीं पड़ता कि मैं जीऊं या मर जाऊं ! मैं तेरे लिए भी छाती पर जलता हुआ अंगार बन गई हूं ।"

"बेटी इस गोधूलि के समय ऐसी ऊटपटांग बातें मत बोल !" उसे हृदय से लगाकर उसकी पीठ पर प्रेम का हाथ फिराती हुई फूलवन्ती बोली । "उसने उस तरह गला काटा और उसका यह जमाई इस तरह काट रहा है ।" रोते-रोते वह अपने से ही कहने लगी ।

"वह कौन और उसका जमाई कौन ?" आश्चर्य के साथ मां की ओर देखते हुए शेवन्ती ने पूछा ।"

"कभी बताऊंगी । मैं भी एक समय तेरे जैसी ही थी । हम देवदासियाँ बड़ी भावुक होती हैं । उस भावुकता का निभना हमारे भाग्य में नहीं है । लेकिन संसार में दूसरों की चोट से जो न जागें उन्हें हम क्या कहें ? अब तुझे जो अच्छा लगे, वह कर । मैं तो रात-दिन इसीलिए कहती रहती हूं कि जिस तरह मेरे हाथ जले हैं उस तरह कहीं तेरे न जलें । लेकिन तू तो उल्टे उससे परेशान होती है । मुझे अब कोई गहने नहीं पहनने हैं । मैंने पीसने-कूटने का काम किया तो कोई भी मुझे दो कौर खाना दे देगा । मेरी तो अब यही इच्छा है कि तुझे सुख मिले । अब बेटी, ईश्वर जैसी बुद्धि तुझे दे, वैसा कर ।"

इतना कहकर फूलवन्ती चली गई । जो मातृत्व कभी भी दिखाई नहीं दिया था, वह आज शेवन्ती को उसमें दिखाई दिया । आज पहली बार उसे मालूम हुआ कि उसके हृदय में भी वेदना का एक घाव है । यद्यपि उसे उसका उद्‌गम मालूम नहीं हुआ तथापि सहानुभूति से उसका अन्तःकरण द्रवित हो गया ।

लम्पटी व्यक्ति फूलवन्ती को शेवन्ती के लिए सताते रहते थे, लेकिन उसने कभी भी शेवन्ती के सामने वह बात नहीं कही । अतः कष्टों की पराकाष्ठा देखकर भी शेवन्ती को अपना जीवन शांतिमय प्रतीत होने लगा । घर में स्नेह का वातावरण बन गया ।

हरिजन-बस्ती में देवी का स्वागत-समारोह देखकर शेवन्ती की आंखों में आंसू उमड़ आये थे। केशव के प्रति उसकी भक्ति के कारण वे आँसू उसके दिल में उमड़ रहे थे। यदि उन परित्यक्त लोगों की थोड़ी-बहुत सेवा की तो उनके बच्चे पढ़ने-लिखने लगेगे। उसके मन में यह विचार आने लगा कि सिलाई के पैसे दे सकने की सामर्थ्य न होने के कारण स्त्रियों को जो कपड़े की तंगी रहती है या उनके बच्चों को नंगे रहना पड़ता है, उसमें सुधार होगा। यदि केशव के इस कार्य को अपना ही मानकर करना प्रारम्भ किया तो वह उसके स्नेह की पात्र हो सकती है। उसे लगने लगा कि उसके सहवास से दूर रहकर भी उसे सन्तोष मिल सकता है और उसका जीवन सार्थक हो सकता है। अपने दु:ख के कारण वह दूसरों के दु:ख को समझने लगी थी और उसे दूर करने के लिए बेचैन रहने लगी थी। जब कभी उसके मन में यह विचार आता था कि यदि कभी उसकी इस सेवा की बात केशव को मालूम हुई तो उसे कैसा लगेगा, तब उसका मन अन्दर-ही-अन्दर पुष्प की भाँति खिल उठता था और उसे ऐसा लगता था मानों उसमें से कोई अपूर्व सुगंधि प्रस्फुटित हो रही है।

लेकिन अपना यह विचार मां से कहने का साहस उसे नहीं होता था। एक दिन वह मां से बिना कहे ही हरिजन-बस्ती में गई। उसने अपने सौजन्य से वहां की स्त्रियों और बच्चों से जान-पहचान कर ली और उनका विश्वास संपादन कर लिया। उनके सुख-दु:ख की बात पूछी और उनका थोड़ा-बहुत सिलाई का काम कर दिया।

"क्या तुम हमारे भाई की पत्नी हो ?" किसी एक ने उससे पूछा। इतनी सौजन्यता का व्यवहार करनेवाली यह मध्यम स्थिति की स्त्री अपने भाई की पत्नी के अलावा और कोई हो ही नहीं सकती, इस दृष्टि से उसे सारी स्त्रियाँ देख रही थीं।

इस प्रश्न से शेवन्ती को पहले कभी अनुभव न होनेवाला सुख अनुभव हुआ। वह क्षण भर के लिए चक्कर में पड़ गई। लजा गई और बोली, "छी:, मैं उनके घर की नौकरानी के रूप में भी शोभा नहीं देती, लेकिन

मुझे ऐसा लगता है कि मैं भी उनकी तरह कुछ-न-कुछ तुम्हारे लिए करूं।"

पहला दिन अच्छी तरह बीत गया। धीरे-धीरे नियमित रूप से वह वहां जाने लगी और लड़कियों को शिक्षा देने लगी। जिस प्रकार गांव के लोगों को यह बात मालूम हुई, वैसे ही फूलवन्ती को भी।

एक दिन जब वह मन्दिर में बत्ती ऊंची कर रही थी तब पुजारी ने पूछा—"तुम उधर हरिजन-बस्ती में भी जाती हो और यहां मन्दिर में भी आती हो। है न?"

"आती हूं, लेकिन नहा-धोकर और साफ कपड़े पहनकर। वैसे तो गंगा और देवदासी के लिए कोई छूतछात नहीं है न? जो देवदासी के घर से आता है उसके लिए मन्दिर के अंदर आने में रोकटोक नहीं होती।" शेवन्ती ने यह बात बिलकुल स्वाभाविक ढंग से कही थी, लेकिन चोर की दाढ़ी में तिनका! पुजारी को ये शब्द तीर की तरह लगे और इस मार्मिक चोट से वह सहम गया। उसे कोई उपयुक्त उत्तर न सूझा। वह स्तंभित रह गया। एकदम चुप।

पुजारी के व्यंग का शेवन्ती के मन पर कोई विशेष असर नहीं पड़ा, लेकिन जब उसने देखा कि हरिजन भी उसकी जाति को निंद्य मानते है और उसके हाथ का खाना खाने में संकोच करते है तो उसे बड़ी वेदना हुई। लेकिन वह दृढ़ रही, निराश नही हुई। जिस दिन म्लेच्छ के साथ उसे रहना पड़ा था और उसने जिस प्रकार अत्यन्त हीनता का अनुभव किया था, उसी प्रकार जिस दिन प्रतिमा की स्थापना हुई थी उस दिन उसने अत्यन्त दिव्यता अनुभव की थी। उस दिन उसे जो मूर्च्छा आई, उसके साथ मानो उसका पुराना अस्तित्व नष्ट हो गया और वह शुद्ध-अशुद्ध के द्वैत के परे पहुंच गई। शेवन्ती ने विचार किया कि अब आगे दूसरों की भलाई करने के लिए, दीन-दुखी लोगों का दुख निवारण करने के लिए जीना चाहिए और वह लात मारनेवाले बच्चे को प्यार करनेवाली मां की तरह हरिजनों की सेवा करने लगी।

शेवन्ती सबकी टीका-टिप्पणी का विषय बन गई थी। सच्चरित्रता

के कारण रूप के दीवाने उसके दुश्मन हो गये थे और इस प्रयत्न में लगे हुए थे कि किसी प्रकार उसे अपने जाल में फंसावें।

उसके बारे में जो तूफान खडा हो रहा था, उसका आभास उसे हो गया था। लेकिन उसका मन एक ही लौ पर स्थिर था और वह था केशव। उसे इस बारे में कोई शंका नही थी कि यदि वैसा कुछ हुआ तो वह उसकी सहायता करने के लिए आधार बनकर अवश्य आगे आयगा। इतना ही नही, उस आधार का अनुपम आस्वाद प्राप्त करने के लिए शेवन्ती चाहती थी कि वह सारा तूफान उठे और उसपर टूट पड़े।

: १० :

केशव के मन में अब रात-दिन एक ही बात समाई रहती थी। उसके मन में एकमात्र यही विचार घूमता रहता था कि हृषी को फिर से किस प्रकार मानवी स्थिति में लाया जाय। गोमान्तक में जितने भी प्रसिद्ध डाक्टर थे, उन सभी से उसने भेंट की और उनसे हृषी की बीमारी की चर्चा की, लेकिन इस प्रकार की मनोविकृति की बीमारी दूर करनेवाला एक भी विशेषज्ञ उसे न मिला। फिर भी उसने धैर्य न छोड़ा। उसको पूरी आशा थी कि हृषी अवश्य ठीक होगा। हृषी के सारे पत्र उसने जिस क्रम से जमाये थे उसी क्रम से बारीकी के साथ उनका निरीक्षण करके वह उसके छोटे-छोटे उद्‌गारों और हलचलों के तारीखवार नोट ले रहा था और उन्हें पढ़कर इस बात की खोज कर रहा था कि उससे कोई संगति बैठती है या नही और मन-ही-मन इलाज ढूंढ़ रहा था। अन्त में उसके सारे नोट और पत्र पढ़कर एवं सारे तथ्य समझकर एक डाक्टर ने उससे कहा कि यह मनोविकृति दवाई हुई काम-वासना से ही उत्पन्न हुई है। परीक्षा के अध्ययन से बुद्धि थक जाने के कारण इस कल्पनाशील और भावुक हृदय के व्यक्ति को एक जबरदस्त धक्का लगा है। कठोर आचार-निग्रह के कारण उसके भावुक हृदय को वर्षों तक भूखा रहना पड़ा है और इसी कारण स्त्री-संसर्ग की लालसा ने उसे ग्रस लिया है। स्थिति काफी गंभीर है। मैं नहीं जानता कि पागलखाने में भेजने से उसका

सुधार होगा। मुझे इस विषय में रुचि है। इस सम्बन्ध में मैंने बहुत-से ग्रन्थ इकट्ठे किये हैं और उनका अध्ययन किया है। लेकिन प्रयोगों के सम्बन्ध में मैं अनभिज्ञ हूं। मुझे ऐसा नहीं लगता कि स्त्री-सुख मिले बिना वह केवल प्रयोगों के द्वारा ही ठीक हो सकता है। उसके प्रिय व्यक्तियों को उसे विश्वास में लेकर खूब बुलवाना चाहिए। इससे उसके अन्तःकरण का भार हलका होगा। यह काम जितनी कोमलता से कुशल स्त्री कर सकती है उतना तुम और हम से नहीं हो सकता। धीरज रखकर कुशलता के साथ इलाज की योजना की जानी चाहिए, नहीं तो बीमारी का अधिक बढ़ना ही संभव है।"

"तो डाक्टर, आपके पास जो महत्वपूर्ण पुस्तकें हों, वे मुझे दीजिये। मैं उनका अध्ययन करूंगा। हृषी मेरे साथ अच्छा व्यवहार करता है। कम-से-कम उसे बुलवाने के काम में तो पुस्तकों का अध्ययन सहायक होगा।" केशव ने कहा।

रात-रात भर केशव उस ईसाई डाक्टर की फ्रेंच और अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ने लगा। पाठशाला का काम अब उसने कमली को सौंप दिया था। उसका बहुत-सा समय हृषी के सहवास और पुस्तकों के पढ़ने में बीतता था। केशव की यह लगन देखकर कमली को यह डर लगने लगा कि कहीं वह भी पागल न हो जाय।

एक दिन रमाअक्का से केशव ने कहा, "रमाअक्का, स्त्री का सुख मिले बिना हृषी के सुधार की आशा दिखाई नहीं देती।"

"तो फिर क्या करें, भैया?" उसने पूछा।

केशव ने कहा—"तुम यह बात रंजना से कबतक छिपाये रहोगी?"

"मैं नहीं जानती कि अबतक यह बात उसे मालूम नहीं होगी।"

"तो फिर उससे कहकर क्यों नहीं देखतीं?"

"भैया, हालांकि स्वार्थ के आखें नहीं होती हैं, फिर भी तुम ही बताओ कि भाई की लड़की होने पर भी ऐसी बात कैसे कही जा सकती है कि जानबूझकर पागल के साथ ब्याह कर ले।"

"रमाअक्का, इस तरह के मामले में कौन किससे कह सकता है? लेकिन

यदि रंजना को स्वयं ही ऐसा लगे कि उसे कुछ करना चाहिए तो ? संकोच के कारण मन में सहायता पहुंचाने की भावना होने पर भी वह ऐसी बात नहीं कह सकेगी और हृषी के अच्छे होने की जो संभावना है वह भी खत्म हो जायगी ।"

केशव के इस उत्तर से रमाअक्का के मन में आशा का उदय हो गया और उसने ऐसा साहस करने का निश्चय कर लिया। इस निश्चय के अनुसार वह अपने मायके भी हो आई। उसका उतरा हुआ चेहरा देखकर केशव ने पूछा, "क्या हुआ, रमाअक्का ? रंजना क्या कहती है ?"

"भैया, लड़की की हालत तो बड़ी दयाजनक हो गई है। हृषी की इस सारी स्थिति को सुनकर बेचारी फफक-फफककर रोने लग गई। आंसू रोक-कर मुझे ही उसे समझाना पड़ा। मैंने उससे यह नहीं कहा कि तू ऐसा कर या वैसा और न मैंने उसे कुछ सुझाया ही; क्योंकि मुझमें उतना धीरज ही नहीं रहा था। लेकिन उसीने मुझसे कहा—'अक्का, अगर विवाह होने के बाद ऐसी हालत हुई होती तो क्या मै उनको छोड़कर चली आती ? पुरोहितों के सामने पाणिग्रहण नहीं हो सका तो क्या इसीलिए आठों पहर चुप रहकर यह पीड़ा सहती रहूं ? मैं स्वयं ही बेहया बनकर अपने मुंह से माता-पिता से कैसे कहूं ? आप आई है तो आप ही कोई रास्ता निकालिये न ?" कहते-कहते रमाअक्का का गला भर आया ।

"अक्का, तुम स्त्रियों के पुण्य को देखकर मुझे गोआ के उज्ज्वल भविष्य की आशा होती है ।" केशव गद्‌गद्‌ होकर बोला ।

"भैया, यह हमारे पुण्य का फल नहीं है। यह तो सावित्री और गान्धारी का लहू हमारी देह में बह रहा है।

"फिर आगे क्या हुआ, रमाअक्का ?"

सारी लाज छोड़कर मैंने दादाभाई के सामने यह बात छेड़ी। वे बोले, "तुम्हारा कहना ठीक है, फिर भी जानबूझकर अपने ही हाथों अपनी लड़की को कुएं में कैसे ढकेलें। लोग क्या कहेंगे ? पिता का भी कुछ कर्तव्य होता है न ? अगर ब्याह के बाद कुछ होता तो 'लड़की के भाग्य है' ऐसा

कहने के अलावा कोई चारा न रहता। तेरी तरह हम भी मन-ही-मन रोते हैं। रात-दिन देवी की प्रार्थना करते है, लेकिन जो बात न तो समाज के और न शास्त्र के हिसाब से ठीक है, उसे कैसे करें ?" उनका यह कहना उनकी निगाह से ठीक था, मैं इसपर क्या कहती ? बस, मैं जैसे-तैसे रंजना को समझाकर निराश होकर लौट आई ।"

"बिना विवाह पागलपन दूर नही होता और बिना पागलपन दूर हुए विवाह नहीं होता, यह एक विचित्र उलझन पैदा हो गई है, रमाअक्का।" चिन्तित होकर केशव ने कहा ।

"भैया, जहां स्वयं मामा अपनी लड़की देने को तैयार न हो, वहां दूसरा कौन तैयार होगा ?"

"रमाअक्का, और कोई लड़की मिल भी जाय तो कोई लाभ नहीं। यदि लड़की हृषी की पहचान की न हुई तो, डाक्टरों का कहना है कि उससे कोई लाभ नहीं होगा ।"

"तो फिर क्या कोई और उपाय नहीं है, भैया ?" घबराकर रमा-अक्का ने पूछा ।

"एक उपाय है अक्का, और वह यह कि किसी नर्तकी देवदासी की सलाह लेनी चाहिए। यह बात भी सरल नहीं है। पागल से सम्बन्ध करके उसे सुधारने का निश्चय करनेवाली स्त्री का मिलना भी तो बड़ा कठिन है ।"

"लेकिन इससे भी ज्यादा कठिन सवाल इस घर का है। इसे पहले छोड़ देना पड़ेगा। इस बात के लिए उनको राजी कर लेना बहन के लिए भी संभव नहीं होगा। मेरे मुंह से तो इस बारे में एक भी शब्द नहीं निकल सकेगा ।"

"इस सम्बन्ध में मैं तुम्हारे जितना निराश नहीं हुआ हूं, अक्का। ऊपर से पत्थर की तरह कठोर दिखाई देनेवाले दादा के हृदय में हृषी के लिए कितना पुत्र-प्रेम है, इस बात की कल्पना पहली बार मुझे उस रात को हुई। इस विचार से कि उनकी कड़ाई के कारण ही लड़के की ऐसी हालत

हुई है, वे बेचारे अन्दर-ही-अन्दर सुलगते जा रहे है। वे ऐसे मामलों में कितने ही आग्रही और कठोर हों, लेकिन यह देखते हुए भी कि हृषी का जीवन बर्बाद हो रहा है, मैं नही समझता कि वे अपने ही जिद्द पर अटल रहेंगे।"

"भैया, जैसा तुम्हें लगता है सचमुच वैसा है नही। रस्सी जल जाती है, पर उसकी ऐंठ नही जाती।"

"फिर भी मैं कोशिश कर देखता हूं।" केशव ने कहा। उसी रात को उसने रवलूदादा से भेंट की। रमाअक्का से जो बातें मालूम हुई थी, वे सब बातें उसने कहीं और यह भी बताया कि उसने कौन-सा मार्ग सुझाया था। रवलूदादा ने पूछा—

"इसपर उसने क्या कहा ?"

"ऐसा दिखाई नही देता कि रमाअक्का कोई आपत्ति करेंगी।" केशव ने डरते डरते कहा।

"वह आपत्ति नही करेगी। उसके पीहर के लोगों के लिए यह कोई नई बात नही। वह पुत्र-प्रेम में अन्धी हो गई है। उसे कुल-धर्म, कुल-परंपरा कुछ भी नहीं दिखाई दे रही है। हम नित्य शालिगराम की पूजा करते है। वह भूल गई है। लेकिन केशव, मैं तो यह नहीं भूल सकता। तू सच्चरित्र है, इसलिए मुझे तेरी बहुत-सी बातें पसन्द न होने पर भी मेरे मन में तेरे लिए आदर है। तो फिर तू ही ऐसी कल्पना लेकर आया है ?" रवलूदादा इस तरह कहने लगे जैसे उनकी श्रद्धा पर आघात पहुंचा हो।

"दादा, यहां हमारे सामने एक आदमी का सर्वनाश हो रहा है। यदि उससे उसे छुड़ाने का एकमात्र उपाय यही हो तो क्या उसे हम अपने धर्म या परंपरा की कल्पना के लिए छोड़ देंगे और उसे ही चरित्र कहेंगे ?"

"केशव, जब हम पुत्र की कामना करते है तो इसीलिए कि वह कुल-धर्म और कुल-परंपरा को चालू रखे। इसलिए नहीं कि मरने के बाद हमें पिण्ड-दान करे। जो पुत्र परंपरा का पालन नहीं करता, उसका पिण्ड पितरों को नहीं पहुंचता। हमारे समाज में जबसे व्यभिचार का व्यसन प्रतिष्ठा के साथ जगह पा रहा है, तब से समाज रसातल को जा रहा है। ऐसे समय में

जिन थोड़े-से परिवारों ने शील के प्रति समाज की निष्ठा अटल बनाने के लिए अपनी सारी इच्छा-वासना जलाकर चरित्र का दीपक प्रज्वलित रखा, उन्हीं में हमारा परिवार भी है। शील में समाज की निष्ठा बनाये रखने के व्रत के लिए अबतक अनेक लोग काम आ चुके होंगे। हमसे कोई पाप हो गया है, इसीलिए हृषी की यह दशा हो गई। मेरी श्रद्धा तो अपने शालिग-राम पर है। मैं तो 'औषधं जान्हवी तोयं वैद्योनारायणो हरिः'[1] में विश्वास करता हूं। यदि हृषी को अच्छा होना होगा तो वह दामोदर के चरणों का तीर्थोदक पीकर ही अच्छा हो जायगा।"

"दादा, आपकी श्रद्धा अच्छी है। लेकिन आदमी को भी तो प्रयत्न करना चाहिए।"

"प्रयत्न जरूर करना चाहिए, केशव। मै नाहीं कब करता हूं? लेकिन व्यक्ति के मोह से कुटुंब अधोगति की ओर जाय, यह कहां का न्याय है?"

"दादा, औषधि को ही अन्न समझकर आपने यह विचार बना रखा है। दिल में दारुण व्यथा होने पर भी अपने वंश के लिए प्राणों से अधिक प्यारे पुत्र को गंवाने के लिए आप तैयार हो गए हैं, यह महानता क्या मुझे दिखाई नही देती?"

केशव की इस बात पर खलूदादा की आंखें लाल हो गई। दांतों को भींचकर उन्होंने आंखों में आने वाले आंसू वहीं रोक लिये। उनकी कनपटी जल्दी-जल्दी चटकने लगी। कपड़े से वह अपने छाती पर के बालों का पसीना पोछने लगे। कुछ देर रुककर बोले, "केशव, हमारे समाज में इस प्रकार के उदाहरण भी कम नहीं हैं, जबकि औषधि ही अन्नसरीखी बनकर अन्त में विष हो जाती है। हमारे ईसाई डाक्टर दवाई के नाम पर ब्राण्डी देते हैं और फिर वही सारे घर को रसातल में ले जाती है। मैंने अपनी आंखों से ऐसे कई उदाहरण देखे हैं, केशव। इसीलिए इस प्रकार की बातें आपद् धर्म के रूप में मानकर भी नहीं करनी चाहिए। हमारे ग्रामवासी ताड़ी के लिए दिये

---

१. गंगाजल इसकी औषधि और भगवान वैद्य है।

नारियल के पेड़ों की छांह में भी खड़े नहीं होते और यदि शराब का छींटा भी शरीर पर गिर जाय तो सिर से पैर तक स्नान करते है। इसीलिए तो अबतक उनका धर्म रहा है और हम ब्राह्मण होने पर भी नाली में गिरते हैं।"

अभी बताई हुई ग्राम की नवीन जानकारी प्राप्त करके केशव चकित रह गया। रवलूदादा की दलील उसे भी मान्य थी; लेकिन हृषी के सम्बन्ध में यह बात उसे जंच नही रही थी।

"दादा, यह बात तो आप भी नही कहेंगे कि आपका कहना हर किसी के लिए ठीक है। मै भी मानता हू कि इसमे खतरा है, लेकिन ईश्वर में श्रद्धा रखकर उस खतरे को उठाना ही चाहिए। हमारी सच्ची-झूठी जो भी व्यक्तिगत कल्पना है, उसे हम अपने ऊपर ही आजमा सकते है, लेकिन उसे ही अन्तिम सत्य मानकर उसपर किसी व्यक्ति का जीवन होम देने का हमें क्या अधिकार है? कल यदि आपके अतिरिक्त रमाअक्का, लीलू बहन और मुझे, हम सब लोगों को लगे कि इस उपाय से हृषी अच्छा हो जाता, लेकिन आपके आपत्ति करने से न हो सका, तो आपको कैसा लगेगा? क्या कभी आपने इस बात का भी विचार किया है?"

केशव के इस प्रश्न से रवलूदादा चक्कर में पड़ गये।

"केशव, यदि मैं इतनी जिम्मेदारी उठाने के लिए तैयार हुआ तो वह ईश्वर के यहां अहंकार कही जायगी। तुम्हें भी उतनी ही चिन्ता है जितनी मुझे। कुल-धर्म कोई मेरे अकेले के लिए नहीं है। यदि तुम्हारा सबका एकमत हो तो उसे अपने कुल-देवता का मत समझकर चुप रह जाऊंगा। मै तुम्हारा विरोध नहीं करूंगा। हां, जबतक मेरे प्राण हैं मै अपनी सम्मति नही दूंगा।" इतना कहकर रवलूदादा उठे। केशव भी उठा। दादा के हाथ अपने हाथ में लेकर धीमे स्वर में उसने कहा---

"दादा, क्या मुझपर गुस्सा हो गये?"

"नहीं रे, यह गुस्सा नहीं है। तूने मेरी परीक्षा ली है और चैलेया के पिता जैसी निठुरता के साथ मै बोल रहा हूं। मां की ममता संसार को

दिखाई देती है, लेकिन पिता का निष्ठुर प्रेम आजतक किसी ने नहीं देखा। यदि तेरे विचार को मैं स्वीकार करता हूं तो मुझे शालिगराम की पूजा का अधिकार नही रहता। जा-जा, मेरा तुझसे कोई विरोध नहीं। तू अब मुझे अधिक तंग मत कर।" इतना कह कर रवलूदादा अपने सोने के कमरे में चले गये और दरवाजा बन्द कर लिया।

केशव उस बन्द दरवाजे की ओर देखता हुआ कितनी ही देर तक खड़ा रहा।

: ११ :

जब फूलवन्ती को यह मालूम हुआ कि केशव ने उसे बुलवाया है तो उसे बेहद खुशी हुई। उसके मुह में पानी आ गया। उसे आशा हो गई। उसने बहुत दिन पहले ही यह बात जान ली थी कि शेवन्ती केशव की ओर खिच रही है। यदि केशव और उसकी घनिष्टता हो जाय तो शेवन्ती को थोड़ा-सा सुख तो अवश्य मिलेगा। उसके जीवन को दिशा मिलेगी। वह अपनी जाति-बिरादरी में अभिमान के साथ जा-आ सकेगी और उनके बीच जो दीवार खड़ी हो गई थी वह नष्ट हो जायगी। यह विचार करके फूलवन्ती प्रफुल्लित हो गई। अधीरतापूर्वक उसने अपने द्वार पर फूले हुए फूल तोड़े और जल्दी-जल्दी गूंथकर उ हें पूजा की थाली में रखकर अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए देवी की आराधना की। इतना हो जाने पर इस बात का विचार करके कि क्या और कैसे बोलकर केशव से अपना मतलब सीधा किया जाय, उसने मंदिर की अग्रशाला में केशव के ठहरने के स्थान पर जाकर उससे मुलाकात की। आसपास किसी को भी न देखकर उसे संतोष हुआ।

"क्या आज्ञा है ?" फूलवन्ती ने अर्थ-पूर्ण हँसी हँसते हुए केशव से पूछा।

"आज्ञा नहीं, मैं तो आज प्रार्थना करने के लिए आया हूं।" उसकी हँसी की ओर ध्यान न देकर केशव ने कहा।

"इस तरह की बातों से हमें लज्जित करना क्या आपको शोभा देता है ?"

"ऐसा मैं शिष्टाचार के लिए नहीं कर रहा हूँ । मैं तो अपने मन की बात कह रहा हूं । बात बड़ी नाजुक है । उसे कैसे छेड़ूं ?" सचमुच ही चक्कर पड़कर केशव ने कहा ।

"इस तरह के सवाल बिना पूछे ही हमें मालूम हो जाते हैं । लेकिन उसके लिए इतनी दिखावे की क्या जरूरत है ? क्या मैंने आपको पहले नहीं बुलवाया था ? हमारा घर क्या आपके लिए पराया है ?"

फूलवन्ती उसके बारे में ऐसी कल्पना करे, इसमें उसे वैषम्य दिखाई दिया । लेकिन वह तो इससे भी बुरी बात सुनने की तैयारी करके आया था । खिन्न एवं गंभीर होकर वह बोला—

"बाई, बिना कारण तुम्हें गलतफहमी हो रही है । बैठो, मैं तुम्हें सारी बातें बताता हूं ।" इतना कहकर उसने संक्षेप में हृषी की कथा कही और बोला—"यदि तुमने शेवन्ती से इतनी बात करवा दी तो मैं तुम्हारा जन्म भर के लिए ऋणी हो जाऊंगा । तुम्हें एक कुल के उबारने का पुण्य मिलेगा । पैसे का सवाल नहीं है ।"

"आपने ही उस दिन शेवन्ती को जीवनदान दिया था, केशवबाबा । आपकी कोई भी बात हम टाल नहीं सकते । लेकिन मैं आपको बता रही हूं । वास्तव में वह मेरे कहने में नहीं है । भगवान ही जाने, उसके दिमाग पर कैसा पागलपन सवार हुआ है । आजतक उसने बड़े-बड़ों की उपेक्षा कर दी है । अबतक मैंने अपनी ओर से बहुत कोशिश की है । रोई, बेचैन रही, उपवास भी किए, लेकिन उसपर कुछ भी असर नहीं हुआ । अब वह भी परेशान न हो और मैं भी परेशान न होऊं, इसलिए मैंने वह जिद्द ही छोड़ दी है । आप ही उससे पूछ लीजिए । हो सकता है आपको देखकर 'हां' करदे ।" हताश भाव से फूलवन्ती ने कहा ।

"मैंने जो कुछ थोड़ा-सा तुम्हारे लिए किया है, उसके बदले में उससे उसकी इच्छा के विरुद्ध ऐसी बात करवाना मैं नहीं चाहता ।" केशव ने

उत्तर दिया।

"लेकिन आप प्रयत्न करके तो देखिए।" फूलवन्ती ने आग्रहपूर्वक कहा। इस बहाने ही यदि केशव और शेवन्ती की बातचीत हो तो वे परस्पर निकट आ जायंगे, इस प्रकार की पागलपन भरी आशा उसके मन में अंकुरित हो रही थी।

"शेवन्ती कहां है ? क्या वह इस समय घर में होगी ?"

"शाम को वह हरिजन-बस्ती में जाया करती है।"

"हरिजन-बस्ती में !" आश्चर्यचकित होकर केशव ने पूछा।

"आजकल उसने वहां गिनती और सिलाई सिखाने की जमात खोल रक्खी है। उसके इस पालनपन से अगर हमारा काम-धंधा खतम हो जाय तो मुझे अचरज न होगा।"

"तुम इसकी चिन्ता मत करो। यह बताओ कि क्या वह इस समय मुझे मिल सकेगी ?"

"हां, मिल जायगी।"

उसी समय फूलवन्ती का संदेश लेकर केशव हरिजन-बस्ती में गया। केशव के पहुँचते ही मानो वहां उत्सव होने लग गया। उसे देखने के लिए लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। यह सब क्या हो रहा है, यह देखने के लिए बच्चे वर्ग में से उठ आए और लगे देखने। शेवन्ती भी यह देखने के लिए कि आखिर मामला क्या है खिड़की में आ गई। इतने में उसे ऐसा दिखाई दिया कि केशव उन्हीं की ओर आ रहा है। उसके अन्दर आते ही सबको आदर के साथ खड़े होना चाहिए, यह बात बच्चों से कहकर वह केशव का स्वागत करने के लिए सामने गई। पूस मास की हरी-भरी प्रकृति शीत के मधुर कम्पन से जैसे प्रफुल्लित हो उठती है, केशव का स्वागत करते हुए शेवन्ती की भी कुछ ऐसी ही अवस्था हो गई।

वर्ग में कमियां देखकर केशव क्या कहेगा, इस विचार से वह घबरा-सी गई। उसने डरते-डरते पूछा—"ऐसा लगता है कि आप वर्ग देखने आए हैं ?"

"आया तो दूसरे ही काम से था, लेकिन देखता हूं कि योग आया है तो जो कुछ सीखने योग्य है सीख लूं।"

"यहां बड़े लोगों के सीखने जैसी तो कोई बात नहीं है।"

"अच्छा, देखूं तो।" ऐसा कहकर केशव ने बच्चों की तख्तियां देखीं। उनके ऊपर लिखे हुए कोंकणी शब्द देखकर वह चौंका और बोला—"इनसे कुछ प्रश्न पूछो।"

शेवन्ती ने बच्चों से उनके आसपास की वस्तुओं के बारे में कोंकणी में सवाल पूछे और बच्चों ने कोंकणी भाषा में ही जल्दी-जल्दी उत्तर दिए। कोंकणी में चलनेवाली यह पहली ही पाठशाला केशव देख रहा था।

"बालकों की इतनी तैयारी कितने दिनों में हुई?" उसने पूछा।

"बाईस दिनों में।" शेवन्ती ने उत्तर दिया।

"तो तुमने पहले जो यह कहा था कि यहां बड़ों के सीखने लायक कुछ नहीं है, वह बात ठीक नहीं है। इतने दिन मैंने पढ़ाया, लेकिन कोंकणी के माध्यम से पढ़ाने की बात मेरे दिमाग़ में नहीं आई।"

"और अब वहां कौन पढ़ाता है?"

"मैं आजकल एक झंझट में उलझ गया हूं। इसलिए पिछले कितने ही दिनों से वह काम मेरी पत्नी देख रही हैं।"

"तो फिर उन्होंने भी कुछ ऐसा ही किया होगा।" शेवन्ती ने उत्तर दिया।

"सो कैसे?" चकित होकर केशव ने पूछा।

"यह तो बड़ी सरल बात है। बच्चों को पढ़ाते समय उनकी भाषा में बोलना पड़ता है, यह मां को सिखाना नहीं पड़ता। वह तो उन्हें जन्म से ही मालूम हो जाता है।"

शेवन्ती के उत्तर से केशव विचारमग्न हो गया। जो बात हमें सैकड़ों पुस्तकें पढ़ने पर भी मालूम नहीं होती, उसे ये स्त्रियां बिना पोथी पढ़े कैसे स्वाभाविकता से मालूम कर लेती हैं, वह इस बात की खोज करने लगा। विकृत मन के बालकों के मन का अध्ययन करते-करते मान्टेसरी

को सामान्य बालक के मन की थाह मिल गई और उन्होंने शिक्षण-शास्त्र में आमूल क्रान्ति कर दी। उसी प्रकार सहज ही छोटे बालकों के मन को जाननेवाली इस शेवन्ती से हृषी का इलाज नहीं हो सकेगा, यह कैसे कहा जा सकता है ? यह विचार उसके मन में बिजली की तरह चमक गया। दृष्टापन का अर्थ तो मां की ही दृष्टि होता है न ? इसी कारण तो महात्माजी के लिए इतनी बातें संभव हो सकी। इस प्रकार के विचार उसके मन में तेजी से आने लगे।

"अब वर्ग समाप्त होने का समय हो रहा होगा। आज यदि कुछ जल्दी ही छोड़ दोगी तो कोई हर्ज तो नही होगा ? मुझे तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं और अंधेरा होने के पहले तुम्हें घर पहुंचना है।"

"ठीक है।" कहकर शेवन्ती ने बच्चों को छुट्टी दे दी। वह आनन्द में झूमती घर आई।

थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करके केशव ने उसे हृषी के स्वभाव में होनेवाले सारे परिवर्तन तथा उसकी स्थिति में होने वाले अन्तर का हाल आद्योपांत कह सुनाया और साथ ही डाक्टर ने उसके लिए जो इलाज बताया था वह तथा उसे करते हुए जिस सतर्कता और चतुराई की आवश्यकता थी उस सबकी पूरी कल्पना उसे करादी। यह सब वर्णन सुनने के बाद उसे केशव की बात से विश्वास हो गया कि बेहोश होने के पश्चात् उसे होश आने पर जो तेजस्वी और सुन्दर चेहरा दिखाई दिया था वह हृषी का ही होगा। उसकी मुद्रा पर अंकित उस आत्मीयता की भावना के दर्शन से उसके मन में कृतज्ञता के भाव जाग्रत हो गए थे। आज उसे उस सारे प्रसंग की स्मृति हो गई और उसका अन्तःकरण करुणा से भर गया। लेकिन जब उसे केशव के सांकेतिक अभिप्राय का खयाल आया तब उसके स्वाभिमान को आघात-सा लगा। उस स्वर्णचम्पा के पुष्प की भांति केशव के मन में भी उसके हृदय-पुष्प की कीमत नहीं है, इस कल्पना से वह रुआंसी हो गई। फिर भी संयम रखकर बोली—

"तो फिर मुझसे आप क्या चाहते हैं ?"

"ऐसा कीमती रत्न कहीं व्यर्थ ही खो न जाय इसके लिए तुमसे जो भी हो सकेगा, करोगी, ऐसा मुझे विश्वास है। यह मत समझो कि यह काम कितना कठिन है, इसकी कल्पना मुझे नहीं है। यदि तुम यह बात न कर सकीं तो फिर मेरी सारी आशाएं धूल में मिल जायंगी।" केशव ने दीनतापूर्वक कहा।

"केशवबाबा, हम देवदासी भले ही हैं, लेकिन क्या हममें हृदय, व्यक्तित्व, स्वाभिमान बिल्कुल नहीं है ? क्या आप समझते हैं कि मैं पैसे के लिए अपनी लाज-शरम सबकुछ मसलकर पी चुकी हूं ?"

शेवन्ती ने यह बात तेज होकर कही। उसके सुकुमार नथुने लाल होकर थर-थर कांपने लगे।

"शेवन्ती, मैंने भूलकर भी तुमसे पैसों की बात नहीं की। धंधे की दृष्टि से तो अनेक देवदासियां हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि तुम धर्म से देवदासी हो। तुम उस धर्म का महत्त्व जानती हो। इसलिए मुझे ऐसा लगा कि तुम उसे सिद्ध करके एक पुण्य काम करने का श्रेय लोगी। यदि इसमें मेरी कुछ भल हो गई हो तो मुझे क्षमा करो। हां, तुम यह मत समझना कि तुम्हें हीन समझकर मैंने तुम्हारा अपमान किया है। मुझसे भूल हुई। क्षमा करना। अच्छा, मैं जा रहा हूं।"

केशव के उत्तर से शेवन्ती स्तंभित रह गई। जब वह उठकर चल दिया तो इच्छा होते हुए भी वह कुछ बोल न सकी। बाहर अंधेरा हो रहा था और उसमें केशव की खादी-धारी शुभ्र मूर्त्ति शीघ्रता से अन्तर्धान हो रही थी।

काजू के फल की भांति शेवन्ती के लाल-लाल गालों पर टूटती हुई माला की भांति आंसू गिरने लगे। वह होश में आई और फिर पागल-सी होकर जिधर केशव गया था उसी ओर दौड़ पड़ी। उसका हृदय जोर-जोर से चिल्ला रहा था। लेकिन केशव का नाम उसके मुंह से निकल नहीं रहा था। अन्त में वह उसके पास पहुंच गई और उसके कोट के पीछे का भाग पकड़कर उसे रोक दिया। केशव ने चौंककर पीछे देखा। वह अपने ही विचारों में मग्न था।

"केशवबाबा, मैंने भूल की। मेरी ऐसी परीक्षा मत लो।" हांफते हुए शेवन्ती ने दीनतापूर्वक कहा। उसके इस विचित्र व्यवहार से केशव हतबुद्धि हो गया। उसके मुंह से कोई शब्द न निकला।

"जब आपकी इच्छा हो अपने मित्र को घर ले आइए। मैं आपकी राह देखती रहूंगी, यह ध्यान रखिये।" उसने आगे कहा।

"भावना के वेग में इस प्रकार का निर्णय करना ठीक नहीं है, शेवन्ती।"

"छीः-छीः, ऐसी भावना के मंगल क्षणों में ही जीवन के महान निर्णय किए जाते हैं। तो फिर आप आवेंगे न ?"

"हां, आऊंगा।" उसने उत्तर दिया।

शेवन्ती वापस लौट गई और झाड़ी के बढ़ते हुए अन्धकार में जरा-सी देर में आंखों से ओझल हो गई।

केशव ने बार-बार अपनेको धिक्कारा कि क्यों उस समय उसके मुंह से कृतज्ञता के दो शब्द भी नहीं निकले ? उस समय उसकी जो मनःस्थिति थी उसका चित्र यदि विधाता भी खीचना चाहता तो उसके लिए भी संभव न होता। वह स्वयं ही यह नहीं समझ पा रहा था कि हृषी के प्रश्न के हल हो जाने की आशा में उसका मन प्रफुल्लित हो रहा था, या शेवन्ती द्वारा अकस्मात् निर्णय करने के कारण दुःखी हो रहा था। हां, कितने ही समय तक शेवन्ती की वह कुसुम-कोमल मूर्त्ति जुलूस के ठहरने के स्थान से इस प्रसंग तक अपने व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न स्वरूप दिखाती हुई चित्र-पट की नायिका की भांति केशव के मनःचक्षुओं के सामने दिखाई दे रही थी।

: १२ :

हरिजन-बस्ती से लौटने पर शेवन्ती ने हमेशा की ंति स्नान किया और सफेद वस्त्र पहनकर 'शिवलीलामृत' के अपने प्रिय ग्यारहवें अध्याय का पाठ किया। उसके बाद सुगंधित धूपबत्तियां लगाकर भगवान् के सिंहासन के संपुट को साफ किया। अन्दर रखे हुए चांदी के दो रुपयों और चम्पे

के दो फूलों का दर्शन किया और निश्चल दीप-शिखा की भांति कितनी ही देर तक आंखें मूंदकर ध्यानस्थ खड़ी रही। उसके सामने दीपदानी में दो बत्तियां जल रही थीं और उनके बीचों-बीच खड़ी हुई वह भी अन्दर-ही-अन्दर जल रही थी। लेकिन आज के जलने में अनिर्वचनीय आनन्द था और वह उसके चेहरे पर खिला हुआ दिखाई दे रहा था। आज उसके अन्दर की देवी की प्रतिमा जग गई थी और अभिनव ऐश्वर्य प्रदर्शित कर रही थी। थोड़ी देर बाद वह भजन करने के लिए बैठ गई।

भोजन बनाकर बाहर आने पर उसकी मां फूलवन्ती आंगन में छिटकी चांदनी देखकर एकाएक दुःखी हो गई। समाधि की भांति एकाकी और उदास दिखाई देने वाला वह चूने का तुलसी-घरा मानो उसे अपने जीवन का प्रतीक दिखाई देने लगा। इसके पहले वह कभी इतना एकाकी नहीं दिखाई दिया था। अपनी इकलौती लड़की का स्नेह भी उसके लिए अपरिचित हो गया था, ऐसा अनुभव करके उसका मन जड़ हो गया। चबूतरे की सीढ़ी पर बैठकर वह अपने जीवन का सिंहावलोकन करने लगी। निरभ्र नीले आकाश में दीपक की ज्योति-जैसे तारे चमक रहे थे। निश्शब्द नीरव शांति पर शीत का मधुर आवरण फैला हुआ था। सारे चराचर प्राणी निद्राग्रस्त हो रहे थे और उनके ऊपर चन्द्रलोक के पारिजात के फूल एक के बाद एक पंक्ति में गिर रहे थे। लेकिन आज इस सारे सौंदर्य के प्रसार से उसके हृदय में जाग्रत हुआ दाह अधिक ही बढ़ने लगा। जीवन के भिन्न-भिन्न सुख-दुःखों से जीवन के इतने पन्ने भर गए, लेकिन उससे आशय क्या निकला ? क्या प्राप्त हुआ ? इस कल्पना से उसका हृदय विचारों में मग्न हो गया। उसकी रति मानों आज उसे अन्तिम प्रणाम करने के लिए आई थी। उसे आज कितने ही वर्षों बाद अपने हृदय-पुष्प को विकसित करने और तोड़ देने वाले प्रियतम की तीव्र स्मृति हो आई। तोड़ देने का वह दंश, विकसित करने की सुवास में मन्त्रमुग्ध होकर अब खो चुका था। निष्ठा को आघात पहुंचाने वाले प्रेम पर विष का जो पुट चढ़ गया था वह अब नष्ट होकर उसका अन्तर्माधुर्य उमड़कर ऊपर आ रहा

था। वह अपनी आयु और स्थिति को भूल गई। उसकी पहली प्रणय-स्मृति उसके आसपास मोह का स्वप्न-जाल बुनने लगी और ऐसा अनुभव करके कि चांदनी की अमर्यादित आनन्द-लहरी पर उसके हृदय का विकसित श्वेत कमल मंडलाकार तरंगित हो रहा है, उसका सर्वांग रोमांचित हो गया। इस प्रकार कितना समय बीत गया, उसे मालूम ही न हो पाया। चांदनी की निश्शब्द शांति मादक पदार्थों की भांति उमड़ रही थी। इतने में चहारदीवारी लांघकर भैरवी का आर्तस्वर उसके आस-पास रेशम की पाश डालकर उसे खींचने लगा :

"जोगी मत जा, मत जा, मत जा। पांव परूं मैं तेरे।"

उसे ऐसा लगा मानो उसका हृदय ही यह चीत्कार कर उठा हो। यद्यपि वह करुणालाप शेवन्ती के मुंह से निकल रहा था तथापि वह हृदय की अनन्त व्यथा की पुनरावृत्ति कर रहा था।

"अगर चन्दन की चिता रचाऊं अपने हाथ जला जा,
जलबल भई भस्म की ढेरी अपने अंग लगा जा।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर जोत में जोत मिला जा।"

इस प्रकार एक के बाद एक पंक्ति हृदय चीरकर केवल उसी की नहीं, समस्त स्त्री-हृदय की सनातन दारुण व्यथा की कहानी कह रही थी। उसे सुनते-सुनते फूलवन्ती की आंखों से आंसू बहने लगे। लेकिन उसी समय उसका मातृ-हृदय जाग्रत हो गया। रति अन्तर्धान हो गई और उसका स्थान मातृश्री ने ले लिया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि शेवन्ती के जीवन में आज कोई भयंकर घटना घटी होगी। वह भयभीत हो गई। जल्दी ही उठकर मंदिर में चली गई।

आंखें बन्द करके और हाथ जोड़कर शेवन्ती देवता के सामने खड़ी थी। उसके चेहरे पर असाधारण तेज झलक रहा था। उसे देखते ही फूलवन्ती दरवाजे में ही ठिठक कर खड़ी हो गई।

"माता शांता, मुझे अपने धर्म के अनुसार जीवन बिताने की शक्ति दे। ऐसी कृपा कर कि जिससे मेरी राख विभूति बन जाय।" शेवन्ती देवी

से प्रार्थना कर रही थी।

राख का उल्लेख सुनकर फूलवन्ती के हृदय को बड़ी चोट लगी। उसे ऐसा लगने लगा कि वह दौड़कर जाय और उसे गले लगा कर जी भरकर रोले। लेकिन उसके पैर उस जगह से हिल ही नहीं रहे थे। अशुद्ध वस्त्र पहने होने के कारण देवी को छूने का साहस उसे न हुआ। यह सोचकर वह उल्टे पांव पीछे लौट गई कि कहीं शेवन्ती को पता न चल जाय, और उसका ध्यान न टूट जाय।

भोजन करने के बाद बर्तन साफ करके बच्ची से जी भरकर बात-चीत करने के उद्देश्य से फूलवन्ती उसके कमरे में गई, लेकिन उसे वह गहरी नींद में सोती दिखाई दी। मोंगरे के खिले हुए पुष्प की भांति उसका निद्रित चेहरा शांत और तेजस्वी दिखाई दे रहा था। आज अकस्मात् उसे शेवन्ती के जन्म-काल की याद हो आई। आसपास किसी को न देखकर उसने किस प्रकार उसको प्यार किया था और अनुभूत माधुर्य से उसका शांत मन किस प्रकार गद्गद् हो उठा था इसकी उसे याद हो आई और उसकी आंखों में आनन्द के आंसू उमड़ आए। यह सोचकर कि उसकी नींद टूट न जाय, उसने बहुत धीरे-से शेवन्ती को प्यार किया और मुग्ध होकर अनिमेष नेत्रों से बड़ी देर तक उसकी ओर देखती रही।

भारी पैरों से वह अपने कमरे में आई और बिस्तर पर गिर पड़ी। लेकिन सारी रात उसे अच्छी नींद नहीं आई। उसने निश्चय किया कि सुबह शेवन्ती से साफ-साफ बात करनी है, उसकी हार्दिक व्यथा जान लेनी है और उसकी इच्छानुसार जिसमें वह सुखी हो वही करना है।

लेकिन दूसरे दिन शेवन्ती उसे एकदम बदली हुई दिखाई दी। उसका सारा रंग-ढंग ही बदल गया था। उसने तानपुरे की खोली निकाली, उसे साफ किया और स्वर में मिलाकर रखा। अपने कमरे की सजावट करके उसे विलास-महल जैसा बना दिया। पानदान को साफ करके उसमें पान की सारी सामग्री जमाई। साड़ियां और ब्लाउज धूप में डाले।

बड़े-बड़े गहने पहन लिये और अपने शरीर को सजाने में मग्न हो गई ।

उसके इस नवीन परिवर्तन की पूरी जानकारी न होने के कारण फूलवन्ती चकित रह गई । वस्तुतः यह सब देखकर उसे प्रसन्न होना चाहिए था, लेकिन अब उसके जाग्रत मातृत्व को यह घटना भयसूचक प्रतीत हुई ।

"शेवन्ती बेटी, आज यह किसकी तैयारी हो रही है ?" फूलवन्ती ने संभलकर पूछा ।

"मैंने अपने देवदासी के धर्म की परीक्षा देने का निश्चय किया है, मां !"

"मतलब ?" चकित होकर फूलवन्ती ने पूछा ।

"मां, एक बार तूने ही तो कहा था न कि हम देवदासियों को भावना का समर्पण करना चाहिए। उसे प्राप्त करना हमारे भाग्य में नहीं। मुझे अब मालूम हो गया है कि उसको पाने की आशा किए बिना उसे देना ही हमारा धर्म है। इसीलिए वह पत्नी-धर्म की अपेक्षा भी अधिक कठिन और महान् है । मुझे इस नवीन अनुभूति को, उस धर्म को आचरण में लाना है । हमने धर्म को धंधा बनाया, इसीलिए हमारी अवनति होने लगी ।"

"तो फिर क्या तूने केशवबाबा का कहना मान लिया, बेटी ?"

"हां, उनके मित्र के स्वागत के लिए ही यह सब तैयारी हो रही है।"

"लेकिन क्या तूने सारे मामले पर ठीक तरह विचार कर लिया है ? यूरोपीयन से संबंध रखने के कारण पहले ही हम लोग जाति बाहर जैसे हो गए हैं । अब एक पागल के साथ संबंध रखने के कारण सारा गांव हमारा मजाक उड़ाए बिना न रहेगा। तेरे ऊपर नजर रखने वाले सभी बड़े-बड़े आदमी नाराज होकर दुश्मनी पर उतारू हो जायंगे और तुझे बेहद तंग कर डालेंगे । इन सब बातों पर विचार कर लिया है न ?"

"मां, धर्म-पालन तो कभी भी आसान नहीं रहा है और जब समाज

नीचे स्तर पर चला जाता है तब तो वह बिलकुल भी आसान नहीं रहता है। उसके लिए जितना त्याग किया जायगा, उतना ही ज्यादा। उसका निजी और सामाजिक फल होगा। भक्तों को अपने पास बुलाने के पहले भगवान उन्हें समाज में से उठा लेता है। यदि हम देवदासियों की हालत देखी जाय तो इसमें मुझे कोई शंका नहीं है कि हम देवी की लाड़ली पुत्रियां है।"

शेवन्ती के प्रत्येक शब्द से फूलवन्ती अन्दर-ही अन्दर द्रवित होती जा रही थी, लेकिन उसकी आंखों के सामने उसके भावी जीवन का भीषण चित्र खिंचे बिना न रह सका। वह बोली—

"बेटी, मैं तुझे अपने धर्म से हटाना नहीं चाहती, लेकिन मेरा यह फर्ज़ है कि इस सवाल के सारे पहलुओं पर तेरा ध्यान दिला दूं। इस बात का कोई भरोसा नहीं है कि तेरे द्वारा किए जाने वाले प्रयत्न से हृषी अच्छा हो जायगा। पर इतना करने पर भी यदि कोई पागल या कुरूप लड़का पैदा हो गया तो जन्म भर तेरी छाती पर पत्थर जैसा रहेगा और तुझे हमेशा इस बात का पश्चात्ताप रहेगा कि तूने दुःख सहते रहने के लिए ही एक प्राणी को जन्म दिया।"

"हृषी का अच्छा होना न होना ईश्वर पर है, माँ। सबको अपना-अपना धर्मपालन करना है। तुम्हारी यह बात मुझे मंजूर है कि मुझे बच्चे को जन्म देने का अधिकार नही है। इस संबंध में तुम्हें मेरी मदद करनी चाहिए।"

"क्या अब भी तेरा निश्चय कायम है, शेवन्ती?" फूलवन्ती ने पीड़ा के स्वर में कहा।

"मां, क्या मै यह बात प्रसन्न मन से कर रही हूं? इस समय मेरे मन में द्विविधा पैदा मत करो। माता शांता से प्रार्थना करो कि मेरी शक्ति अन्त तक बनी रहे। केशवबाबा ने मुझे अपने धर्म का ज्ञान करा दिया है। उनका विश्वास है कि मैं उसका पालन कर सकूंगी। मुझे उनके विश्वास के योग्य बनी रहने दो।"

ऐसा कहते-कहते शेवन्ती की आंखें भर आईं। फूलवन्ती ने उसे गले लगा लिया और उसकी पीठ पर स्नेह से हाथ फेरते हुए गद्गद् कंठ से कहा—"देवी, अपनी इस पुत्री को तूने मुझ जैसी अभागिन की कोख में क्यों भेजा ? मेरे पाप के लिए तू उसे क्यों दंड दे रही है ?"

इसके बाद उसके मुंह से कोई शब्द न निकला। शब्दों के बजाय आंसुओं की बूंदें उसकी आंखों से बह निकली।

: १३ :

पिछले दो-तीन दिनों से शेवन्ती घर की सफाई, स्वच्छता और सजावट करने में जुटी थी और उसका मन नवीन संकट का मुकाबला करने के विचार में। आज सबेरे-सबेरे उसने एक स्वप्न देखा। उसमें उसे अंतासेठ दिखाई दिया। उसने अपनी सारी मनोव्यथा और संकल्प उसके सामने प्रकट कर दिया। अंतासेठ ने एक खाने में से भस्म निकालकर उसके सिर पर लगाई और कहा, "शेवन्ती, नीति आंतरिक वस्तु है। लोगों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। इससे उसका पुण्य क्षीण हो जाता है।" शेवन्ती ने उसे भक्ति भाव से नमस्कार किया था। अंतासेठ ने उसकी पीठ पर प्रेम से हाथ फेरकर कहा—"तू देवी की जीवित प्रतिमा है। कितना ही बड़ा संकट तू अपने ऊपर क्यों न ले, तेरी शक्ति कम नहीं होगी।"

जब वह जगी तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों अब भी वह वत्सल स्पर्श उसकी देह पर ताजा है और उसके ये शब्द 'तू देवी की जीवित प्रतिमा है' उसके शरीर के रोम-रोम से असंख्य प्रतिध्वनि कर रहे थे। वह स्वप्न उसे जागृति के अनुभव से भी अधिक सत्य लग रहा था।

उस जीवनदायी आभास का आस्वादन करती हुई कुछ क्षण तक वह वैसी ही बिस्तर पर लेटी रही। सामनेवाली दीवार का वह भाग, जिसपर सूर्य की टेढ़ी किरणें पड़ रही थीं, तैल चित्र की भांति चमक रहा था।

शेवन्ती को ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई सूक्ष्म देहधारी तपस्वी आध्यात्मिक नीति-शास्त्र की चर्चा करता हुआ बैठा है। इतने में पूर्व की खिड़की से प्रातःकालीन शीतल वायु का सुगंधित झोंका अन्दर आया। उसमें आम और काजू के बौर की सुगंधि एवं स्वर्णचम्पा की महक मिली हुई थी। हाल ही में देखे स्वप्न के कारण शेवन्ती की सारी ज्ञानेंद्रियां इतनी सचेत हो गई थो कि वह इस सुगंधि के मिश्रण को अलग-अलग अनुभव कर सकी।

वह जगकर उठी और कुल्ला करके बाड़े में गई। पिछले दो-तीन दिन से बाड़े की उपेक्षा हो रही थी। अतः वह उसकी कमी पूरी करने के लिए आतुर हो गई। उसने सारे बाड़े पर वत्सलता-पूर्वक अपनी दृष्टि डाली। स्वर्णचम्पा के लहलहाते हुए पत्तों में से दस-बारह पुष्प दीपशिखा की भांति खिल रहे थे और उसके पास की लाल केल का फुन्दे जैसा फूल अपने हरे-हरे फन फैलाकर खिल आया था।

पुष्पों के सुकुमार दर्शन से उसे केशव के अस्तित्व का भास हुआ और उसका सर्वांग सुगंधित मंजरी की भांति रोमांचित हो उठा। उसे लगा कि आज निश्चय ही केशव आयगा। उसके मन की भावना ऐसी हो गई, मानो उसने एक दिन जिस स्वर्णचम्पा को समर्पित किया था वही आज उसके बाड़े में पुनः जन्म लेकर आया है। यह सोचकर कि कहीं वे जमीन पर न गिर पड़ें, उसने धीरे से चढ़कर हलके हाथों से उन्हें तोड़ लिया और केशव के आने पर उसे देना हैं, इस विचार से उन्हें भगवान के सिहासन के पास लाकर रख दिया।

नए उत्साह से वह बाड़े में कहीं पेड़ों के सूखे पत्ते तोड़ती हुई, कहीं टेढ़ी-तिरछी डालियां काटती हुई, कहीं सिंचाई करती हुई, कहीं छोटी-सी कुदाली से क्यारी बनाती हुई, कहीं गोबर-राख का खाद देती हुई, बड़े प्रेम से वृक्ष और वल्लरियों की सार-संभाल करने में मग्न हो गई। सर्दी के कारण उसे थोड़ा भी श्रम अनुभव नहीं हो रहा था, उलटे उसके अंगों का चैतन्य दूना हो रहा था। धीरे-धीरे अधिकाधिक गरम होने

वाली धूप उसके सुख को बढ़ाने लगी। इस काम में कोई दो घंटे का समय बीत गया, उसे मालूम ही नहीं हुआ।

इतने में मोटर का भोंपू सुनकर वह एकदम सचेत हुई।

उस जमाने में मोटर का आना-जाना हमेशा नहीं होता था। उत्सव के दिनों में ही कोई मोटर आती थी। और दिन कभी-कभी ही किसी विलासी व्यक्ति की मोटर रात के समय बिना आवाज किये जाती हुई दिखाई देती थी; लेकिन आज बिना उत्सव के ही अपने घर के इतने पास मोटर का भोंपू सुनकर वह चकित हो गई; लेकिन दूसरे ही क्षण उसका हृदय धड़कने लग गया।

वह जल्दी-जल्दी घर आई। हाथ-पैर और मुंह धोकर उसने बालों में कंघी की, माथे पर कुमकुम ठीक किया और नई हरी साड़ी पहनकर बाहर आ गई।

केशव और हृषी को फूलवन्ती ने ओटले पर बिठा रखा था। ड्राइवर-पेटियां और बेग लाकर आंगन में रख रहा था। मोहल्ले के कुछ बच्चे चकित एवं कौतूहलपूर्ण आंखों से मोटर की ओर देख रहे थे।

केशव पर दृष्टि पड़ते ही शेवन्ती अपने चेहरे पर मधुर मुस्कान ले आई, लेकिन अन्दर-ही-अन्दर आम के नए पत्ते की तरह उसका कलेजा कांप उठा। दूसरे ही क्षण उसकी दृष्टि हृषी पर पड़ी। उसने विस्मय से उसकी ओर टकटकी लगाई। उसका सभ्रांत चेहरा किंचित् चमक उठा। उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि वह अपनी स्मृतियों को व्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न कर रही है। किसी समय सुन्दर और तेजस्वी दिखाई देने वाले चेहरे पर अब निस्तेजता देखकर उसके मन में करुणा उमड़ आई। उसने अपनेको संभाल लिया। चेहरे पर प्रसन्नता व्यक्त करके वह मधुर हँसी हंसी।

केशव ने प्रेम से हृषी के कंधे पर हाथ रखा और बोला—"वह रात-दिन तुझे इशारे करती है, तुझसे मीठी वाणी में बोलती है, हँसती है और जब तू पकड़ने जाता है तो कपूर जैसी जलकर अदृश्य हो

जाती है ? यह वही है। इसीने तुझे बुलाया था। अब यह पहले की भांति अदृश्य नहीं होगी। आठों पहर तेरे पास रहेगी। तुझे प्यार करेगी।"

"मेरे पास रहेगी ? सचमुच रहेगी ?" शंकित होकर हृषी ने पूछा।

"हां, रहेगी; लेकिन यह जो कुछ कहे, वह तुझे मानना होगा।" केशव ने उत्तर दिया।

हृषी कुछ बोला नहीं। स्वप्न देखनेवाले व्यक्ति की तरह वह उसमें ही उलझ गया। वह उसकी ओर देखता ही रह गया।

"चलो, अब अन्दर चलें। मां चाय बनाकर लावे तबतक हम इनका सामान कमरे में ठीक तरह जमा दें।" इतना कहकर शेवन्ती लौट गई। हृषी को साथ लेकर केशव भी उसके पीछे-पीछे चला।

कमरे की विलासिता देखकर केशव का मन किंचित् अशुचि से भर गया।

"आप यहां बैठिये। मैं सामान जमा रही हूं।" शेवन्ती पलंग की ओर उंगली दिखाकर बोली।

केशव ने हृषी को पलंग पर बैठाया और स्वयं न बैठते हुए शेवन्ती से बोला, "तुमसे अकेले ये पेटियां आदि न उठेंगी। पेटी में से कुछ चीजें तुम्हें दिखानी भी है।"

दोनों मिलकर सामान लाये और उसे व्यवस्था से जमा लिया। उसमें से कुछ वस्तुएं केशव ने बाहर निकालीं और कहा, "यह उसकी प्रिय पुस्तक है। यह है उसका चित्र-अलबम। ये उसके द्वारा मुझे लिखे हुए पत्र हैं। इनको खूब संभालकर रखना है। मैंने इन्हें तरतीब से जमा दिया है। इन्हें ध्यान से पढ़ना। फिर उसके स्वभाव व मनोवृत्ति की विशेषताएं तुमसे छिपी न रह सकेंगी और इससे यह भी मालूम हो जायगा कि तुम्हें उसकी सेवा किस प्रकार करने में सुविधा होगी। इस कापी में ये सब बातें लिखी हुई हैं कि उसमें कौन-कौन-सी कमियां हैं, उसे कौन-कौन-सी चीजें पसन्द हैं, कौन नापसन्द हैं, वह किन चीजों का आदी है। इस ट्रंक में वे सिगरेट के डिब्बे है जो उसे पसन्द हैं। हां, इस बात का

खयाल जरूर रखना कि वह ज्यादा सिगरेट न पीवे।

"आपने बड़े ध्यानपूर्वक सारी बातों की जानकारी कर ली है। हम स्त्रियों से इतनी बातें सधना कठिन हैं।" शेवन्ती केशव से बोली।

"जब किसी से प्रेम होता है तो सब बातें सूझती हैं। यह बात तुम स्त्रियों से कहने की आवश्यकता नहीं है। हृषी में बड़ी जबरदस्त शक्ति है। यदि वह अच्छा हो गया तो उसकी मदद से मैं गोआ में एक बहुत बड़ी बात कर सकूंगा। अपनी सारी आकांक्षाएं मैं अब तुम्हारे हाथों में सौंप रहा हूं। दो-दो दिन के बाद मुझे हृषी की खबर विस्तार के साथ देती रहना। उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए यह तुम अपने पास रखो। इसका और कुछ अर्थ मत लगा बैठना। समझीं।" इतना कहकर केशव ने सौ-सौ रुपये के पांच नोट शेवन्ती के हाथ में प्रसन्न मुद्रा से रख दिये।

केशव को हर दो दिन के बाद पत्र लिखने होंगे, इस कल्पना से वह प्रसन्न हुई और बोली, "मैं अपनी ओर से खूब मेहनत करूंगी। आप मेरा मार्ग-दर्शन करते रहिए।"

उनकी बातें चल रही थीं कि फूलवन्ती चाय और नाश्ता लेकर आ गई। अपने चारों ओर के चित्र, शीशे तथा स.हित्य को देखने में तल्लीन हृषी को केशव ने बड़े स्नेह से नीचे चटाई पर ला बिठाया। शेवन्ती चायदानी में से चाय प्याले में डालने लगी। अपने सामने का प्याला शेवन्ती के सामने रखकर केशव ने कहा, "मेरी चाय तुम पियो। मैं चाय नहीं पीता। मुझे पानी दो।"

इसपर शेवन्ती ने उसे दूध पीने के लिए विवश किया। नाश्ता होने पर यह देखकर कि फूलवन्ती बरतन अन्दर ले गई है, शेवन्ती ने केशव से कहा, "आइये, हम भगवान् के मंदिर में मनौती मान करके नारियल रख दें। प्रयत्न करना हमारे हाथ में है, पर सफलता प्रदान करने वाली तो माता शांता ही हैं। पुण्यवान् की पुकार भगवान् के पास जल्दी पहुंचती है। इसीलिए में आपसे नारियल रखने की बात कह रही हूं।"

"चलो।" कहकर केशव उठा। "हां, मैं भूल गया, तुमने तो चाय

पी ही नहीं।"

"बाद में शांति से पिऊंगी।" कहकर वह चलने लगी।

मंदिर का पवित्र वातावरण देखकर केशव का मन प्रसन्न हो गया। शेवन्ती ने आगे बढ़ाया हुआ नारियल हाथों में लेकर, आंखें बन्द करके एकाग्र मन से प्रार्थना की। इसके बाद पास ही रखे हुए स्वर्णचम्पा के फूल की ओर उंगली दिखाते हुए शेवन्ती ने कहा, "उसमें से दो फूलदेवी पर चढ़ाइये।"

केशव ने चुपचाप उसमें से दो फल उठाये और भक्ति-भाव से देवी के चरणों में चढ़ा दिये।

इसके बाद वह बाहर आई।

"ड्राइवर बहुत देर से खड़ा है। अब मुझे जाना चाहिए। मैं किन शब्दों में तुम्हारा आभार मानूं। शब्दों के द्वारा भावना को अपवित्र करना मुझे अच्छा नहीं लगता।" केशव ने भारी अन्तःकरण से कहा।

जवाब देने के लिए शेवन्ती के ओठों पर बहुत-से शब्द आ रहे थे, लेकिन उसने उन्हें रोक लिया। उसे भी शब्दों के द्वारा भावना को अप-वित्र करना अच्छा नहीं लगा।

हृषी से अनुमति लेकर जब वह जाने लगा तो शेवन्ती फिर मंदिर में गई और स्वर्णचम्पा के फूलों को लेकर बाहर आई।

"ये देवी के प्रसाद-रूपी पुष्प लेकर घर जाइये। शब्दों की अपेक्षा फूल ही ज्यादा बोलते हैं।"

केशव ने उसे धन्यवाद दिया और चलने लगा।

प्रकृतिस्थ होकर शेवन्ती ने कहा, "पहले की तरह इन्हें भी कहीं फेंक न दीजिये।"

"अच्छा।" कहते हुए केशव मोटर में जा बैठा। मोटर चलने लगी। सनसनाती हुई हवा के कारण उसके पास रखे हुए स्वर्णचम्पा के पुष्प सौरभ बिखेर उठे, उसके साथ ही उसके मन का स्वर्णचम्पा भी नई-नई सुगंध बिखेरने लगा।

: १४ :

हृषी की विकट समस्या इस प्रकार हल हुई तो केशव को ऐसा लगा मानों उसका बहुत-सा बोझ हलका हो गया। शेवन्ती पर हृषी का जो प्रभाव पड़ा, उसे देखकर उसके मन में विश्वास पैदा हो गया कि आज नहीं तो कल, वह अवश्य अच्छा हो जायगा। अब वह यह देखने को उत्सुक हो रहा था कि उसकी अनपस्थिति में हरिजन-मोहल्ले की शिक्षा तथा अन्य काम किस स्थिति में है। उसने देखा कि सारे काम ठीक तरह चल रहे हैं। इतना ही नहीं, उनमें संस्कारिता और रोचकता भी आ गई है।

जब वह स्कूल देखने गया तो उसे दिखाई दिया कि सामने बगीचा लगा है और बच्चे उसमें बड़े उत्साह से काम कर रहे हैं। जब उसने बच्चों की शिक्षा का निरीक्षण किया तो उन्होंने कोंकणी भाषा में ईसप-नीति तथा भगवान् राम और कृष्ण की कथाएं बड़े उत्साह से सुनाईं। उन्होंने अच्छे ताल-सुर से कोंकणी लोकगीत गाकर सुनाए। मराठी पाठों का अर्थ भी अच्छी प्रकार कोंकणी भाषा में बताया।

इस थोड़े से समय में कमली ने बच्चों की जो तैयारी कराई थी उसे देखकर केशव को बड़ा संतोष हुआ और उसपर अभिमान भी। उसे शेवन्ती के उद्गारों की स्मृति हो आई। उसने मन-ही-मन कहा, "हम अपनी जिन स्त्रियों को अशिक्षित कहते हैं, उनके लिए यह कहना होगा कि वे हमसे अधिक व्यवहार-ज्ञान रखती हैं।"

"कमली, तुम तो काफी आगे बढ गई हो। बच्चों की तैयारी अच्छी हो गई है।" केशव ने संतोष व्यक्त करते हुए कहा।

"क्या मुझे लज्जित कर रहे हैं?" कमली ने लजाते हुए कहा।

"नहीं, मैं तो मन की बात कह रहा हूं। अब तो मैंने निश्चय कर लिया है कि यह काम पूरी तरह तुम्हारे ऊपर छोड़ देना चाहिए और मुझे किसी दूसरे काम में लग जाना चाहिए। अब मुझे प्रार्थना, भजन, प्रवचन द्वारा प्रौढ़ों को ज्ञान और संस्कार देने का काम अपने ऊपर लेना है।

अक्षर-ज्ञान इनको कठिन लगता है, तबतक काम रोकना ठीक नहीं। मैंने तुमसे एक नई बात सीखी कि मुझे ये प्रवचन कोंकणी भाषा में देने चाहिए। अब आगे स्कूल का काम तुम अपने ढंग से चलाओ।"

"मेरी काहे की रीति और मै क्या चला सकती हूं ?" अपने ऊपर नई जिम्मेदारी का बोझ अनुभव करते हुए उसने आगे कहा—"बच्चों को उनकी अपनी भाषा में सिखाने से वे जल्दी सीखते हैं, सिखाई बातों में उनकी रुचि उत्पन्न होती है और उनके ध्यान में भी वह बात बैठती है। लेकिन हमारी कोंकणी भाषा की पुस्तकें नही है। इन पुस्तकों के बिना कबतक चलता रहेगा ?"

"इतने दिनों तक कैसे चलता रहा ?"

"जो कथाएं मुझे याद थीं, उन्हें मैंने ही जैसा मुझे सूझा, कोंकणी भाषा में कह दिया। बचपन में सीखे हुए गीत मैंने याद करके लिख डाले। नए गीत बड़ी स्त्रियों से इकट्ठे किये। इस आधार पर ही अबतक जैसे-तैसे गाड़ी धकेली।"

"ऐसा ही आगे भी चलता रहने दो। यदि हृषी की ऐसी स्थिति न हुई होती तो जैसी पुस्तकों की तुम्हें आवश्यकता है वैसी नई पद्धति की पुस्तकें अबतक कब की लिखी जा चुकी होती। यदि भगवान को इन अनाथ बालकों की चिन्ता हुई तो हृषी जल्दी ही अच्छा हो जायगा। तबतक जैसे भी हो, हम बालक रूप भगवान की सेवा करें। प्रेम से की हुई सेवा से बुद्धि को नई दृष्टि प्राप्त होती है, आगे का रास्ता दिखाई देने लगता है।"

उस दिन से विद्यालय का काम कमली को सौंप दिया गया। केशव प्रौढ़-शिक्षा का वर्ग चलाने का काम करने लगा। कहानियों के माध्यम से वह अपने प्रवचनों में स्वच्छता, काम-धंधे, संस्कारिता और सामान्य ज्ञान की शिक्षा देने लगा।

हर दो दिन के बाद शेवन्ती के सविस्तर पत्र आते थे। उसमें हृषी के छोटे-मोटे परिवर्तन का भी हाल रहता था। उसे पढ़ना और उसपर चर्चा करना केशव और कमली के संतोष का विषय था। यदि

केशव बहुत काम में होता तो कभी शेवन्ती के पत्र का उत्तर कमली ही दे देती थी। इससे थोड़े से समय में ही उन तीनों के बीच एक अनुपम सौहार्द स्थापित हो गया। शेवन्ती के पत्रों से यह साफ़ ज़ाहिर होता था कि हृषी को अपने नियंत्रण में रखना कभी-कभी उसके लिए कितना कठिन होता है। लेकिन कुल मिलाकर उसका व्यवहार ठीक था।

इस प्रकार डेढ़ महीना बीता। हृषी के संबंध में जो भी जानकारी मिलती थी उसके आधार पर कमली, रमाअक्का और रंजना को पत्रों द्वारा उसके समाचार भेज कर धीरज बंधाती रहती थी। अब केशव के साथ-साथ कमली के नाम भी शेवन्ती के पत्र आने लगे। उनमें से किसी एक नवीन पत्र में—'पुनश्च' लिखकर आग्रह-पूर्वक यह सूचना दी गई थी कि यह पत्र किसी को दिखाया न जाय। कभी-कभी शरीर-सुख के लिए अधीर होकर हृषी कैसी चेष्टाएं करता है और उसके कारण वह करुणा से कितनी व्याकुल हो जाती है तथा यह अनुभव करके भी कि उसे संयोग करने देना चाहिए, उसके मन की तैयारी किस तरह हो नहीं पाती है, स्त्री-हृदय की यह सारी व्यथा शेवन्ती ने बड़े मार्मिक शब्दों में लिखी थी। उसे पढ़कर कमली बड़ी व्यथित हुई। केशव को भी बड़ी व्यथा होगी, इस विचार से उसने उस तथा वैसे ही दूसरे पत्रों को छिपाकर रक्खा। उसे लगता था कि ऐसे पत्र पुरुषों को दिखाना स्त्री-जाति का अपमान करना है। उसने रमाअक्का या रंजना को भी कभी यह बात नहीं कही, लेकिन एक दिन वह स्वयं ही इतनी बेचैन हो गई कि संयम न रख सकी। रंजना को लिखे गए एक पत्र में उसकी यह व्यथा प्रकट हो गई। लेकिन डाकखाने में पत्र के पहुंच जाने पर उसे रह-रहकर यह बात चुभी कि उसे वह सब नहीं लिखना चाहिए था। लेकिन अब तो तीर छूट चुका था।

इसके तीन-चार दिन बाद एक दिन उसे मालूम हुआ कि रंजना और उसके पिता उसके घर आये हैं। अतः स्कूल की जल्दी छुट्टी करके वह घर आई।

"बाबा, इस प्रकार अकस्मात कैसे आ गये?"

"तेरे पास की आने की इसने हठ पकड़ ली। इसके अलावा आगे इसे तेरे यहां आने का मौका नहीं मिलेगा, इससे सोचा कि इस समय का लाभ उठा लिया जाय।"

"आगे यह मेरे पास क्यों नहीं आवेगी, बाबा ?"

"वह संकट टाला जा सके तो अच्छा। इसी खयाल से मैं जल्दी-जल्दी यहां आ गया। केशवबाबा कहां है ?"

"यहीं हूं।" कमरे में आते हुए केशव ने कहा, "आप कब आये ? और यह कौन है ? रंजना ? मुझे तो ऐसा लगा मानो शेवन्ती है। संसार में कितनी आश्चर्यजनक समता होती है !"

केशव के इन उद्गारों से उसके ससुर का चेहरा ऐसा दिखाई दिया, मानो वह चौंक उठे हों। "आप आज आयंगे, मुझे इसकी कल्पना भी नहीं थी।" उसने आगे कहा।

"मुझे भी कहां थी ? अकस्मात इस झूठे आरोप की खबर मिली और इसीलिए मैं एकाएक आ गया।"

"कैसा आरोप ? किसके विरुद्ध ?"

"तुम जानते ही होगे कि जब से तुमने यह हरिजन-कार्य करना प्रारंभ किया है तबसे हमारे स्वामीजी के पास तुम्हारी बहुत-सी शिकायतें पहुंची हैं। तुम देवी की प्रतिमा हरिजन-मोहल्ले में ले गये, वह समाज के शिष्ट लोगों तथा पदाधिकारियों को पसन्द नहीं आया। सामाजिक क्षेत्र में तुम्हें जो महत्व मिलता जा रहा है, उसे देखकर पीठ-पीछे तुमसे ईर्ष्या-रखने वाले बहुत-से दुश्मन खड़े हो गये हैं और अब जबसे तुमने हृषी को शेवन्ती के पास रखने की व्यवस्था की है तबसे उसपर निगाह गड़ाये रखने वाले लोग खुलेआम तुमसे ईर्ष्या करने लगे हैं।"

"मैं कोई इतना बड़ा आदमी नहीं हूं कि इतने सारे लोग मुझसे ईर्ष्या करने लगें !"

"यह सब मुझे कुछ भी मालूम नहीं है, लेकिन ये सब लोग आज तुम्हारे विरुद्ध हो गये हैं और बहिष्कार का प्रस्ताव पास करने के

लिए स्वामीजी पर दबाव डाल रहे हैं। स्वामीजी भी ऐसा नहीं मानते कि यह बात नहीं करनी चाहिए। सुनने में आया है कि बहिष्कार का प्रस्ताव पास करना करीब-करीब तय हो गया है।"

"इतना ही न ? इसमें घबराने की क्या बात है ? जो धर्म अस्पृश्यता में विश्वास रखता है, उसको मैं नहीं मानता। फिर मैं उसकी आज्ञा का सम्मान क्यों करूं ? इस प्रकार की आज्ञा से न तो मेरा नागरिकता का अधिकार छिनता है और न मेरा खाना-पीना बन्द होता है।"

"लेकिन तुम समाज से दूर हो जाओगे। हम रिश्तेदारों से खान-पान का व्यवहार टूट जायगा। आठों पहर तुम्हें अपमान सहना पड़ेगा।"

"आप जिसे समाज मानते हैं आज भी तो मैं उससे अलग ही हूं। लेकिन केवल वह वर्ग ही समाज नहीं है। जो यहां है, वह भी तो समाज है। मुझसे रिश्ता रखने वाले लोगों को यदि मेरा यह काम बुरा नहीं लगता है तो उनमें इतना साहस होना चाहिए कि वे बहिष्कार की परवा न करें। यदि वह साहस उनमें न हो तो फिर उन्हें बहिष्कार स्वीकार कर लेना चाहिए। आप मान-हानि के बारे में कहते हैं तो मुझे उसका कुछ भी बुरा नहीं लगता। मैं जो कुछ करता हूं, उसके विषय में जबतक मुझे यह विश्वास है कि वह न्यायपूर्ण और उचित है तबतक अंधे या डरपोक लोगों के मूर्खतापूर्ण व्यवहार से मैं यह क्यों मानूं कि मेरी मान-हानि हुई है ? उल्टे मुझे उनपर दया आती है। उन्हें भविष्य दिखाई नहीं दे रहा है। मुझे दिखाई दे रहा है।"

"लेकिन प्रत्यक्ष रूप से उसे सहना बड़ा कठिन है। उसमें भी स्त्रियों को ऐसी बातों से बड़ी पीड़ा होती है। दूसरे, प्रतिष्ठित समाज में आज तुम्हारा पक्ष लेनेवाले लोग थोड़े-से हैं। यदि तुम उनसे सहायता लो तो हम स्वामीजी पर कुछ दबाव डाल सकते हैं, फिर प्रस्ताव पास करने का साहस उनको नहीं होगा।"

"नहीं, यदि ऐसा कुछ संभव हो तब भी मैं वैसा नहीं करूंगा। मैं नहीं चाहता कि मेरी और समाज की शक्ति इन छोटी बातों में खर्च हो। एक

दृष्टि से मैं इस बात का स्वागत ही कर रहा हूं। कभी-न-कभी इस प्रश्न को उपस्थित होना ही था। समाज में यदि सद्वृत्ति जीवित होगी तो इस बहिष्कार से वह जग जायगी और धर्म के डंडे के भूत का झूठा भय दूर होकर प्रगति का रास्ता खुल जायगा।"

"घर में रंजना की मां को इस बात का बड़ा भय लग गया है और तुम्हें देखता हूं कि उसकी कुछ भी चिन्ता नहीं है।"

"हम पुरुष ही सुधार से घबराते हैं। यदि हम थोड़ा धैर्य रखकर आगे बढ़ें तो हमारी स्त्रियां थोड़े ही समय में हमसे भी दो कदम आगे जा सकेंगी। आप तो जानते ही हैं कि यह कमली पहले कैसी थी! और अब मैं ही उससे शिक्षाग्रहण करता हूं। क्यों, सच है न?"

"किसी भी नये काम को अपने ऊपर लेने के पहले हो-हल्ला होता ही है, लेकिन जब एक बार उसे ले लिया तो फिर वह मीठा बन जाता है। आखिर हरिजन में क्या बराई है? क्या वे मनुष्य नहीं है? यदि हम उनके साथ मानवोचित व्यवहार करते हैं तो लोगों का दिमाग इतना गरम क्यों हो जाता है?" स्वाभिमान जाग्रत करके कमली ने कहा।

"लेकिन उधर तेरी मां घबरा गई है, उसका क्या होगा? उसके विचार से एक दामाद तो जाति से अलग हो जायगा और भावी दामाद अगर अच्छा होने पर हाथ लगा तो वह भी दूर जैसा ही रहेगा। फिर इस रंजना का क्या होगा?"

"क्यों रंजना, तुम भी मेरा मन बदलने के ही लिए ही आई हो न?" केशव ने रंजना को संबोधित करते हुए कहा।

"जीजाजी, आपकी ये बड़ी-बड़ी बातें मेरी समझ में नहीं आती हैं। वहां मुझे कुछ काम नहीं है। किसी काम में मन नहीं लगता है, इसलिए मैंने सोचा कि यहां समय पर उनकी कुछ खबर तो मिलेगी और गरीबों की थोड़ी-बहुत सेवा करने से भगवान को मुझपर दया भी आयगी। मुझे अपने भविष्य की चिन्ता नहीं है। यदि वे एक बार अच्छे हो गये तो मुझ सबकुछ मिल गया।" नम्रता से किन्तु निश्चय-पर्वक रंजना ने उत्तर दिया।

रंजना के पिता से केशव ने कहा, "आप तनिक भी विचलित मत होइये। डर से बिना कारण ही संकट बहुत बड़ा प्रतीत होता है। यदि आगे बढ़कर उसका मुकाबला किया तो वही हमसे घबराने लगता है। आप घर जाकर समझा दीजिये। मैं भी समझाऊंगा। आप तो ऐसे रहिये, मानो कुछ हुआ ही न हो।"

इतना सब सुनने पर बेचारे कमली के पिता क्या करते? वे रात को ठहरकर दूसरे दिन चले गये। लेकिन भजन में केशव के मुंह से सुना हुआ अभंग उनके हृदय में चुभता रहा।

तन्मय होकर केशव गा रहा था। उसमें संगीत तो ऐसा नहीं था, लेकिन अर्थ और भाव सुस्पष्ट होकर उनके अन्तःकरण पर अंकित हो रहे थे। विशेषतः पहले-पहल सुने हुए अभंग का प्रभाव कुछ अलग ही था। भाव-गंभीर होकर केशव गा रहा था—

हंसाचा तो चारा न इच्छती वायस।
आणि मेल्या मांस भक्षितील त्याचें॥
नागसरींचें सुख दिवड़ा केंवि कळावे।
ऊंदिरची गिळावे त्याने पैं गा॥
अग्नीमाजी सती एकलीच जळे।
आणि पहावया मिळे सकळ जन॥
तैसा कोणीही न झोंबे साधूच्या आनन्दा।
आणि करावया निन्दा अनेक मिळती॥
सोयरा म्हणे येथें कोणाचें काय गेलें।
जें जें काय केलें पावाल तुम्ही॥*

---

* हंस खाद्य की इच्छा वायस कभी नहीं कर सकता है।
किन्तु मरे हंसों के भक्षण हित वह तत्पर रहता है।
पुंगी के स्वर में क्या सुख है दीवड़ इसको कहां जानती?
चूहों के भक्षण में ही वह महा सौख्य सौभाग्य मानती।
धूं-धूं करती चिता-अग्नि में सती अकेली जल जाती है।

सुनते-सुनते वह सारा अभंग तप्त मुद्रा की भांति बिसूबाबा के हृदय-पटल पर अंकित हो गया और उसमें समाया हुआ उनके सारे जीवन का इतिहास इस जलते घाव से बहने लगा ।

वे प्रतिदिन सितार लेकर बैठते थे। उस दिन से उनके भजन में यह नया अभंग और जुड़ गया। उनके मुंह से निकले हुए इस अभंग के स्वर कानों में पड़ते ही उनकी पत्नी मन्त्रमुग्ध की भांति देव-मन्दिर में खिंची हुई चली जाती थीं और उनकी आंखों से बहते हुए गंगा-यमुना के प्रवाह को चित्रलिखित-सी देखती रहती थीं।

: १५ :

शिक्षा-विभाग के इन्स्पेक्टर की ओर से आग्रहपूर्वक एवं आवश्यक निमन्त्रण आने के कारण केशव प्रातःकाल ही पणजी चला गया। स्कूल की चार दिन की छुट्टी होने के कारण रंजना से जी भरकर बात करने के लिए कमली को फुरसत और आजादी थी। अब यह डर नहीं था कि थोड़ी-सी भी बात केशव के कान में पड़ेगी। सुई धागा लेकर दोनों बहनें ढलती धूप में अपने सुख-दुख की एवं इधर-उधर की बातें करती हुई बैठी थीं।

"रंजना, क्या रमाअक्का की तरफ की कोई नई खबर मिली है ?"

"हां, पिताजी अभी वहां हो आये थे न ? उन्होंने सोलह सोमवार का व्रत प्रारम्भ किया है। रवलू दादा का स्वास्थ्य तो अब बराबर गिरता जा रहा है। यह खम्बा अकस्मात कब गिर पड़ेगा, कहा नहीं जा सकता—ऐसा पिताजी मां से कह रहे थे। बेचारी रमाअक्का पर दोनों ओर से ऐसी

उधर सती का दाह देखने बड़ी भीड़ जुड़ जाती है।
इसी तरह साधू का सुख भी कोई कभी न अनुभव करता।
पर साधू की निन्दा में जग कितनी शक्ति व्यर्थ व्यय करता।
सोयरा कहता, "हे भाई ! यहां किसी का क्या जाता है ?
अरे, यहां जो जैसा करता, वह वैसा ही फल पाता है।

मुसीबत आई ।" रंजना ने कहा ।

"डाक्टरों के यह निदान करने पर कि अपमान के कारण ही हृषी का दिमाग बिगड़ गया है, रवलूदादा यह मानने लगे हैं कि लड़के की इस स्थिति के कारण वे स्वयं ही हैं । इसी कारण उनका हृष्ट-पुष्ट शरीर जर्जर हो गया है ।" नि.श्वास लेकर कमली ने कहा ।

"लेकिन दीदी, यह बात ठीक नहीं है ।"

"इसका मतलब ?" आश्चर्य से कमली ने पूछा ।

"वास्तविक दोषी तो मैं हूं । उनका अपमान तो मेरी ओर से हुआ । रवलूदादा पर तो झूठा आरोप है । बहन, यह बात किसी को उनसे कहनी चाहिए । लेकिन वैसा करना भी संभव नहीं है । इसमें उनके चरित्र पर धब्बा लगता है । सारी बातें तुमसे कहने के लिए इतने दिनों से मेरा मन बहुत बेचैन हो रहा था । यहां आई तो तुम्हें फुरसत नहीं ।"

और इस प्रकार कभी असमंजस में पड़ कर, तो कभी शर्म से भर कर, और कभी रोते-रोते रंजना ने वह सारा प्रसंग कमली को सुना दिया ।

"पिता कितना भी नाराज क्यों न हो, उसके क्रोध से किसी का कितना अपमान हो सकता है ? मान लो यदि उसी से वे पागल हुए तो उसका शृंगार से क्या सम्बन्ध ? स्त्री की ओर से ऐसा अपमान होना ही पुरुष के लिए असह्य होता है और उस दिन जीजाजी ने मेरे और शेवन्ती के साम्य का जो वर्णन किया, वह तुझे मालूम है न ?"

"मुझे तो वह सुनकर आश्चर्य हुआ, रंजना ।" कमली ने उत्तर दिया ।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि इस साम्य के कारण ही उनका मन इस विचित्र तरीके से वहां अटक गया है ।"

"तुम्हारी यह बात व्यर्थ-सी है, रंजना ।"

"दीदी, मेरे मन की शंका दूर करने के लिए बेकार बहाना मत करो । मुझे तो यह बिलकुल साफ दिखाई देता है । इसमें तनिक भी शंका नहीं है ।"

"कैसे कहें ? हो सकती है ।" भारी मन से कमली ने कहा ।

उन दोनों की बातें हो हो रही थीं कि डाकिया आया और कमली के

हाथ में एक लिफाफा देकर चला गया। पत्र काफी मोटा था और पते के अक्षर सुडौल और सुन्दर थे। कमली ने उसी समय पहचान लिया कि पत्र शेवन्ती का है।

रंजना ने पूछा, "किसकी चिट्ठी है ?"

"शेवन्ती की।" कमली ने उत्तर दिया और लिफाफा खोलकर मन-ही-मन पढ़ने लगी।

"जोर से पढ़ न ?" कुछ चिढ़कर रंजना ने आतुरता से कहा। कमली ने कोई आनाकानी नहीं की और पढ़ने लगी :

प्रिय कमली दीदी,

आपके पत्र से मुझे काफी धैर्य मिला है। स्त्री को जब एक बार अपनी वत्सलता का साक्षात्कार हो जाता है तो उसकी गोद में प्रणय भी बालक की तरह मुग्ध और पापमुक्त हो जाता है—आपके इस कथन का रहस्य अब मेरी समझ में आ रहा है। हृषी अब काफी शान्त हो रहे हैं। कभी-कभी किसी कविता की कोई पंक्ति वह कुछ ऐसे ढंग से गुनगुनाते है कि उसमें बड़ी मधुरता आ जाती है। कभी-कभी कुछ असंगत बात भी बोल उठते हैं, लेकिन उसमें सुभाषित जैसी कोई ऐसी चमकदार बात भी कह जाते हैं कि बुद्धि-मान लोग भी चकित रह जायं। हां, रात होने पर कभी-कभी संभोग की आतुरता उनकी आंखों में ऐसी कांप उठती है कि मैं करुणा से पिघल जाती हूं। जब मैं भक्ति-रस के पदों का पाठ करने लगती हूं तो धीरे-धीरे वह शान्त हो जाते हैं, लेकिन मुझे भी बहुत रात तक नींद नहीं आती। मेरे मन में ऐसा आता है कि कहीं मैं इस व्यक्ति को तंग तो नहीं कर रही हूं। प्यास से व्याकुल व्यक्ति के मुंह के पास पानी का गिलास ले जाना और उसी क्षण उसे पीछे हटा लेना, इस प्रकार की बात हमेशा करते रहना तंग करना नहीं तो और क्या है ? इससे ठीक होने के बजाय उनकी बीमारी ज्यादा बढ़ जायगी। जल्दी ही इसका हल ढूंढ़ लेना चाहिए। देवी मेरी परीक्षा ले रही है। वही पार लगायगी। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें कोंकणी गीत बहुत प्रिय है। एक बार सहज ही मैंने एक गीत गाया। यह देखकर कि वह उन्हें

पसन्द आया, मैंने एक ईसाई सहेली से बहुत-से गीत इकट्ठे करवाये। उनमें से कुछ चुने हुए नकल करके भेज रही हूं। शायद आज नहीं तो कल, उनका उपयोग होगा।

लोगों का उपद्रव बढ़ रहा है। कितने ही भले आदमियों ने मां को धमकाया भी, लेकिन मुझे उससे कुछ विशेष नही लगा। चिन्ता एक ही बात की होती है और वह हृषी के बढ़ते हुए धूम्रपान की। मन की बात न होती देखकर वे रात के समय घंटों सिगरेट पीते रहते हैं। पत्रोत्तर जल्दी देना।

तुम्हारी
शेवन्ती

जब पत्र पढ़कर कमली ने गरदन ऊंची की तब उसे मालूम हुआ कि रंजना के मुरझाये हुए गालों पर से आंसुओं की बूंदें गिर रही हैं।

"जब सबकुछ ठीक चल रहा है तो तू क्यों रोती है?" कमली ने रंजना से पूछा।

"नहीं दीदी, उस रात को भी वे इसी तरह लगातार सिगरेट पी रहे थे और मैं दूसरी मंजिल पर रो रही थी। अब मुझे वह सब स्मरण हो रहा है। अपने मनुष्य का सम्बन्ध किसी दूसरी स्त्री से होने की कल्पना करके जो दुःख होता है, क्या तूने कभी उसकी कल्पना की है?"

"लेकिन यदि परिस्थिति ही उतनी कठिन हो जाय तो उसमें दुःखी होना चाहिए या शेवन्ती-जैसी स्त्री का उपकार मानना चाहिए?"

"दीदी, उसका जितना उपकार माना जाय, थोड़ा है। मुझे उससे न नाराजी है, न ईर्ष्या। वह बेचारी मेरे पाप का परिमार्जन कर रही है। ऐसा लगता है, मेरे किसी जन्म की बहन आज मेरे कल्याण के लिए दौड़ आई है। मैं ज़ो रो रही हूं, वह भाग्य का कठिन खेल देखकर।"

कमली ने रंजना को अपने पास खींच लिया। आंचल से उसकी आंखें पोंछीं और बुज़ुर्गी के स्वर में बोली—

"रंजना, तू स्त्री-जाति में जन्मी है। दुःख निगलकर सुख का निर्माण

करना ही हमारा धर्म है। निष्ठा कभी भी रोती नहीं है। वह सबकुछ सहन करती है। जितना वह सहन करेगी उसे उतना ही अच्छा और जल्दी फल मिलेगा। अब रोना बन्द कर। है मंजूर ?"

"हां, मंजूर है। लेकिन मेरा एक काम करोगी ?" अधीर होकर रंजना ने कहा।

"करूंगी।"

"हँसोगी तो नहीं ?"

"नहीं।"

"मैं वह गुलाबी साड़ी लेकर आई हूं। उसे मेरी भट के रूप में शेवन्ती के पास पहुंचवा दो और उसे पहनकर उससे उनके मन की ग्रंथि को खुलवाने के लिए कह दो। उस साड़ी के ही द्वारा वह उन्हें मेरी याद दिला दे। उसीसे हम दूर हुए। संभव है, उसीसे हम पास आ जायं।"

"सुबह ही मैं शेवन्ती को पत्र लिखती हूं और साड़ी लेकर आदमी भेजती हूं।"

प्यार से कमली के गले में अपने हाथ डालकर कृतज्ञ आंखों से रंजना ने कहा —

"कितनी अच्छी हो तुम !"

अस्ताचलगामी सूर्य की स्वर्णिम किरणों में उसे रंजना का चेहरा स्वर्ण कमल जैसा दिखाई दिया। अनुपम वात्सल्य के प्रवाह में कमली ने छोटे बच्चे की भाँति रंजना को चूम लिया।

भगिनी-प्रेम की असीम मधुरता से वह सुनहरी संध्या धन्य हो गई।

: १६ :

पिछले कितने ही दिनों से चारों तरफ यह कोलाहल मच गया था कि केशव के विरुद्ध बहिष्कार का प्रस्ताव अब पास होने वाला है। कमली धैर्य से उसका मुकाबला कर रही थी, लेकिन उसके मन में बड़ा तूफान उठ रहा था। पीहर तो उसके लिए छूट-सा ही गया था। नाते-रिश्तेदारों में भी उसका

ज्यादा जाना-आना नहीं था; क्योंकि वह आठो पहर केशव द्वारा निर्मित उस हरिजन-मुहल्ले की दुनिया में ही डूबी रहती थी। लेकिन पीहर और रिश्ते-दारों का स्नेह वहां रहने पर भी अनुभव होता रहता था। अब वह हमेशा के लिए मिट जायगा, इस कल्पना से वह अन्दर-ही-अन्दर व्याकुल हो रही थी। इसी बीच समाचार मिला कि रवलूदादा ने बिस्तर पकड़ लिया है। इस तरह चारों ओर से कठिनाई के बादल उठते हुए देखकर कमली समझ रही थी कि उसे धैर्य रखना चाहिए, लेकिन उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके पैरों के नीचे की जमीन खिसक रही है। निरन्तर अनुभव हो रहा था कि उसे केशव का थोड़ा बोझ अवश्य कम करना चाहिए; लेकिन वह काम में इतना मग्न था कि विगत चार-पांच दिन से उसे उससे घड़ी भर बोलने का भी अवसर नहीं मिला था। यद्यपि शेवन्ती ने लिखा था कि पत्र की बातें उसे न दिखाई जायं तथापि उसके मन में वे सब बातें केशव से कह देने का लोभ संवरण नहीं हो रहा था। फिर भी उसकी सूचना का महत्व समझकर उसने बड़े प्रयास से उसे प्रकट नहीं किया था।

उस दिन केशव को संध्या समय कुछ जल्दी घर आया हुआ देखकर कमली को बहुत आनन्द हुआ। उसने और रंजना ने मिलकर बड़े उत्साह से उसे अच्छे लगनेवाले शाहपुरी कोड़बोली[1] बनाये। तीनों साथ-साथ भोजन करने बैठे। जब वे भोजन कर रहे थे, रंजना बोली—

"जीजाजी, आपको मालूम है कि आज कितने दिनों के बाद आपको बातचीत करने का समय मिला है ?"

"ठीक है रंजना, पिछले कितने ही दिनों से जैसे मैं अपनी घर-गिरिस्ती को बिलकुल भूल ही गया था। काम इतना बढ़ रहा है कि उसकी वजह से सारे कामों की याद रखना कठिन होता है।" केशव के स्वर से अपराध की अनुभूति स्पष्ट प्रकट हो रही थी। अतः बातचीत का विषय बदलने की दृष्टि से कमली ने कहा—

---

१. एक पदार्थ

"बहिष्कार के प्रस्ताव पर होहल्ला तो खूब मच रहा है। क्या उस सम्बन्ध में कुछ मालूम हुआ है ?"

"जिस गांव जाना नही है, उसका रास्ता क्यों पूछना चाहिए ? यही मेरा नियम है; लेकिन पिछले हफ्ते जबसे उन इंसपेक्टर ने मुझे अपनी वर्षगांठ पर विशेष रूप से बुलाया तब से मेरी कीमत बहुत बढ़ गई है। उस दिन उनके पास बड़े-बड़े आफीसर आये थे। उन्होंने उनसे मेरा परिचय करा दिया। दूसरी बात यह है कि उनके एक मित्र जो माकाव में जज हैं, जल्दी ही यहां हाईकोर्ट के जज बनकर आ रहे हैं। वे हिन्दू-संस्कृति पर एक ग्रन्थ लिख रहे हैं। उन्होंने पत्र में अपनी इच्छा प्रकट की है कि उस ग्रंथ में उन्हें मेरी मदद की आवश्यकता होगी। उन्होंने यह बात भी उस बैठक में कही। इसलिए सरकारी हल्कों में बिना कारण ही मुझे महत्व मिल गया। इस महत्व के प्रभाव से बहिष्कार का प्रस्ताव वहीं-का-वही ठप्प हो गया है।"

"अच्छा हुआ। ठंडे पानी खाज गई।" आनन्दित होकर कमली ने कहा।

"कमली, तुम्हें इस बात से आनन्द हुआ; पर मेरी दृष्टि से यह बड़े दु:ख की बात है। यह इस बात की द्योतक है कि हमारे लोग और हमारे धर्मपीठ कितने विवश, कितने परोपजीवी और कितने डरपोक बन गये हैं!" उदास होकर केशव ने कहा।

"और रवलूदादा की क्या खबर है ?" रंजना ने पूछा।

"दिन-प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। दवा को तो वे छूते ही नहीं। 'वैद्यो नारायणो हरि:,' यही उनका मन्त्र है। लेकिन उसपर उनकी कितनी श्रद्धा है! मुझे उस श्रद्धा पर सचमुच ईर्ष्या होती है। कौन कह सकता है कि उनके ईश्वर के मन में क्या है ? मुझे नहीं लगता कि हृषी के अच्छे होने के पहले वे अच्छे हो जायंगे।" केशव ने कहा।

"लेकिन, यदि मैं उनको यह विश्वास दिला दूं कि उनकी (हृषी की) बीमारी का कारण वे नहीं हैं तो ?" कांपती हुई आवाज में रंजना ने कहा।

"फिर भी कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। कमाने योग्य ऐसे होशियार

लड़के को अपनी आंखों के सामने बिगड़ते हुए देखने का दुःख इस प्रकार के उपाय से थोड़े ही मिटेगा। मैं परसों ही उनसे मिलने गया था। उन्होंने कहा था कि मुझे स्वस्थ करने के प्रयत्न में व्यर्थ समय मत खोओ। मैं तो अपने ईश्वर को चुनौती देकर बैठा हूं। हम एक-दूसरे का अन्त देख रहे हैं। जब भक्त और भगवान में होड़ शुरू होती है तब भगवान् आकर अपनी टेक निभाता है। इतना कहकर वे वामन पण्डित का भीष्मार्जुन युद्धवाला श्लोक कहने लगे :

ये रथावरि झणीं यदुराया। खड्ग देइन विकोष कराया।
तोडि मस्तक, पड़ो चरणीं या। धन्य होइन तवाच रणीं या॥

और उसे सुनते ही तुम्हारी भांति इसी तरह मेरी आंखों से आंसू बहने लग गये।"

कमली और रंजना के आर्द्र चेहरों की ओर देखकर केशव ने आगे कहा—"हृषी का स्वस्थ हो जाना ही उनके हृदय-रोग का एकमात्र उपाय है।"

"शेवन्ती ने पत्र में लिखा है कि उसके लिए काफी आशा पैदा हो गई है।" केशव की व्यथा कुछ कम करने के उद्देश्य से कमली ने कहा। यह बात ज्यादा देर तक जब्त करना उसके लिए कठिन हो रहा था। रवलूदादा की बात सुनकर वह गद्गद् हो गई थी।

"कब आया शेवन्ती का पत्र ?"

"चार दिन हो गए।"

"चार दिन ! यानी ९६ घंटे तुमने यह बात मुझसे नहीं कही ?"

शेवन्ती ने लिखा था कि यदि मान्यता केवल मान्यता ही रही तो आपको बिना कारण आघात लगेगा। अभी यह बात किसीसे मत कहना। परन्तु सोचा कि रवलूदादा के प्राण खतरे में हैं, सो कह दूं।"

कमली का यह उत्तर सुनकर केशव ने आंखें बन्द कर लीं। क्षण-भर वह ध्यानस्थ मुद्रा में रहा। अनंतर उसने एक ऐसी दीर्घ निःश्वास ली, मानों उसकी छाती के बन्धन एकदम टूट गये हों।

"यदि इतनी अपार श्रद्धा हो तो इस युग में भी भगवान ऐसे भक्तों की

शरण में आता होगा, इसपर अविश्वास कैसे करें ?"

इतना कहने के बाद दो क्षण भी नहीं बीते कि एक ग्रामीण केशव को तलाश करता हुआ वहां आया।

"कहां से आये हो ?" केशव ने उससे पूछा।

"कवला से। हृषीबाबा ने यह पत्र दिया है।"

पत्र को पढ़ते ही केशव का चेहरा एकदम उतर गया। कमली और रंजना चित्रवत् रह गये।

"आग कब लगी ?"

"दोपहरी में। भगवान जाने किस दुष्ट का काम है। आधे से ज्यादा घर भस्म हो गया। बुझाते-बुझाते हमारी नाकों दम आ गया, लेकिन शेवन्ती सचमुच बड़ी साध्वी है। घर जलने पर भी अपने कपड़े संभालने के बजाय वह आग में जाकर हृषीबाबा का सामान बाहर निकाल रही थी। अन्त में उन्होंने ही उसे खींचकर आग में से निकाला, नहीं तो बड़ी गंभीर हालत हो जाती।" बेचारा ग्रामीण हांफते-हांफते समाचार सुना रहा था।

"लेकिन किसी के चोट तो नहीं लगी ?"

"नहीं, भगवान् ने इतनी कृपा की।"

कमली ने पत्र खोलकर पढ़ा। लिखा था :

प्रिय केशव,

घर जल गया है। फूलवन्ती निराश हो गई है। जल्दी ही आ जाओ। तुम्हारे शब्दों से शेवन्ती को धैर्य मिलेगा। आते समय अपनी एकआध धोती ले आना।

तुम्हारा
हृषी

"कमली, इसे कुछ खाने-पीने के लिए दे दो। बहुत थक गया है। अभी उतना ही और चलना है। मैं जा रहा हूं।" केशव ने कहा।

"जीजाजी, मैं भी चलूं ?" अधीर होकर रंजना ने कहा।

"कैसे जाओगी ? पहले तो यहां सवारी का प्रबन्ध नहीं है। फिर इस

समय तुम्हारा उधर चलना ठीक नहीं है। कुछ हो गया तो? कितनी भी रात हो जाय, मैं लौट आऊंगा। हृषी के कपड़े जल गये होंगे। मेरी पेटी में से दो धोतियां निकाल दो।"

× × ×

जब केशव शेवन्ती के घर पहुंचा सूर्य अस्त हो चुका था। संध्या की मन्द-मन्द आरक्त किरणें पश्चिम दिशा के नारियल के पेड़ की चोटियों को चमका रही थीं। दूसरी ओर चन्द्रमा की कान्ति धीरे-धीरे फैल रही थी। इन दोनों प्रकाशों के मेल में वे आधे से अधिक जले हुए घर बड़े भयंकर और विकृत दिखाई दे रहे थे। आंगन के कटे हुए केले के पेड़ को देखकर ऐसा जान पड़ता था कि उनसे आग बुझाई गई है। छप्पर का जला हुआ हिस्सा काल की भांति कुरूप और भयंकर दिखाई दे रहा था और उससे जलकर राख बन जाने वाला कच्चे केले का धड़ ऐसा प्रतीत होता था मानो वह उस काल के मुह में रखा हुआ हो। इसी घर का पहले का मनोहर रूप और उसकी वर्तमान दुर्दशा इन दोनों का अन्तर उस्तरे की धार की तरह केशव के अन्तःकरण को चीरने लगा। उसे ऐसा लगा, मानो दो दिन पहले का देखा हुआ घास चरता हृष्ट-पुष्ट चौपाया अकस्मात् मरकर सियार-गीदड़ों का भोजन बन गया और उसका आधे से अधिक हड्डियों का ढांचा खुला हुआ पड़ा है। उसने घर के सामने के सुपारी के पेड़ की तरफ देखा। आग की झुलस से उसने मानों गरदन नीची कर ली हो। घर की यह दुर्दशा देखकर केशव का मन उद्विग्न हो गया। लेकिन उसे अन्दर रहने वाले लोगों की मानसिक दुर्दशा का बड़ा डर लग रहा था। अब क्या उपाय करना चाहिए, यही वह सोच रहा था।

जब वह दरवाजे पर पहुंचा तो थाली में दो जलते हुए दीपक और कच्चे नारियल का प्रसाद लेकर शेवन्ती आंगन की सीढ़ियां उतर रही थी। दीपक की ज्योति के स्वर्ण जैसे तेज से उसके चेहरे के नीचे का भाग आलोकित हो गया था। अपने आप उसके पैर वहीं रुक गये। उसे ऐसा लगा, मानो सौंदर्य पर वैराग्य का तेज आ गया हो। आज उसे कई दिनों के बाद

अकस्मात् अपनी दिवंगत मां की याद आ गई।

केशव कुछ हाथ की दूरी पर खड़ा था, लेकिन शेवन्ती उसे देख नहीं सकी। वह अपनी ही भावना में निमग्न थी। उसने तुलसी-क्यारे को रोली लगाई, दीपक नीचे पेटी पर रख दिया और दो क्षण ध्यानमग्न ोकर नमस्कार किया। केशव के मन में विचार आया कि कहीं देवी की प्रतिमा ही तो साकार हो कर नहीं आ गई है!

आरती की थाली लेकर ज्योंही शेवन्ती लौटने लगी, केशव आगे आया और बोला, "सबसे पहले प्रसाद के लिए मैं ही आया हूं।"

"ओहो, आप आ गए! बहुत अच्छा हुआ। आप ही अपने हाथों से यह प्रसाद हम सबको बांट दीजिये। आपने जिन पत्रों को संभालकर रखने के लिए कहा था, वे आग में पड़ गए थे। उस समय मैंने मानता की थी। उसीका यह प्रसाद है।" इतना कहकर उसने आरती की थाली केशव के हाथ में दे दी।

"इसे बचा देने के लिए अब मुझे भी देवी की मानता करनी है। यह आज मेरे पत्रों के लिए प्राण गवां रही थी।" चबूतरे पर दीवार से टिक कर बैठे हुए हृषी ने कहा।

"उसका वह मधुर स्वच्छ स्वर इतने दिनों के बाद फिर सुनाई देते ही केशव का सर्वांग सुख-संवेदना से रोमांचित हो उठा।

"अन्दर से बत्ती तो मँगवाना। जरा अपने हृषी को आंख भरकर देख लूं।" शेवन्ती के हाथ पर नारियल की दो फांकें रखता हुआ केशव बोला।

जब शेवन्ती बत्ती लेकर बाहर आई तब केशव हृषी के घुंघराले बालों में बायें हाथ की उँगलियां डालकर दाहिने हाथ से नारियल की फांक उसे खिला रहा था और वह भी छोटे बच्चे की तरह बड़े प्रेम से उसके हाथ से खा रहा था।

"आप तो इन्हें बच्चों की तरह खिला रहे हैं।" पास आकर केशव को संबोधित करते हुए शेवन्ती ने कहा।

"हम दोनों जब मिलते हैं, तब इसी तरह छोटे हो जाते हैं। इसपर जब मैंने तुमको देखा तब मुझे मां की याद आ गई। ऐसा लगा, मानो मुझे भी थोड़ा मां बनना चाहिए। कभी-कभी मुझे तुम स्त्रियों के भाग्य पर ईर्ष्या होने लगती है।"

केशव के इन शब्दों के साथ शेवन्ती के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि उसे मां की वेदना की जानकारी केशव को दे देनी चाहिए, लेकिन मित्रता के उस लुभा देने वाले दृश्य से वह इतनी मुग्ध हो गई थी कि केशव के उत्साह को भंग करने का साहस उसे नहीं हुआ।

"बेटे का चेहरा ठीक तरह देख लीजिये।"

बत्ती का पूरा प्रकाश हृषी के चेहरे पर डालते हुए प्यार से शेवन्ती ने कहा।

"सचमुच हृषी, तेरा चेहरा पहले की अपेक्षा प्रफुल्लित और तेजस्वी दिखाई देता है।"

"यह तेज, यह प्रफुल्लिता, ऊपरी नहीं है, उसका आन्तरिक कारण है, केशव।"

"वह क्या ?"

"पहले मैं मनुष्यता से हाथ धो बैठा था। सो आदमियों में रहकर भी उनसे अलग था। मैं स्वयं को खो चुका था। अब मनुष्यता प्राप्त करने के कारण मैं मन से भी मनुष्य बन गया हूँ। मालूम है, यह मानवता मुझे कैसे मिली है?" उल्लसित होकर हृषी ने पूछा।

ऐसा अनुभव करके कि मानों वह किसी नए मनुष्य से बोल रहा हो, केशव आश्चर्यचकित मुद्रा से हृषी की ओर देखता रहा।

हृषी ने शीघ्रता से शेवन्ती के हाथ से बत्ती लेकर अलग रख दी और उसके हाथों को पकड़कर केशव को दिखाते हुए उसने कहा—"इन हाथों के प्रभाव से।"

बत्ती के पीले प्रकाश में शेवन्ती की जली हुई हथेलियां हृषी ने पूज्य भाव से केशव को दिखाई। लेकिन उन्हें जल्दी ही छुड़ाकर शेवन्ती ने कहा—"यह

तो प्रत्येक स्त्री का प्रतिदिन का अनुभव है। इसमें प्रशंसा की क्या बात है?"

लेकिन हृषी ने उसका यह उद्गार सुना-अनसुना कर दिया। उसने अपनी ही धुन में कहा—"जो भोग से नहीं हुआ, कला से नहीं हुआ, स्नेह से नहीं हुआ, वही मनुष्यता से हो गया। पिछले कुछ दिनों से मैं कुछ-कुछ होश में आया था। पर मुझे स्पष्टता से मालूम नहीं होता था कि यह जागृति है या स्वप्न। यह रंजना है या शेवन्ती, यह मुझे समझ ही नहीं पड़ता था। इस घर में मैं क्यों हूँ और कौन हूं, इसका मुझे पता ही नहीं लगता था। घर जलते हुए मैंने देखा, लेकिन मैं अपनी सिगरेट फूकता रहा। मुझे ऐसा लगा, मानो मेरी आंखों के सामने सिनेमा दिखाई दे रहा है। लेकिन जब 'हृषीबाबा के पत्र अन्दर रह गए' कहकर शेवन्ती जलती हुई आग में अन्दर घुसी तो मुझे बड़ा जबर्दस्त आघात लगा। मेरा निश्चेष्ट हृषी एकदम जाग गया। मैं आग में जाकर उसे ले आया और उसके साथ ही ऐसा मानव बनकर वापस आया।"

हृषी की बात सुनकर वह सारा प्रसंग केशव की आंखों के सामने सजीव हो गया।

"मेरे तो कोई जख्म नहीं हुआ। यहां गरदन पर दो जगह जल गया है, लेकिन उससे मैं होश में आ गया।" हँसते-हँसते गरदन का बायां हिस्सा दिखाते हुए हृषी ने कहा।

इस बीच चबूतरे पर होने वाली बातचीत कान में पड़ने से दुःखी होकर लेटी हुई फूलवन्ती बाहर आ गई। केशव को देखते ही वह धम से बैठ गई। कान के पास कड़कड़ ऊँगलियां चटकाते हुए उसने कहा—"सत्यानाश हो गया। जीवन भर मर कर पंछी की तरह एक-एक तिनका जमा करके यह झोंपड़ा बनाया, पर तकदीर को वह भी अच्छा न लगा।"

"बाई, धीरज मत छोड़ो। तुम्हारा घर नहीं जला है, हमारा जला है। हम उसे फिर पहले जैसा ही बनवा देंगे। तुम बिलकुल चिन्ता न करो।" सान्त्वना देने के उद्देश्य से केशव ने कहा।

"इस विनाश से भी अधिक भयंकर अब आगे होनेवाला विनाश

है। वही मुझे डरा रहा है। इस तरह दोपहर के समय भरे घर में आग लगना कोई अच्छा लक्षण नहीं है। भगवान् जाने इस लड़की के भाग्य में क्या बदा है !"

"मां, तू अन्दर जा। मैं कब से कह रही हूँ न कि ईश्वर पर भरोसा करके निश्चिन्त हो जा।" इतना कहकर शेवन्ती ने उसे बगल में हाथ डालकर खींचा और अन्दर ले जाने लगी। फूलवन्ती का सारा शरीर शीत से ठिठुरती हुई देह की भांति थरथर कांप रहा था।

जब शेवन्ती बाहर आई तो केशव की उदासीनता भंग करने के लिए उसने कहा, "मेरा मंदिर बच गया, आपके पत्र बच गये, इसे ही देवी की कृपा मानती हूं।"

"लेकिन प्राणों की अपेक्षा पत्रों की कीमत अधिक नहीं है।" केशव ने उत्तर दिया।

"क्या सत्य की कीमत प्राणों से भी अधिक नहीं है ?"

शेवन्ती के इस प्रश्न में अभिमान, समाधान, सौहार्द सबकुछ बड़े स्पष्ट ढंग से मिले हुए थे। केशव को कोई उत्तर नहीं सूझा। "हृषी, तू तो कुछ नहीं बोल रहा है।" बातचीत के टूटे सूत्र को जोड़ते हुए केशव ने कहा।

"मैं क्या बोलूं ? मेरे लिए कितने लोग जलते हैं और कितने घर गिर रहे हैं, यही मैं बैठा-बैठा देख रहा हूं। दोपहरी में ऐसे रास्ते पर के मकान में कौन आग लगा सकता है ? मेरा विश्वास है कि मेरे द्वारा तन्द्रा में फेंकी हुई जलती सिगरेट के टुकड़े की ही यह करामात है।" हृषी ने उत्तर दिया।

"आपको चुपचाप बैठने के लिए कहा है न ? आपके ऐसा कहने से मां को नया बहाना मिल जाता है। जो कुछ बातें होती हैं वे अपने कर्म से होती हैं। निमित्त तो कोई-न-कोई बन जाता है। मेरी देवी यह नहीं चाहती थी कि कि यह घर विलास-महल बन जाय। आपको अच्छा बनाकर उसने मेरा व्रत पूरा कर दिया है और निर्माल्य की आहुति दे दी है। ठीक है न ?" अन्त

के वाक्य शेवन्ती ने केशव को संबोधित करते हुए कहे।

"ऐसा कहते हैं न कि टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में भी भगवान् सरल-सीधा ही लिखता है? इस कहावत पर मेरा विश्वास है। लेकिन उन लेखों को पढ़ने की दृष्टि मेरे पास नहीं है। फिर मैं क्या करूं?" केशव ने उत्तर दिया।

शेवन्ती घर में गई। केशव उसके त्याग से अन्दर-ही-लज्जित अन्दर हो गया था। उसका हृदय कृतज्ञता से भर आया था। लेकिन उसे शब्दों में व्यक्त करना उसे बड़ा कठिन लग रहा था। इस तरह कुछ समय बीत गया। हृषी की गुनगुनाहट कानों में सुनाई देने पर वह प्रकृतिस्थ हुआ।

"क्या कह रहे थे?"

"कहां? क्या कहा मैंने?"

"अभी कुछ-न-कुछ गुनगुना रहे थे न?"

"हां-हां, अनजाने ही कविता के दो चरण जबान पर आ गये थे।"

"जरा जोर से सुनाओ।"

करूं नकोस विलाप हृदया, करूं नकोस विलाप।
बरासवें रे तुझ्या कपाळी एक भयंकर शाप!
जगांत इथल्या तूं परदेशी
तुझें वागणें इथें विदेशी
जे जे मंगल भाव शिंपिशी त्यांतुनि उगवे पाप!*

"ये पंक्तियां किसकी लिखी हुई है?"

"किसकी क्या, मेरी।"

इस अन्त के शब्द में हृषी के स्वाभिमान की झंकार केशव को स्पष्ट सुनाई दी।

***कर मत और विलाप, रे मन, कर मत और विलाप।**
वर के साथ लिखा मस्तक पर एक भयंकर शाप।
तू है इस जग में परदेशी।
तेरा सब व्यवहार विदेशी,
जो-जो मंगल-भाव बिखेरे वे बन जाते पाप।"

"बड़ा ही सुन्दर गीत है !"

"केशव, क्या सचमुच अच्छा लगा ?"

"मुझे तो हमेशा ऐसा प्रतीत होता रहता था कि ऐसे जीते-जागते गीत कभी-न-कभी तेरे मुंह से अवश्य सुनाई देंगे। जिस तरह इल्ली से तितली बन जाती है, उसी तरह कहना चाहिए कि हृषी से कवि बन गया। शाबाश !" कहकर केशव ने जोर से हृषी का हाथ दबा दिया और अनिमेष नेत्रों से उसकी ओर देखता रहा।

"लेकिन मेरे इस पुनर्जन्म का श्रेय तुम दोनों को है।" गीली आंखों से हृषी ने कहा।

इतने में शेवन्ती बाहर आई और बोली, "आपके लिए भोजन क्या बनाऊं ?"

"कुछ भी नहीं। मैं तो अभी लौटने वाला हूं। द्वादशी की चांदनी है। किसी को भी साथ ले लूंगा।"

"और यदि आज यहीं रह गये तो ?" शेवन्ती ने पूछा। उसके स्वर में आर्जव था, व्यथा थी, सान्त्वना की अपेक्षा थी, सान्निध्य की तृषा थी और थे उसके स्वयं के समझ में न आने वाले कितने ही भाव।

उन सबकी छाप केशव के हृदय पर पड़े बिना न रही। हृषी में हुआ परिवर्तन देखकर पहले ही उसके व्यक्तित्व का एक निर्जीव अंग सजीव बन गया था। इस सबका श्रेय वस्तुतः शेवन्ती के त्याग को ही था। उसकी सारी कृतज्ञता उमड़कर ऊपर आ गई थी। उसकी जली हुई हथेली की जलन अनुभव करके उसका हृदय नि श्वास छोड रहा था। लेकिन उसे ऐसा लगा कि उसके मार्दव में दुर्बलता है, धोखा है और उसने उत्तर दिया :

"यदि ऐसा मौका आया तो रह जाऊंगा।"

"तो क्या वह मौका अभी नहीं आया है ?" शेवन्ती के इस प्रश्न की गहराई केशव को अनुभव हुए बिना न रही। वह कहने वाला था कि हम अभी इतने समर्थ नहीं हुए हैं, लेकिन शेवन्ती ने उसका दूसरा ही अर्थ

समझा, केशव से यह छिपा न रहा। लेकिन उस चर्चा को कैसे आगे बढाया जाय, यह न समझ पाकर उसने बात बदलने के लिए कहा :

"वहां रंजना का मन व्याकुल हो रहा होगा। मैं कमली से कह आया हूं कि कितनी भी रात हो, लौट जरूर आऊंगा। रवलूदादा बीमार हैं। उन्हें जितनी जल्दी हृषी की कुशलता के समाचार मिलेंगे, उतनी ही जल्दी उनको आराम होगा। अच्छा तो हृषी, मे तुझे एक-दो दिन में ले जाऊंगा। मैं ही लेने आऊंगा।" केशव के अन्तिम शब्द शेवन्ती के लिए थे। उसे ऐसा लग रहा था, मानो वह नाराज हो गई है।

केशव चला गया तो शेवन्ती को ऐसा लगा मानों उसकी सारी शक्ति समाप्त होगई है। यह कल्पना उसके हृदय को विदग्ध करने लगी कि वह अभी केशव की निगाह में हीन है। इस वेदना के आगे वह अपने हाथ की वेदना भूल गई। यदि मैं चमार-महतर कोई भी होती तब भी वह मेरे पास रह लेते, लेकिन मै तो महाशूद्र से भी हीन, देवदासी हूँ। कोई भी दिव्य शक्ति मुझे पवित्र नहीं कर सकती। इस प्रकार के असंख्य विचारों में डूबी वह कितनी ही देर तक सीढी पर बैठी रही।

हृषी ने उसकी यह व्यथा पहचान ली। वह धीरे-से उसके पास आया और उसके सिर पर प्यार से हाथ फिराने लगा। उस स्पर्श में काम-वासना का नाम भी नहीं था, केवल सहानुभूति, असीम सहानुभूति ही थी। अतः शेवन्ती ने उसे दूर करने का कोई प्रयत्न नही किया। हृषी बोला, "शेवन्ती, अपना अहोभाग्य था कि यह साधु पुरुष यहांतक आया। मुझ जैसे साधारण व्यक्ति से जो अपेक्षा रखी जाती है वही उससे कैसे रखी जा सकती है? उसने समाज के उद्धार का व्रत लिया है। भगवान् राम की रानी के लिए केवल सच्चरित्र होना पर्याप्त नहीं है, उसे लोक की दृष्टि में भी वैसा दिखाई देना चाहिए।"

"लेकिन आपके इस समाज में हमारे लिए कोई स्थान नहीं है?"

"होना चाहिए। यदि नहीं हुआ तो उसे दिलाने के काम में वह कोई कमी नहीं रहने देगा।" उसके सिर पर हाथ फिराते हुए हृषी ने कहा।

शेवन्ती की आंखों से आंसू बहने लगे। जीवन में पहली बार आज उसे गहरा आघात लगा था। उसने सामने चांदनी में देखा, उसे लगा कि केशव की असाधारण ऊंची भव्य मूर्त्ति उसकी आंखों के सामने बहुत छोटी होती जा रही है और हृषी की साधारण मूर्त्ति धीरे-धीरे बढ़कर महान हो रही है। और अपने सिर पर रखे हुए हृषी के हाथ को वह सहलाती रही।

: १७ :

जब हृषी और केशव खलूदादा के बाड़े में प्रविष्ट हुए तब दिया-बाती का समय हो गया था। एक मील दूर मोटर बिगड़ जाने से दोनों पैदल आये थे। जब उन्होंने घर में कदम रखा, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वे मंदिर में प्रवेश कर रहे हैं; क्योंकि सारा घर स्वर्ण की भांति चमकनेवाले दीपकों के प्रकाश से जगमग हो रहा था। घर में एक ही साथ इतने दीपक दीपावली के अतिरिक्त और किसी दिन जलते हुए उसने नहीं देखे थे।

"आज घर में क्या है?" उसने चकित होकर पूछा।

"घर का यह स्थायी दीपक फिर से प्रकाशित हो गया है न?" उसकी ओर इंगित करते हुए प्रफुल्लित चित्त से केशव ने कहा।

दीपकों के इस स्वागत से हृषी गद्‌गद् हो गया। इतने में उसे दिखाई दिया कि मां रमाअक्का उसके स्वागत के लिए आ रही है। उसके पीछे-पीछे और भी लोग आ रहे थे। लेकिन मां की मूर्त्ति उसकी दोनों आंखों में पूरी तरह समा गई थी। सारा दु:ख आंखों में केंद्रित करके तेजस्वी शरीर धारण किये हुए मां उसे ऐसी प्रतीत हुई, मानो उड़कर आ रही हो। दोनों ही क्षण भर के लिए चित्रवत् से रह गये। दूसरे ही क्षण जब प्रणाम करने के लिए हृषी झुका तो माँ ने उसे हृदय से लगा लिया और बड़ी कठिनाई से एक-एक शब्द बोलते हुए कहा,

"बेटा, सबसे पहले घर के देवता को प्रणाम कर। उनके प्रणाम में हमारा सबका प्रणाम आ जायगा।"

"मां, क्या आप बीमार थीं ?" क्षण भर तक रमाअक्का की ओर एकटक देखते हुए उसने पूछा।

"नहीं बेटा, बीमारी मेरे पास क्यों आयगी ? अब तू आ गया है तो मेरे अन्दर दो हाथियों की शक्ति आ गई है।"

रमाअक्का हृषी को घर के शालिग्राम के सामने ले गई। वहां उसने अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी और हृषी को प्रणाम करने के लिए कहा। भगवान् से मानता करके उसके सिर पर भभूत लगाई। फिर तेल और नारियल के दूध की मालिश करके उसे अपने हाथ से स्नान कराया। उसे रेशमी पीताम्बर पहनने को कहा। फिर उसे लेकर रवलूदादा के कमरे में गई।

हृषी ने कमरे में कदम रखा, उस समय रवलूदादा पाठ कर रहे थे—

"जगन्नाथें केले मज सकळ लोकांत बरवे।"*

पलंग की बाजू में स्टूल पर दीपदानी जल रही थी। उसके प्रकाश में दो तकियों से टिककर पैर लम्बे किये हुए रवलूदादा बैठे थे। आधा पेट भोजन करनेवाले पिंजड़े के शेर की तरह रवलूदादा के शरीर पर झुर्रियां पड़ी हुई थीं। उनकी आंखें अन्दर धंस गई थीं। हां, पेशानी पर चमक अवश्य थी। काल से भी न डरने वाले अपने दुर्दम्य पिता की ऐसी अवस्था देखकर घर के अभिनव स्वागत और मां की स्नेहपूर्ण उमंग से अधिक मृदु बना हुआ हृषी का मन भाव-विह्वल हो गया। उसने पिता के चरणों में प्रणाम किया।

"यहां आकर बैठ जा, बेटा।" कुछ हटकर अपने पास बैठने का स्थान करते हुए रवलूदादा ने कहा। लेकिन इतने ही शब्द बोलने से उन्हें दम उठ आया। हृषी उनके पास बैठ गया। उसकी पीठ पर अपना दुर्बल हाथ फिराते हुए रवलूदादा 'व्यंकटेश स्तोत्र' का पाठ करने लगे। पिता-पुत्र की यह

***जगन्नाथ ने मेरा जग में सभी तरह कल्याण किया।**

भेंट देखकर कोने में खड़ी हुई रमाअक्का संतोष से अपनी आंखें पोंछने लगी।

उस पद को बोलकर रवलूदादा ने शक्ति संग्रहीत की थी। उन्होंने एक लम्बी सांस लेकर कहा—

"हृषी, मेरे शालिगराम ने मुझे अकीर्ति से बचा लिया है। घर की लाज रख ली है। भगवान् पत्थरों में नहीं, श्रद्धा में है। उस श्रद्धा की ज्योति कुल-पुरुष के समय से आजतक जल रही है। अपनी शक्ति के अनुसार मैं आजतक उसमें तेल डालता रहा। अब तो मै भगवान् को चढ़ाये हुए नारियल की तरह हूं। अब मैं कृतार्थ हो गया हूं और जिन्दा रहने का लालच करना भगवान् का द्रोह होगा। इतने दिनों तक मैंने घर की सेवा की। अब बचे हुए दिनों में भगवान् की सेवा करने दो। घर का सारा बोझ अब तुम अपने ऊपर लेलो।"

इतना कहकर रवलूदादा ने हृषी के सामने यज्ञोपवीत में बंधी हुई चाबियों का गुच्छा रख दिया।

"अभी तो वह घर में आया ही है। इतनी ही देर में उसके ऊपर घर-गिरस्ती का बोझ क्यों डाल रहे हो?" रमाअक्का ने किंचित् अधिकार के स्वर में कहा।

"ठीक बात है। कभी-कभी मै बहक जाता हूं।" कुछ प्रकृतिस्थ होकर रवलूदादा ने कहा।

"बाबा, घर-गिरस्ती की चिन्ता छोड़कर पहले अपने स्वास्थ्य पर ध्यान दीजिये।" हृषी ने कहा।

"अब मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं करनी है। दुनिया की चिन्ता करने वाला ईश्वर है। अगर तुम्हें थकान न हो तो दीवार की आलमारी में से 'ज्ञानेश्वरी' निकालकर बारहवां अध्याय मुझे सुनादो।"

हृषी 'ज्ञानेश्वरी' पढ़ने लगा। धीरे-धीरे घर के सब लोग इधर-उधर आकर बैठ गये। उनके साथ केशव भी आकर बैठ गया।

हृषी के घर में पैर रखने के बाद से भावनाओं को स्पर्श करनेवाली बातें तेजी से हो रही थीं। हृषी का हृदय गद्गद् हो गया। प्रत्येक पद पढ़ते

हुए उसे नये-नये अर्थ, नये-नये भाव और भक्ति एवं शांति की नई-नई रसोनुभूति हो रही थी। स्वर में कंपन के साथ उतार-चढ़ाव होता था। आंखें आर्द्र हो गई थीं। शरीर रोमांचित हो रहा था। 'ज्ञानेश्वरी' पढ़त हुए हृषी की कुछ ऐसी लौ लग गई थी कि उसकी चित्तवृत्ति अंतर्मुखी हो गई। आंखों के सामने के लोग धुंधले पड़कर अदृश्य हो गये और जो अमृतानुभव उसने पहले कभी नहीं किया था, उसे अव वह बड़े लीन भाव से कर रहा।"

पाठ समाप्त हुआ। पुस्तक की आरती की गई। रमाअक्का ने प्रसाद बांटा। सारा वातावरण बड़ा ही भावपूर्ण हो गया था।

"जीवन भर 'ज्ञानेश्वरी' पढ़ी, लेकिन आज जैसा अर्थ पहले कभी समझ में नहीं आया था।" खलूदादा ने कहा।

हृषी ने भी पहले इस अध्याय को पढ़ा था पर इतनी अच्छी तरह वह कभी उसकी भी समझ में नही आया था। खलूदादा के उद्गार से उसने अपने को धन्य अनुभव किया। वह किसी दूसरी ही दुनिया में विचर रहा था।

"हृषी, सचमुच तेरे अन्दर कोई नई चीज उदय हो रही है।" केशव ने कहा।

सब लोग भोजन करने बैठे। बीच-बीच में रमाअक्का कुछ पूछ बैठती थी। केशव की भांति हृषी भी उन प्रश्नों का उत्तर देता जाता था। लेकिन उसका मन अपने काबू में नहीं रहा था। वह किस वातावरण में पंख पसार कर उड़ रहा है, इसका उसे भी कुछ खयाल नहीं रहा था।

अन्त में चावल पर कढ़ी लेनी थी, लेकिन वह उसे लेना भूल गया और केशव के भोजन समाप्त करने की राह देखे बिना ही हाथ-मुंह धोने के लिए उठ गया। रमाअक्का उसे रोकने वाली थी, लेकिन केशव ने उसे आंख के इशारे से चुप कर दिया।

केशव अभी भोजन कर रहा था। उसे सुनाई दिया—

"माझें सुख मोठें सुख मोठें; ठेवुं कळना कोठें।"

हृषी यह पद गुनगुनाता हुआ बाहर चला गया। जब उसका स्वर

सुनाई न देने लगा तब केशव रमाअक्का से बोला, "रमाअक्का, हृषी के इस व्यवहार से घबराना मत और न उसे रोकना। जैसा उसको अच्छा लगे, करने दो। वह बहुत बड़ा कवि बनेगा—संत सोहिरोबा आम्बया और कृष्णंभट वांदरकर जैसा। हम जैसे उनके पद भजनों में गाते हैं, लोग हृषी के पद भी उसी तरह गायेंगे।

"इसीलिए तो जब वह 'ज्ञानेश्वरी' पढ़ रहा था तब मुझे ऐसा लग रहा था कि यह अपना हृषी नहीं, देवलोक का हृषी है।"

"तभी तो जितनी उसकी देखरेख पहले करते थे, अब उससे भी ज्यादा करनी चाहिए।"

इस बातचीत के कुछ समय बाद केशव बाहर चला गया। घर के सामने के मैदान में स्वच्छ चांदनी छिटकी थी। नारियल के पेड़ के पत्तों के हिलने से ऐसा लगता था मानो, चांदनी पानी की तरह तरंगित हो रही हो और उसकी छाया के कारण उनपर अनुपम नक्काशी का काम किया हुआ दिखाई देता था।

टूट कर गिरे हुए मोटे कटहल के पेड़पर बैठकर हृषी गुनगुना रहा था—

रतिलंपट मी असुनी तजला गोसावींहि भेटे
वाट उजळली चिरयात्रेची भिड़ली रात्र पहांटे।
आटे आता तृष्णा, वाटे त्रिभुवन मनिं पहांटे
माझें सुख मोठें सुख मोठें, ठेवु कळेना कोठें ! *

एक-एक पंक्ति दो-दो, तीन-तीन बार दुहरा कर वह दूसरी पंक्ति शुरू करता था। केशव को क्षण भर के लिए ऐसा लगा कि अपने मित्र को जाग्रत कर दे, लेकिन दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि वह किसी महान्

***मैं रतिलम्पट किन्तु साधुता मुझसे मिलने आई है !**
चिर यात्रा का मार्ग चमकता, रात सवेरा बन आई है।
तृष्णा आज उबल कम होती त्रिभुवन मन में समा गया है !
इतने सुख को कहां रखूं बस इसमें ही मन भटक गया है।

व्यक्ति के परम मंगल क्षण का अपमान करने की भूल कर रहा है ! आदर और कृतार्थता से उसका हृदय भर आया ।

अपने पैरों की आहट तनिक भी न होने देते हुए केशव पीछे लौट पड़ा । हृषी कितनी ही देर तक अपनी कविता गुनगुनाता हुआ बैठा रहा और रमाअक्का उसमें बाधा न डालकर खिड़की में बैठी हुई उसकी ओर देखती रही ।

: १८ :

जब पणजी में हृषी पढ़ता था और गर्मी की छुट्टियों में घर आता था, उस समय उसका जैसा लाड़-प्यार होता था वैसा ही अब होने लगा । 'पोय' की मधुरतम मछली, पायरी के विभिन्न जातियों के आम, स्वर्णचम्पा जैसे रसीले गूदे वाले कटहलों की पंक्ति लग गई थी और अनेक प्रकार के भोजन बनाने के लिए घर की स्त्रियों में होड़ होती रहती थी । घर के इस लाड़-प्यार और गांव में सब लोगों से प्राप्त होने वाले स्नेह के कारण जिस प्रकार लम्बी बीमारी के बाद उठने वाला व्यक्ति प्रतिदिन नवीन स्वास्थ्य प्राप्त करता है उसी तरह हृषी का व्यक्तित्व विकसित हो रहा था । हां, शुद्ध हवा के सेवन से जो उत्साह मिलता है उसकी ओर ध्यान न देकर मन को अन्य बातों में लगाये रखना, यही उसकी स्थिति हो गई थी । वह प्रतिदिन प्रातः-सायं घूमने के लिए अकेला ही जाता था । वसन्त ऋतु के कारण सृष्टि का सौंदर्य उमड़ रहा था । लेकिन उसने अबतक उत्सुकता से उसका रसास्वादन कभी नहीं किया था । सरगवा के पुष्प-गुच्छों पर कसरत करने वाले पक्षी, दोनों हाथों में वृक्ष का लाल फल लेकर सावधानी से उसको खाने वाली गिलहरी, घंटों तक ध्यान लगाकर मछलियों का अचूक शिकार करने वाला नीले रंग का मछली-मार पक्षी, चावल के खेत के घास के ढेर के बीच से निकलने वाले धुएं के वादल, पुल के नीचे की नहर में संध्या के रंगों के साथ होने वाले परिवर्तन, उस पार की पहाड़ी के ऊपर

के गिर्जाघर का काला क्रास, इस प्रकार के असंख्य दृश्य मानो उसे इंगित करते थे, आकर्षित करते थे, मन्त्रमुग्ध करते थे। संध्या समय की छाया बढ़ने लगती और जब नारियल के पेड़ों में से कोंकणी विरह-गीतों का आर्त स्वर सुनाई देता, झींगुरों अथवा अन्य कीड़ों की तालबद्ध आवाज सुनाई देती और नमकीन मछली की गंध वातावरण में फैल जाती तब विचारों के बोझ से दबा हुआ हृषी, भारी पैरों से घर लौटता। मार्ग में अनजान में कुछ पंक्तियां उसके मस्तिष्क में गूंजती रहती थीं और फिर अपने ऊपर के कमरे में जाकर वह कविता लिखने बैठ जाता था।

कविता लिख लेने पर वह घंटों उसे गुनगुनाया करता था। उसमें एक-दो शब्द का हेरफेर करता। कभी पहले वाले शब्द को काट कर नया शब्द जोड़ता और उससे जो रसवृद्धि होती उसमें मस्त होकर उसे फिर से गाने लगता। यह कहने के बजाय कि वह कविता की रचना करता था, यह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा कि उसकी कवित्व-शक्ति प्रकट होने के लिए कभी उससे आंख-मिचौनी करती थी, कभी उसके वश में हो जाती थी तो कभी रूठ जाती थी, कभी परेशान करती थी, कभी पुचकारती थी और अनेक प्रकार से रसों की लीला के दर्शन कराती थी।

जब कविता पूरी हो जाती तो उसे ऐसा लगता, मानो उसे किसी को दिखाना चाहिए और उसके संबंध में खूब बातचीत करनी चाहिए। एक-दो बार उसने कविता केशव को भेजी और उसे जी भरकर पत्र लिखे; लेकिन केशव के उत्तर से उसका समाधान नहीं हुआ। वृत्त, व्याकरण, तात्विक सिद्धांत, नैतिक मूल्य जैसी व्यर्थ की बातों को महत्त्व देकर केशव ने जो चर्चा की थी उसने उसके उत्साह को भंग कर दिया और कभी भाव और भूमिका न समझकर उसने जो औपचारिक प्रोत्साहन दिया उससे उसे चिढ़ हो गई। ऐसा होने पर उसे शेवन्ती की बड़ी याद आती थी और कितनी ही रात तक उसकी याद करके वह जगता रहता था।

एक दिन उसे अपनी यह वृत्ति बहुत तीव्र प्रतीत हुई। उस दिन

उसने तीन कविताएं लिखीं। तीनों में तीन भाव, तीन छंद, तीन विषय थे। उसे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे उसने कोई लोकोत्तर कृति की रचना की है ।

" 'फोन्डा' जाकर मैं अपने मित्र से मिल आता हूं।" ऐसा कहकर हृषी दोपहर का भोजन करके थोड़ी ही देर बाद साईकल पर चल पड़ा । सीने की मशीन लेकर शेवन्ती चबूतरे पर कपड़े सी रही थी। उस ओर घर की मरम्मत का बचा हुआ काम कारीगर कर रहे थे। कहां क्या करना चाहिए, यह फूलवन्ती उन्हें समझा रही थी ।

"काम समाप्त हो रहा है न ?" साईकल दीवार के सहारे रखते हुए हृषी ने फूलवन्ती से पूछा।

"कुछ जगहों पर अभी चूना लगाना बाक़ी है। उतना हो जाने पर फिर एक बार रंग करवाना है। वर्षा आने के पहले घर पर छप्पर पड़ गया। अब ये काम धीरे-धीरे हो जायंगे।" एक बड़ी चिन्ता दूर होने का भाव दिखाते हुए फूलवन्ती ने कहा।

"ऐसा लगता है, आप देवी को प्रणाम करने के लिए आये हैं।" हृषी को संबोधन करके शेवन्ती ने कहा। उसके चेहरे पर खिन्नता-भरी हँसी दिखाई दे रही थी ।

"मैं कोई बूढ़ा या निराश व्यक्ति तो हूं नहीं, न ऐसा पागल जो यह मानता है कि घर बैठे किया हुआ प्रणाम देवी के पास नहीं पहुंचता। क्या है तुम्हारी कल्पना ?" चबूतरे के ऊपर के पत्थर के ओटले पर बैठते हुए कुछ मजाक के स्वर में हृषी ने पूछा ।

"मैंने यह निश्चय किया है कि मनुष्य के बारे में कोई कल्पना नहीं करनी चाहिए । जो सामने आये उससे अनुभव प्राप्त करना और संसार का तथा पूव संचित संस्कार का प्रभाव देखना । यदि देवदर्शन के लिए नहीं तो फिर किस काम के लिए और कहां आए हैं ? "

"परसों ही डाक्टरी जांच हुई है। नियुक्ति होने में अभी एक-दो सप्ताह की देर है। अभी तो मौज उड़ान के अलावा और कोई काम ही नहीं है ।"

"तो फिर यहां आने का और क्या कारण है ?"

"क्यों, मैं केवल तुमसे मिलने के लिए नहीं आ सकता ?"

"जिस दुनिया में हम रहते है उसमें हम कैसे इस बात को मान सकते हैं ? इतने दिनों में कमलीताई, केशवबाबा, या आपकी ओर से कभी दो लाइनें भी लिखी नही मिलीं। हम तो देवदासी हैं न ? बत्ती साफ करना और झाड़ू लगाना, यही है न हमारा काम ? सबकुछ साफ करना, खूब प्रकाश करना और गंदे कपड़े या झाड़ू जैसा मन लेकर कहीं किसी कोने में अपना मुंह काला करना, यही हमारे भाग्य में बदा है। एक ही दिन सही, पर झाड़ू की भी तो दिवाली के दिन लक्ष्मी कह कर रोली लगा कर पूजा की जाती है। लेकिन हमारे लिए तो समाज इतना भी करने को तैयार नहीं है।"

"शेवन्ती, अपना समाज अत्यंत दंभी और निर्दयी है और हम सब लोग मतलबी और कायर है। यदि हमारी यह उपेक्षा तुम्हें चोट पहुँचाती है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। केशव-कमली की बात मुझे मालूम नहीं है। मुझे हमेशा ऐसा लगता रहता था कि तुम्हारे पास आऊँ और तुम्हें पत्र लिखूं। लेकिन बाबा बीमार हैं। वे कट्टर सनातनी हैं। जब आज अपने को नहीं रोक सका तो बहाना बना कर चला आया। केशव और कमली के भी न लिखने का कोई कारण होगा।"

"आज जो कायर और स्वार्थी है, वे ही कल समाज को दंभी और निर्दयी बनायंगे न। तो क्या युगों तक ऐसा ही चलता रहेगा ? आज आप झूठ बोलकर यहां आये, इससे मुझे कैसे संतोष हो सकता है और आपको भी इससे क्या लाभ हो सकता है ?"

"शेवन्ती, आते समय मैं कितने उत्साह से आया और अब मेरा उत्साह न जाने कहां चला गया ?"

हृषी का म्लान चेहरा देखकर शेवन्ती को उसपर दया आ गई। वह हँसकर बोली—"दो शब्दों से ही आपका उत्साह ठंडा हो जाता है। यह कुछ ठीक नहीं है। आपके भरोसे ही तो केशवबाबा समाज को धक्का देकर

आगे बढ़ाने वाले हैं।"

"उसने ऐसा कहा था क्या ?" उत्तेजित होकर हृषी ने पूछा।

"उनका विश्वास है कि आप कोई बड़ा काम करेंगे। तो फिर छोटे-छोटे कारणों से उत्साह खोकर कैसे काम चलेगा ? यहां से जाने के बाद आपने कौन-सी बड़ी बात की है, बताइये न ?"

"वही तो तुम्हें दिखाने आया हूँ। अन्दर चलो।" ऐसा कहते हुए वह उसका हाथ पकड़ कर प्रसन्न मुद्रा से उसे खींचते हुए अन्दर ले गया।

हृषी की यह वृत्ति देख कर क्षण भर के लिए शेवन्ती चौंकी, लेकिन उसने कोई विरोध नहीं किया।

"आज मैंने ये तीन कविताएँ लिखी हैं।" पलंग पर बैठते हुए और जेब में से कागज निकालते हुए उसने कहा।

उसने वे तीनों कविताएँ गाकर सुनाईं। उनकी प्रेरणा उसे कैसे मिली, उनमे किस प्रकार अपने आप परिवर्त्तन हो गया, जिससे उनकी शोभा बढ़ गई और किसी विशेष शब्द को किसी विशेष स्थान पर रखकर उसने कौन सी ध्वनि सूचित की है, यह सब वह तन्मय होकर बताने लगा। उन शब्दों को शेवन्ती ठीक तरह देख सके, इस उद्देश्य से उसने उसे हाथ पकड़ कर अपने पास बैठाया और अन्त में बड़े गर्व से उसने पूछा—"यह कविता सुनकर तुम्हें कैसा लगा ?"

"ऐसा लगा कि जब तुम कविता बनाओ, तब मुझे तुम्हारे पास रहना चाहिए। तुम्हारे मुंह से जैसे ही शब्द निकले, वैसे ही मुझे उसे लिख लेना चाहिए। उसमें आप जैसा परिवर्त्तन करें, वैसा मैं भी कर लूं। पूरी होने पर सुन्दर कागज पर सुन्दर अक्षरों में उसकी नकल कर लूं। उसे संगीत की राग में बिठाऊँ और समय-असमय को भूलकर उसे सितार पर गाकर तुम्हें सुना दूं। बोलो, ठीक समझा ?" प्यार से उसने उत्तर दिया। जब उसके हाथों लगाई हुई केल में पहला फूल लगा था, तब भी उसे इतना ही आनन्द हुआ था।

"तो फिर इसे गाकर दिखाओ न ?"

शेवन्ती ने सितार निकाला, तारों को ठीक किया और एक-एक कविता लेकर उसके मूल राग में अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए नए स्वर जोड़ कर गाने लगी।

कविता सुनते हुए हृषी को ऐसा लगा कि उसमें इतना रस था यह वह स्वयं नहीं जानता था। उसे प्रतीत हुआ कि कविता के रस में शेवन्ती डूब रही है और उसमें इतना लावण्य उमड़ रहा है, जितना उसने पहले कभी नहीं देखा था। प्रतिमा के उत्सव की रात वह जिस प्रकार मूर्च्छित पड़ी थी वैसी कहीं आज भी न हो जाय, ऐसा उसे लगने लगा। उसे अनुभव हुआ कि अपने और उसके बीच कोई ऐसा अक्षय नाता पैदा हो गया है, जिसमें सारे नातों की परिणति हो जाती है।"

जब कविता का गाना समाप्त हुआ तब सूर्य डूब चुका था। बाहर काम करने वाले कारीगर चले गये थे। शेवन्ती ने सितार एक ओर रख दिया। उसकी भावनाएं थक गई थीं। पसीने से ललाट का कुंकुम भीग कर निकल गया था। खिड़की में से चेहरे पर पड़ने वाले संध्या के प्रकाश की झाईं के कारण शेवन्ती का शांत लावण्य अधिक निखरा हुआ दिखाई देता था। देखते-देखते हृषी का मन माधुर्य से भर उठा। अपने को भूल कर उसने उसे अपने बायें हाथ पर सुला लिया और पागल की तरह बार-बार उसका मुंह चूमने लगा। आवेग कम होने पर वह होश में आया और उसने उसकी ओर देखा। उसका मुंह उतर गया था। वह विषाद में डूब गई थी।

"शेवन्ती, सबकुछ देकर भी तुमने मुझे अतृप्त ही रखा। तुम्हारी कल्पना करके कभी-कभी मेरी अस्वस्थता गहरी हो जाती है और फिर विचार आता है कि यदि मैं पागल ही रहता तो कैसा अच्छा होता। मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ और तुम इससे कितनी दु:खी होती हो।"

"सब मेरा यह शरीर चाहते हैं। वे इसीपर प्रेम करते हैं। मुझसे प्रेम नहीं करते। इसीसे मुझे दु:ख होता है। मुझे अपने शरीर का लोभ नहीं रहा है। कपड़े की तरह यदि किसी की जीवनरूपी बत्ती की सफाई में उसका उपयोग हो सका तो इसीमें उसकी सार्थकता है। इसलिए मैंने तुम्हें उसे दे दिया।

अब उसका उपयोग तुम्हारी जीवन-ज्योति को मन्द बनाने में न हो। बिना प्रेम के शारीरिक भोग किसी का भी उद्धार नहीं करता।"

"मैं भी तो शरीर पर ही प्रेम करता हूँ।" खिन्न होकर हृषी ने कहा।

"नहीं जी, तुम तो पागल हो।" उसका सिर पास लेकर और उसके घुंघराले बालों में अपनी कोमल उंगलियां फिराते हुए उसने कहा। "मेरे सान्निध्य से तुम कविता पर प्रेम करते हो। इसीलिए तुमने अभी मुझे प्यार किया है। उससे मुझे विषाद अवश्य हुआ, लेकिन अपमान नहीं मालूम हुआ।"

"शेवन्ती, मैं तुम्हें प्यार करता हूं, यह बात मैं तुम्हें कैसे बताऊं?" उसके स्वर में करुणा थी और नेत्रों में आंसू।

"अभी तुम अपनेको नहीं पहचानते। मैं तुम्हें पहचानती हूं। प्रेम मनुष्य को निडर बनाता है, निःस्वार्थ बनाता है। प्रेम के राज्य में कायरता और स्वार्थ रह नहीं सकते।"

"मैं घर झूठ बोलकर आया, इससे तुम्हें गुस्सा आया न?" क्षमा-याचना के स्वर में हृषी ने पूछा।

"हृषी, तुम निरे बालक हो। मुझे तुम्हारे ऊपर गुस्सा नहीं आता, उल्टे तुम मुझे बहुत प्रिय लगते हो। तुम बड़े आदमी होगे और इसलिए तुम्हें अपनेको पहचानना चाहिए। इसीसे मैंने तुमसे सत्य बात कह दी। स्त्रियां तुम्हें प्रेम करेंगी, लेकिन तुम्हारा प्रेम केवल कविता पर ही रहेगा। जब तुम्हें ऐसा लगे कि तुम किसी खास स्त्री को प्रेम करते हो तो खुशी से उसका सुख प्राप्त करना, लेकिन यह बात ध्यान में रखना कि वह भ्रम है।"

उस रात को हृषी का मन शेवन्ती के स्पर्श से प्राप्त सुख का सिंहावलोकन नहीं कर रहा था, बल्कि शेवन्ती के व्यक्तित्व का जो नवीन दर्शन उसे हुआ था उसे पूरी तरह समझ लेने का प्रयत्न कर रहा था। अपनी पूरी कल्पना का जोर लगाकर वह खोज कर रहा था कि शेवन्ती को यह दृष्टि और यह शक्ति कैसे प्राप्त हुई। उसे झाड़ू की उपमा, जिसका प्रयोग शेवन्ती ने किया था, काव्यमय दिखाई दी और उसके अन्दर की सारी

वेदना उसकी कल्पना-शक्ति के सामने स्पष्ट रूप से खड़ी हो गई। हमारे समाज में सेवा की जो उपेक्षा, जो अवहेलना हो रही है, उसके कारण ही हमारी सब संस्थाएं भ्रष्ट हो गई हैं, यह बात उसने गहराई से अनुभव की। रात काफी हो गई थी और उसकी आंखों और मन पर निद्रा का अधिकार छा रहा था। फिर भी उसके अंतर में जैसे कोई कह रहा था—

झाडावया मनोमळ । दारीं लक्ष्मीही आली
चल सौभाग्याचा टिळा। लावूं सेवेच्या ग भाळीं ।*

अपने शरीर पर पड़ी हुई चादर और आंखों की नींद झटक कर हृषी खड़ा हो गया। उसने मेज के ऊपर की बत्ती जलाई और जल्दी-जल्दी लिखने लगा। आज उसमें नवीन जागृति आ गई थी।

: १९ :

अब हृषी घर के पुराने काव्य ग्रन्थ और फ्रेंच, पुर्तगाली एवं मराठी कविताओं के आधुनिक संग्रह पढ़ने लगा। उनके विषय, कल्पना और रचना की विविधता एवं वैचित्र्य उसको अधिकाधिक आकर्षित करता गया। उसमें से किसी सुन्दर कविता का ऐसा प्रभाव होता कि वह मन्त्रमुग्ध हो जाता और मुखाग्र करके उसे दिन भर गुनगुनाता रहता। सन्ध्या समय पहाड़ी की चोटी पर, नदी के किनारे पर अथवा बांसों के झुरमुट में बैठकर वह सामने के प्राकृतिक दृश्य को देखते हुए अपने पास के कविता-संग्रह की कविताएं गाता रहता और किसी एकाध कविता की कल्पना में विभोर होकर खो जाता। फिर अपने सामने रखे हुए कविता-संग्रह को भूलकर वह मन-ही-मन कुछ गुनगुनाता रहता। इस प्रकार की तन्द्रा में एक दिन जब वह मस्त हो रहा था, तब एक कोंकणी गीत उसे सुनाई दिया। उसकी तन्द्रा टूट गई। नारियल के पेड़ के पत्तों के पास संभलकर बैठा हुआ नीरा का मटका भरते हुए एक

*** मन का मैल झाड़ने को अब लक्ष्मी ही आई है द्वार।**
चल सेवा के शुभ्र थाल का, सुभग तिलक से कर शृंगार।

किसान गा रहा था—

कुणबी वोर्तोतांव गांवकार आमी गोंयचे
तोरीं आसतांना भाटकार दिताय फोडके
भाकरा ! तांदूड तूवें भोरून दोऽयात कोडे
मागोतां जाय ना जायच्याक ते कुडे ॥*

उन पंक्तियों का भावार्थ ध्यान में आते ही हृषी की तन्द्रा ऐसे दूर हो गई, मानो उसे कोड़ा लगा हो। जब वह ग्रामीण बरतन लेकर नीचे उतरा तब उसने उसे बुलाया और उसके गीत की प्रशंसा करके उसे पूरा सुना। आगे की पंक्तियां थीं :

"कुणबी वोर्तोतांव उशार आमी आवरा
गिरेस्त जांवक पावले भाटकार आमच्या खुस्तार
भाटकार जेवतात मुठी मारून पोटार
कुणबी आमी सोदांव उल्ले नोणार ।"†

अपने वर्ग की श्रम-शक्ति पर अभिमान, शोषक जमींदारवर्ग का जो कि बिना काम किये मौज से रहता है, उपहास और अपने अज्ञानी रहने की पीड़ा, इन सबकी व्यथा हृषी को तीव्रता से अनुभव हुई और उसे ऐसा लगा कि जिन लोगों का पीढ़ियों से शोषण करके हम लोग मौज कर रहे हैं उनके प्रतिनिधि के सामने वह एक अपराधी के रूप में खड़ा है। उसका उदास चेहरा देखकर उस ग्रामीण ने पूछा—

"क्यों जमीदारसाहब, क्या नाराज हो गए ?"

---

* हम कुनबी गोआ के ग्रामीण हैं। फिर भी ये जमींदार लोग हमें पीटते हैं। अरे जमींदार, हमारे द्वारा पैदा किये हुए अनाज से तूने कोठे भर रखे हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि उसमें घुन न लग जाय।"

† हम कुनबी लोग काम में होशियार हैं। इसीलिए हमारे बल पर जमींदार धनवान बन सके हैं। वे लोग पेट में ठूंस-ठूंस कर खाना खाते हैं और हम कुनबी लोग हमेशा के लिए अज्ञानी ही रह गये।

"इसमें नाराज़ होने की क्या बात है, भाई। कवि की बात सोलहों आना ठीक है। यह गीत किसने बनाया है?"

"कुणबी कवि ने। मैंने उसे देखा नहीं है। लोगों से यह गीत सुना है। उसके और भी कुछ गीत मुझे याद हैं।"

"मुझे तुम्हारा यह गीत बड़ा पसन्द आया है। इसे लिख लेने के लिए मैं तुम्हारे यहां आऊंगा।"

हृषी ने ऐसे बहुत-से गीत एकत्र किये। उन्हें पढ़ते-पढ़ते उसे विचार आया कि इन निरक्षर लोगों में इतने महत्त्वपूर्ण गीत कैसे आ गये? हमारी इस रसपूर्ण भाषा के प्रति मध्यम वर्ग के लोगों की ऐसी उपेक्षा क्यों है? साधारण जनता और हमारे बीच इतनी बड़ी खाई किसने पैदा की है? उसे मिटाने का क्या उपाय है? उसे लगा कि यदि वह भी ऐसे कोंकणी लोकगीत लिखने लगे तो क्या कहना! वह किसानों, मजदूरों, देवदासियों, कारीगरों और ग्रामीण लोगों से मिलने-जुलने लगा और उनसे तर्ज लेकर उसी तर्ज में कोंकणी गीत रचने लगा।

इन स्वरचित गीतों को शेवन्ती को दिखाने के लिए वह बार-बार उसके घर जाने लगा और कितने ही घंटे उसके यहां बिताने लगा।

शेवन्ती के घर से लौटते हुए आज उसे आठ बज गये थे। वह हाथ-मुंह धोकर मंदिर में आया। वहां रवलूदादा अस्वस्थ मन से चक्कर लगा रहे थे। अब वे इस हालत में थे कि थोड़ा-बहुत चल-फिर सकें। हृषी को ऐसा लगा कि रवलूदादा इतनी देर से आने का कारण पूछेंगे। वह विचार करने लगा कि उससे यदि यह प्रश्न पूछा जायगा तो वह उसका क्या उत्तर देगा। उसने निश्चय कर लिया था कि कुछ भी हो, वह झूठ नहीं बोलेगा। भगवान् को प्रणाम करते समय उसने भगवान् से सत्य कह देने की शक्ति मांगी। वह शक्ति उसमें अपने आप आ गई।

"कल के गजट में प्रकाशित हुआ है कि तेरी नियुक्ति हो गई है। क्या यह सच है?" रवलूदादा ने पूछा।

"जी हां।"

"तो काम कब से शुरू कर रहे हो ?"

"दस-पाँच दिन में ही।"

इससे पहले घर में सत्यनारायण की कथा करनी है। अपने सारे संबंधियों को बलाना है। इसलिए पुर्तगाल के स्वामी के पास जाकर दो दिन में प्रायश्चित्त कर आ।"

"प्रायश्चित्त किस बात के लिए ?"

"देवदासी से भोजनादि और अन्य व्यवहार रखने के लिए। बिना प्रायश्चित्त किये शालिगराम की पूजा और अभिषेक कैसे हो सकेगा ?"

"लेकिन आज ही यह प्रायश्चित्त का प्रश्न क्यों खड़ा हुआ ?"

"स्वामीजी ने खबर भेजी है।"

"उनसे किसने शिकायत की ?"

"इसमें शिकायत की क्या बात है ? कुलाचार की पवित्रता की रक्षा के लिए मैंने ही सारी बात स्वामीजी से कही और उनका अभिप्राय मालूम किया।"

"लेकिन प्रायश्चित्त करनेवाले के मन में यह अनुभव होना चाहिए न कि उसने पाप किया है ?"

"जब धर्म के प्रति ग्लानि होती है तो पाप की अनुभूति नहीं होती है। यही तो तुम्हारी इस पीढ़ी का दुर्भाग्य है।"

"ऐसा प्रायश्चित्त करने से अपने ऊपर उपकार करने वाले का अपमान करने जैसा नहीं होता ? यह क्या धर्म है ?"

"देखो हृषी, किसी विशेष परिस्थिति में शराब यदि तारक भी बन जाय तो उसे तीर्थ-जल की पदवी नहीं दी जा सकती। यदि भ्रष्टाचार करके शालिगराम की पूजा की तो ईश्वरीय कोप होता है और कुल का क्षय हो जाता है।"

"तो फिर मैं पूजा नहीं करूंगा, तब तो कोई हर्ज नहीं है ?"

"ऐसा करने से कैसे चलेगा ? अभी विसूमामा आये थे। आगामी श्रावण में विवाह कर देना है। उसके पहले प्रायश्चित्त भी करना ही होगा।

अब तू और कितने दिनों तक भोजनालय में भोजन करता रहेगा ?"

खलूदादा ने अंतिम प्रश्न इस ढंग से पूछा कि हृषी चौंक गया। उसे गुस्सा आ गया, लेकिन उत्तर देने का साहस न हुआ। इसके अलावा प्रायश्चित्त और विवाह के ये दोनों प्रश्न उसके सामने अनपेक्षित ढंग से उपस्थित हुए। उनके सम्बन्ध में बिना कुछ कहे वह चुपचाप अन्दर चला गया।

रात को उसे भोजन अच्छा नहीं लगा। 'हां', 'नहीं', 'चाहिए', 'नहीं चाहिए' इन शब्दों के अलावा वह कुछ न बोला। उसकी विचार-धारा तेजी से बह रही थी। कमरे में आकर वह ऐसे ही पुस्तकों को इधर-उधर रखकर मन को काबू में रखने का प्रयत्न करने लगा, लेकिन किसी भी बात में उसका मन नहीं लग रहा था।

घर के लोग सो गये थे। चारों ओर निस्तब्धता व्याप्त थी। इतने में उसके कमरे का दरवाजा खटका। उसने मुड़कर पीछे देखा। रमाअक्का अन्दर आ रही थी।

"तू अभी तक जाग रहा है ?" उसने पूछा।

"मां, आप क्यों आईं ? मुझे बाबा की इच्छा के अनुकूल बनाने के लिए ही न ?"

"तुम दोनों की रस्साकशी देखकर मेरे गले में फांसी लग रही है।"

"तो फिर क्या करूं ? जिसने मुझे मनुष्यता प्रदान की, उसके प्रति कृतज्ञता अनुभव करना तो दूर, उल्टे प्रायश्चित्त करके उसे मिट्टी में मिला दूं।"

"अरे बाबा, मैं उसकी कृतज्ञता मानती हूं। अगर मैं अपने चमड़े के जूते बनाकर भी उसे पहनाऊं तो भी उससे उऋण नहीं हो सकती। इतने दिन से मैं सोच रही थी कि उसके पास कुछ भेंट भेजूं, लेकिन केशव का तो कुछ पता ही नहीं है। तू भी इतनी बार वहां गया, लेकिन तूने भी मुझसे नहीं कहा, नहीं तो तेरे साथ ही भेज देती।"

"मैं कितनी बार गया ?"

"मुझे क्या मालूम ? उन्होंने ही मुझसे आज कहा। मुझे विश्वास नहीं हुआ। तब उन्होने मुझे डांटा और कहा कि वहां जो मजदूर मकान की मरम्मत कर रहे थे, उनको बुलाकर पूछ। यह मजदूरों की आंखों-देखी बात है।"

"मैं भी उसे झूठ कहां बता रहा हूं। लेकिन इसमें बुराई क्या है ? केशव, कमली, आप सब उसको भूल गये। किसी ने उससे पूछताछ नहीं की। लेकिन मैं तो उसके उपकार भूल नहीं सकता।"

"उसके प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए, स्नेह रखना चाहिए, लेकिन इसके साथ ही कुलाचार, सामाजिक शिष्टाचार, तथा दूसरे आदमियों के प्रति कर्तव्य आदि पर भी तो ध्यान देना चाहिए। सभी को संभाल कर गृहस्थी की यह गाड़ी चलानी चाहिए।"

"मां, मैं इस प्रकार के दंभ को बढ़ावा नहीं दे सकता। कुछ भी हो, मैं प्रायश्चित्त बिल्कुल नहीं करूंगा।"

"मुझे तो बाबा, तुम पुरुषों की धर्म-कर्म की बातें समझ ही नहीं पड़तीं। मैं तो इतना जानती हूं कि मुझे तुम दोनों को संभालना चाहिए। तेरे ठीक हो जाने से हमारी टूटी हुई कमर अब सीधी होने लगी है। तू तो इनके जिद्दी स्वभाव को पहचानता है। उसमें भी वे अभी बीमारी से उठे हैं। अगर तूने जिद्द की और उनको स्वामीजी के सामने झूठा बनाया तो वे अपने प्राणों को संकट में डाल देंगे। मैं अब बिलकुल थक गई हूं।" यह कहते-कहते रमाअक्का की आंखों में पानी भर आया।

"और यह विवाह का क्या मामला है ? विवाह किसने तय किया ? किससे पूछ कर ?"

"यह क्या अभी तय की हुई बात है ? तुझे तो सबकुछ मालूम ही है। अगर यह बाधा न आई होती तो क्या अभीतक विवाह हो न जाता ?"

"लेकिन इस बाधा के कारण बहुत-सी ऐसी बातें, जो पहले मालूम नहीं थीं, अब मालूम हो गई हैं। जब मैं पागल हुआ, तब विसूमामा कहां गये थे ? उन्होंने क्या प्रयत्न किया ? उस पागलपन का मुकाबला करने के लिए

बेचारी शेवन्ती थी और अब जब सबकुछ ठीक हो गया तो रंजना !"

"लेकिन तेरे विसूमामा की गलती का प्रायश्चित बेचारी रंजना के सिर पर क्यों ? वह तो मुझसे बार-बार कहती रहती थी कि अगर विवाह होने के बाद यह बात होती तो क्या मै उन्हें छोड़ देती ? तो फिर अब यह रुकावट क्यों ?"

"वह ऐसा कहती थी ?"

"सारी लाज-शरम एक ओर रखकर अपने माता-पिता को विवाह के अनुकूल बनाने के लिए वह मुझसे आग्रह कर रही थी। उसको कितनी तकलीफ उठानी पड़ी होगी ?"

"कुछ भी हो मां, अब मेरा पहले जैसा मन नहीं रहा है। शेवन्ती के अतिरिक्त और किसी स्त्री से प्रेम करना मेरे लिए संभव नहीं है और प्रेम न होने पर भी रंजना को पत्नी बनाकर जन्म भर के लिए दुःखी बनाने के बजाय इस विवाह के लिए इन्कार करके उसे कुछ समय के लिए दुःखी करना अधिक अच्छा होगा। मेरी इच्छा नहीं थी कि उसे दुःख दूं, लेकिन जब विधि का विधान ही ऐसा है तो मैं उसमें क्या करूं ?"

"इसका क्या यह मतलब है कि तू शेवन्ती से विवाह करेगा ?" रमाअक्का को ऐसा लगा कि उसके पैर के नीचे की जमीन खिसक रही है और वह धम-से पास वाली कुर्सी पर बैठ गईं।

"हमारी जाति की अच्छी-से-अच्छी लड़की जितनी ही वह भी सुशील है, गुणी है, त्यागी है। उससे विवाह करने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं होगा। मुझे विवाह की आतुरता नहीं है, लेकिन ऐसा लगता है कि जब उसने मुझे मनुष्यता प्रदान की है तो उसे भी मनुष्य बनाने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। समाज देवदासी की जाति चाहता है। वह उससे छिपे-छिपे सम्बन्ध भी रखना चाहता है और ऊपर से उसका तिरस्कार करके अपनी पवित्रता भी दिखाना चाहता है। मां, क्या यह सब आपको अच्छा लगता है ?"

"तेरी बात कितनी ही सही क्यों न हो, लेकिन इस प्रकार की बात से वह तो मनुष्य नहीं बन सकेगी, तुम दोनों ही मनुष्यता खो बैठोगे और हम

सब भी मनुष्यता खो बैठेंगे। कुछ भी कर, लेकिन ऐसा मत कर। तेरे पिता सचमुच आग में कूद पड़ेंगे। अगर ऐसा ही करना है तो मुझे एक जहर की पुड़िया लाकर दे दे।"

"मां, आपको या बाबाको दुःखी करने की मेरी इच्छा नहीं है। इसी प्रकार मुझे अपनी अन्तरात्मा से भी द्रोह नहीं करना है। बाबा की तरह मैं व्रत, उपवास और पूजा-अर्चा नहीं करता हूं, फिर भी मेरा भी कुछ धर्म है। उस मनुष्यता के धर्म को छोड़कर मुझे नहीं चलना है। उसके लिए मुझे जो कष्ट उठाना पड़ेगा, उसे मैं प्रसन्नता से सहन करूंगा। मुझे खास करके घर में झगड़ा पैदा नहीं करना है, लेकिन बाबा से जोर देकर कह देना कि वे मेरे प्रायश्चित्त और विवाह के झगड़े में न पड़ें। अब मैं छोटा-सा बालक नहीं रहा। अपने जीवन में मुझे दूसरों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं है।"

"मैं उनको समझाने की कोशिश करूंगी, लेकिन तू भावना में बहकर दिमाग को गरम मत होने दे। मैं केशव को बुलवा लेती हूं। उसका दिमाग ठंडा है। वह तुझे कोई उलटी सलाह नहीं देगा। तू अपनी जान को परेशानी में मत डाल।" इतना कहकर रमाअक्का ने हृषी की पीठ पर हाथ फेरा और बोली, "अब चुपचाप सो जा।"

उसके इस वात्सल्य से हृषी का गला भर आया। उसकी सारी कठोरता न जाने कब गल गई। वह बोला, "मां, क्या मुझसे नाराज हो गई ?"

"नहीं रे, मैं सबकी बातें समझती हूं, लेकिन इस चक्रव्यूह से बाहर निकलने का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। मैं बेपढ़ी-लिखी ठहरी। तुम बड़ी-बड़ी बातें कहने लगते हो तो मेरी समझ में नहीं आता कि क्या उत्तर दूं। मैं तो ईश्वर पर भरोसा रखती हूं और जैसा मौका आ जाता है उसका मुकाबला करती हूं। मेरे हाथ में और है भी क्या ?"

रमाअक्का के चले जाने पर क्षुब्ध मनःस्थिति में बड़ी देर तक हृषी आगे होनेवाली घटनाओं की कल्पना करता रहा। रवलूदादा के स्वभाव की उसे पूरी-पूरी कल्पना थी। उसे स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि घर और समाज में

भयंकर स्थिति पैदा हुए बिना नहीं रहेगी। कभी रवलूदादा की मृत्यु की, कभी मां की असहायता की, कभी रंजना की निराशा की, तो कभी शेवन्ती के दुर्दिनों की कल्पना करके उसका मन सहानुभूति से व्याकुल हो जाता था और वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि उसे क्या करना चाहिए।

प्रबल भावनाओं के झूले पर बहुत देर तक झूलते-झूलते उसे ग्लानि अनुभव हुई और वह छोटे बच्चे की तरह असहाय होकर रोने लगा। वह जी भरकर रोया, तब कहीं उसका मन हलका हुआ। उसका निश्चय हो गया। चित्त शांत हो गया और थोड़ी ही देर में वह गहरी नींद में सो गया।

: २० :

केशव की सारी बातचीत चुपचाप सुन लेने के बाद रवलूदादा ने जल्दी-जल्दी कमरे में चक्कर लगाते हुए उससे कहा :

"मेरा कहना सच निकला। देखो. जैसा मैंने क़हा था,वैसा ही हो गया। जिसे तुमने ओषधि के रूप में बताया था वही अब विष बन गया है। 'उसका मन बिगड़ जायगा,' 'उसका सिर फिर जायगा' इस प्रकार का भय अब बहुत हो चुका। कहते हो, 'पागल हो जायगा।' यह क्या है? अब यह कहने का समय आ गया है कि इससे तो वह पहलेवाला पागलपन ही अच्छा था। उस पागलपन से एक ही आदमी का बुरा हो रहा था, इससे तो सारे वंश का सत्यानाश होने जा रहा है।"

"रवलूदादा, थोड़ा धीरज रखोगे तो सब ठीक हो जायगा।"

"मुझे इस तरह की झूठी आशा मत दिलाओ। अब प्रायश्चित्त की विधि को अधिक टालना असंभव है। वह धर्म-द्रोह होगा। इसके अलावा बात इतनी आगे बढ़ गई है कि अब उसका अर्थ यह होगा कि हम जान-बूझकर धर्मपीठ की अवज्ञा करने जा रहे हैं। पुत्र के लोभ से मैं धर्मद्रोह और गुरुद्रोह नहीं करूंगा। धर्मराज की भांति मैं भी क्षण भर के लिए भ्रम में पड़ गया था और मैंने तुम्हारे कथन का विरोध नहीं किया था। धर्मराज का तो पुण्य

बहुत बड़ा था। उनकी भूल से उनका रथ नीचे धस गया; लेकिन मेरी भूल से तो सारी गृहस्थी का रथ ही खण्ड-खण्ड होने जा रहा है।"

ऐसा कहते-कहते उनके नथने फूल गये और वे लम्बी सांस लेने लगे। दमे से पीड़ित व्यक्ति की तरह वे लगातार हांफ रहे थे।

"रवलूदादा, उस समय हृषी ने अपनी बुद्धि का सन्तुलन खो दिया था और अब आपके मन का सन्तुलन बिगड़ रहा है।"

"तुम्हारा कहना ठीक है। वास्तव में मुझे पागल ही बनना चाहिए था। अगर स्वामीजी बहिष्कार की घोषणा कर देते हैं तो कामत के वंश की क्या प्रतिष्ठा रहेगी ? ऐसी मान-हानि के बजाय विष खा लेना क्या बुरा है ? बहिष्कार के कारण शादी भी रुक जायगी। जब से वह लड़की सयानी हुई तब से उसने इसे ही पति माना है। क्या उसका जीवन धूल में नहीं मिल जायगा ? लोग कहते हैं कि हृषी बहुत पढ़ा-लिखा है। लिसेव में जाकर क्या नई पीढी को ये ही बातें पढ़ायगा ? राक्षसों की विद्या पूतना के दूध की ही तरह होगी। इसके अलावा क्या यह सिखायगा कि जो-जो फिरंगियों का है वह सब अच्छा है ? धर्म को न मानना, गुरुपीठ को न मानना, कुल-परंपरा, समाज-नीति, बड़े-बूढ़ों का आदर, ये सब ताक में रखकर मनमानी करना, यही है शिक्षा ! अपने स्वयं के विचार, अपना स्वयं का ध्येय, अपनी स्वयं की भावना, आठों पहर केवल अपनी ही पूजा ! कह दो कि ऐसी सारी विद्या में आग लगा दे। वह कविता लिख रहा है ! कविता ! कहना कि कविता लिखने के पहले 'ज्ञानेश्वर' और 'एकनाथ' के चरित्रों का मनन करे।"

केशव ने रवलूदादा को बोलने में रोका नहीं। उसने निश्चय किया कि अब इसीमें समझदारी है कि उनको जी भर कर अपनी बात कह लेने दी जाय, ताकि उनके मन का बोझ उतर जाय। उनके और थोड़ा बोल लेने के बाद केशव उठा और बोला, "मैं अब जाऊं ?"

"ठहर, इस तरह गुस्सा होकर मत जा। मैं भी यह बात जानता हूं कि हृषी अपने सम्बन्ध में स्वतन्त्र है। कड़ाई से धर्माचरण नहीं कराया जा

सकता। उससे कोई लाभ भी नहीं है, यह बात भी मैं जानता हूं । उसे समझाकर देख और यदि वह अपनी ही जिद् कायम रखना चाहता हो तो उससे कह देना कि मैं स्वामीजी से क्षमा मांग लूंगा। घर के शालिगराम उन्हें दे दूंगा और स्वयं काशी-यात्रा के लिए रवाना हो जाऊंगा। मेरे बाद उसे जो भी गड़बड़-घुटाला करना हो, करे। लेकिन घर के शालिगराम की दुर्दशा नहीं होनी चाहिए।"

"ठीक है। मै देखूंगा कि यह बात उसे कैसे और कब कहनी चाहिए। लेकिन खलूदादा, मेरी आपसे इतनी ही अन्तिम प्रार्थना है कि आप थोड़ी देर रुकिये।"

"यदि तुम कहते हो तो मैं तुम्हारे लिए पंद्रह दिन की अवधि देता हूं।"

हृषी को यह मालूम था कि केशव और खलूदादा की एकान्त में बहुत देर तक बात हुई है। लेकिन जब केशव रात के समय हृषी के कमरे में आया तो उसने उस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं पूछा, उल्टे इस दृष्टि से कि वह इस प्रश्न को उठाये ही नहीं, दूसरी-दूसरी बातें छेड़ता रहा। उसने उसे उस किसान के मुंह से सुनी हुई कविता सुनाई और कहा—"हमारे ब्राह्मणों के बराबर दंभी समाज और कोई नहीं है। सत्य और धर्म का नाटक करके सारी जातियों के शोषण का काम हम अनेक पीढ़ियों से करते आ रहे हैं। इसलिए सारी जातियां हमें सांप जैसा समझती हैं। इस कविता का आशय देखिये, इसकी भावना देखिये। यह निरक्षर ग्रामीण के द्वारा रचित गीत है। वह कहता है, 'हम इस गोआ के असली मालिक हैं। हम परिश्रम करके अन्न पैदा करते हैं, लेकिन इन जमींदारों के कोड़े खाते हैं, भूखे रहते हैं और हमेशा के लिए अज्ञानाधंकार में घुट रहे हैं।' जब उसकी यह अनुभूति, यह वेदना सारे कुलीन समाज में फैलेगी उस समय हम दंभी और दूसरों की कमाई खानेवाले ब्राह्मणों की क्या स्थिति होगी ? तुम्हारा क्या अनुमान है ?"

"जो होना चाहिए, वही होगा। यदि समझदार हुए तो समय रहते समझ जायंगे और तुम्हारी और मेरी तरह उनके साथ एकरूप हो जायंगे।

लेकिन जो नहीं समझेंगे उनके लिए रोने से कोई लाभ नहीं। यदि तुम्हारी सचमुच यह इच्छा हो कि वे उनसे समरस हों और उनका सर्वनाश टल जाय तथा उनसे देश को लाभ हो तो तुम्हें अपने गुस्से को कार्यरूप में परिणत करना चाहिए।"

"यदि तुम्हारी ऐसी कोई योजना हो तो बताओ। मै पूरे दिल से तुम्हें जितनी आवश्यक हो उतनी मदद करने के लिए तैयार हूं।"

"तो फिर समाज के निचले स्तर के लोगों की निरक्षरता दूर करने के काम में हमें सबसे पहले जुट जाना चाहिए। उन्हें साक्षरता के साथ ज्ञान और संस्कार भी देना चाहिए। उनमें अपने अधिकारों के प्रति जाग्रति पैदा करनी चाहिए। उन्हें अधिकार के साथ कर्त्तव्य भी बताने चाहिए। संघ-शक्ति का महत्व समझाना चाहिए। इन बातों में तुम बड़ा भारी काम कर सको। तुमको नया अध्यापन-शास्त्र मालूम है। तुम्हारी बातों में मधुरता है, भाषा पर प्रभुत्व है। अतः गरीब लोगों के बच्चों के लिए कोंकणी भाषा में सुन्दर प्राथमिक पुस्तकें लिखो। लोककथा, लोकगीत जैसे बिखरे हुए साहित्य का मूलधन जमा करो और उसपर अपनी प्रतिभा की कलम चलाकर नवीन ज्ञान की गंगा दीन-दुखियों के लिए प्रवाहित करो। इसमें पूरी तरह मग्न होने के लिए अपनी भावनाओं का कूड़ा-कचरा झटककर फेंक दो। प्राथमिक शालाओं के इन्सपेक्टर मेरे मित्र हैं। उन्हें ऐसी बातों की बड़ी धुन है। वे स्वयं बड़े उत्साही और परिश्रमी हैं। मैं उनसे तुम्हारा परिचय करा दूंगा। वे तुम्हें सब प्रकार की सहायता देंगे।"

"इस प्रकार के विचार आजकल मेरे भी दिमाग़ में घूम रहे हैं। मेरे पत्रों में भी तुम्हें ये दिखाई दिये होंगे। लेकिन इस घर में सौगन्ध खाने को भी शान्ति नहीं मिलती। धर्म-कर्म के सारे भूत इस घर में दिन-रात ऊधम मचाते रहते हैं। वे कुछ करने दें तब न? घर में इतने लोग हैं, लेकिन साहित्य से तो जैसे इनकी दुश्मनी है। इतने वर्षों से ये सब किताबें कपड़ों में मुंह छिपाकर इनके नाम पर रो रही थीं। उनको पढ़ने वाला मिला तो मैं। यदि मैं नवीन कविता लिखूं तो प्रश्न होता है कि इस इतने बड़े घर में किसे पढ़कर सुनाऊं?

शेवन्ती को दिखाने गया। उसपर कितना तूफान उठाया गया। अब प्रायश्चित का नया प्रकरण उठाया गया है। देख लिया है न तुमने ? मशाल दिखा कर पहले दुरात्मा को घर में लाना और जब वह खाने के लिए उठे तो आकाश-पाताल एक करने लगना ! है न मज़े की बात ?"

वस्तुत: जिस प्रश्न का केशव के द्वारा छेड़ा जाना हृषी पसन्द नहीं करता था, उसी प्रश्न को अब वह स्वयं छेड़ बैठा। मन-ही-मन टीस को ज्यादा देर तक दबाये रखना उसके स्वभाव के बाहर की बात थी। केशव यह बात जानता था। केशव को पूरा विश्वास था कि इच्छा न होने पर भी हृषी स्वयं उस प्रश्न को छेड़ेगा। ठीक वही बात देखकर केशव को हँसी आ गई।

"क्यों, हँसे क्यों ?"

"योंही।" हँसते हुए और स्नेह से उसकी ओर देखते हुए केशव ने कहा।

"तुम्हारी यह हँसी योंही नहीं है। उसका अर्थ अवश्य है। मैं जानता हूं।"

"सच कहूं ? मुझे एकदम बचपन की याद आ गई। तुम जैसे बचपन में थे बिलकुल वैसे ही अब भी हो। मेरी तरह रमाअक्का को भी यह मालूम है। रवलूदादा को ही ऐसा लगता है कि तुम बड़े हो गए हो। इसीलिए सब उलझने सामने आती हैं। लेकिन सुनो, तुमसे एक बात पूछूं—केवल कौतूहल के रूप में ?"

"नि:संकोच पूछो, बड़ी खुशी से।"

"किसी भी धार्मिक संस्कार के बिना किसी स्त्री से किसी भी परिस्थिति में सम्बन्ध रखने के विचार से क्या तुम्हें अपवित्रता अनुभव नहीं होती ?"

केशव ने यह प्रश्न पूछा जरूर, लेकिन वह स्वयं नहीं समझ सका कि उसने क्यों पूछा।

"तुम्हारे विचारों को देखते हुए मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हें मेरा उत्तर आश्चर्यजनक लगेगा। तुम उसे सच भी नहीं मानोगे। लेकिन वह सोलह आने

सही है। जब स्त्री-पुरुष अपने मन से एक-दूसरे को आत्मार्पण कर देते हैं तब अपवित्रता के लिए कोई स्थान ही नहीं रहता। ब्राह्मण देवता के अक्षत डालने पर ही विवाह धर्म्य होता है, अन्यथा नहीं, इसमें मेरा विश्वास नहीं है। इसीलिए तो मैं प्रायश्चित का विरोध कर रहा हूं। जब मैं शेवन्ती के साथ अपने सम्बन्ध का विचार करता हूं तब मेरा मन पवित्रता, कृतज्ञता और संतोष से भर जाता है। अब यदि मैं प्रायश्चित करता हूं तो अवश्य उस भावना में पाप का प्रवेश हो जायगा। मैं अपने मन की शुद्धता खो दूंगा। अब प्रश्न उठ ही खड़ा है तो मैं कहता हूं। देखो, मन की कैसी विचित्रता है! जबतक शेवन्ती को यह मालूम था कि मैं पागल हूं तबतक वह निस्संकोच भाव से मेरे अधीन थी। वह मुझे अपने आप उल्लसित करती थी। धीरे-धीरे मैं होश में आ रहा था। करीब-करीब ठीक ही हो गया था। शृंगार की अत्यन्त उन्मत्त अवस्था में भी वह मेरा व्यक्तित्व खोज रही थी। न जाने क्यों, वह देखती थी कि मेरी स्थिति में सुधार हुआ है या नहीं। लेकिन मुझे लगा कि उसकी दृष्टि कामिनी की नहीं है। उसमें वात्सल्य है, शृंगार नहीं। उसमें भी सुख था। लेकिन पागलपन का बहाना करके उसे स्वीकार करना मेरे पौरुष का अपमान है। मुझे ऐसा लगता है कि खुदबखुद वैसा करना मानो आत्मघात करना है। मैं उसे नहीं चाहता था, उसके प्रेम को चाहता था। मुझे उसकी दया नहीं चाहिए थी, मैं उसका शृंगार चाहता था, और वह भी स्वतः जीत कर प्राप्त किया हुआ। जब मैंने उसे बताया कि मैं पूरी तरह स्वस्थ हो गया हूं तो उसी समय से वह मेरे प्रति पूरी तरह बदली हुई दिखाई देने लगी। उसके बाद के व्यवहार में स्नेह था, लेकिन वासना पूरी तरह लुप्त हो गई थी। अनेक बार मैं भोगासक्त हुआ होऊंगा, लेकिन यह विचार करके कि उसका अपमान होगा, मैंने कुछ भी नहीं किया। एक ही बार मैंने अपना सन्तुलन खोया, लेकिन उस बार भी उसने मेरी भावना पहचान ली। भोग में होकर जाता हुआ भी हमारा रिश्ता भोग के परे का है और इसीलिए मुझे उसमें कुछ भी अमंगल प्रतीत नहीं होता।"

"मुझे इस बात की कल्पना भी नहीं थी कि तुम्हारी भूमिका इतनी सूक्ष्म और इतनी गंभीर होगी।" हृषी के कथन से प्रभावित होकर केशव ने कहा।

"भाई, यदि हमें कोई पुरुष किसी स्त्री की ओर आकर्षित होता हुआ दिखाई दे तो हमें उसमें लम्पटता के अलावा और कुछ नहीं दिखाई देता। इसका कारण यही है कि हम वर्षों से स्त्री को उपभोग की वस्तु मानते आये हैं। जो व्यक्ति या समाज पराक्रम को तिलांजलि दे देते हैं, सृजनशीलता को गंवा देते हैं, वे स्त्री को अन्य दृष्टि से देख ही नहीं सकते। उनके जीवन की स्वस्थता नष्ट हो जाती है। भोग के ऊपर पाप की मुहर लगाकर वे अपनेको संभालने का प्रयत्न करते हैं और भोग न छूटने के कारण चोरी-चोरी उसकी शरण जाकर सचमुच ही पाप के भागी बनते हैं। भोग दिखाई देने पर लार टपकाना, खतरे का समय टालकर उसे प्राप्त करना और अन्त में कृतघ्नता से उसे गालियां देना, यह है हमारा तत्व-ज्ञान। स्त्री के द्वारा दिया हुआ चाहे भोग हो, चाहे प्रेम, मुझे प्रेरक और पवित्र प्रतीत होता है। मेरी दृष्टि में कोई पाप है तो वह है पूरी कीमत दिये बिना उसे लेना। और इसीलिए मैं इस रास्ते पर प्रवृत्त होने को तैयार नहीं हूं।"

"हृषी, मैं तुम्हारा दृष्टिकोण समझ गया हूं। यद्यपि मेरा दृष्टिकोण भिन्न है, फिर भी तुम्हारे जीवन की दृष्टि से तुम्हारे विचारों के महत्व को मैं समझता हूं। अब आगे प्रायश्चित करने के लिए तुम्हारे मन को फेरने का प्रयत्न नहीं करूंगा। तुम्हें बहुत बड़ी टक्कर लेनी पड़ेगी। उसमें लगनेवाली शक्ति तुम्हारी निष्ठा से ही उत्पन्न होगी। यदि कुछ हो सका तो मैं तुम्हारी मदद ही करूंगा। हां, मैं तो तुमसे यही कहूंगा कि कोई भी बात भावना के आवेग में मत करना। मेरे सामाजिक कार्य की सारी आशा तुम्हारे ही ऊपर है। हम जो भी करें, उसमें समाज का कल्याण ही होगा, जबतक इस बात का विश्वास न हो जाय तबतक कोई उल्टी-सीधी बात मत करना।"

"मुझे मंजूर है, एकदम मंजूर। ज्योंही मैं नौकरी पर पहुंचा, मैं तुम्हें पत्र लिखूंगा। उसके बाद हम तुम्हारे इन्सपेक्टर मित्र से मिलेंगे। योजना पक्की बनाओ और काम में लग जाओ। मुझे भी इतने निरुद्योगी जीवन से घृणा हो गई है।"

"ठीक है, अब तुम नई कविता निकालो। एक रात तुम्हारे मुंह से कविताएं सुनने के बाद मुझमें एक महीने तक काम करने का उत्साह आ जाता है।"

हृषी ने अपनी डायरी निकाली और उसे केशव के हाथ में देते हुए वह बोला, "बोलो, कौनसी सुनाऊं ?"

डायरी के चिकने-चिकने नीले कागज, काफ़ी हाशिया, अक्षरों का सुन्दर मोतियों जैसा आकार आदि देखकर केशव को बड़ा सन्तोष हुआ। हृषी का कविता-पाठ चलता रहा और दोनों मित्र उसके नशे में इतने मस्त रहे कि उन्हें समय का ध्यान ही न रहा।

: २१ :

हृषी का सुमधुर पत्र पढ़ते-पढ़ते शेवन्ती अपने को भूल गई। उसके अन्तःकरण की खिलती हुई पंखुड़ियां सुकुमार शब्दों में अभिनव रंग खिला रही थीं और उसमें से उठनेवाली भावनाओं का सौरभ उसकी निश्चेष्ट भावनाओं में चैतन्य उडेल रहा था। पत्र का आनन्द प्राप्त करते हुए, उसमें निहित भाव उसके अन्तःचक्षुओं के सामने मूर्तिमान होने लगा और जिस निरपेक्ष, निर्भय प्रेम की इच्छा में वह अबतक प्यासी थी, आज उसी की मधुर वर्षा उसपर हो रही है, इस कल्पना से वह आनंदित हो गई। अपनी सारी भावनाओं के जीवन का चित्रपट उसके मन की आंखों के सामने से जल्दी-जल्दी गुजरने लगा। उसने प्रेम करने का सुख-दुःख अनुभव किया था। अब प्रेम करवा लेने का सुख-दुःख वह अनुभव कर रही थी। और इन दोनों वृत्तियों का मेल एक ही समय और एक ही स्थान पर न होने देने के लिए भाग्य क्या-क्या करना चाहता है, इसके तत्व-ज्ञान का वह तटस्थता से विचार करने लगी और वैसा करते हुए भी उसे लगा कि उसमें भी एक आनन्द है। उसकी काम-वासना सहज ही तृप्त हो जाती तो यह नई दृष्टि और उससे प्राप्त होने वाला आनन्द उसे बिलकुल न मिलता,

इसका उसे पूरा विश्वास हो गया और उसने भाग्य का आभार माना। आज उसे इस सत्य की अनुभूति हुई कि अपनेको भूलकर दूसरे के विकास में रस लेने से जीवन अधिक सम्पन्न होता है।

उसने हृषी की नई कविता पढ़ी। उसका स्फुरण कैसे हुआ, उसमें उसे क्या बात कहनी है, विशिष्ट रागों की योजना उसने क्यों की, आदि बातों का स्पष्टीकरण हृषी ने पहले ही कर दिया था, अतः उसका मर्म बड़ी जल्दी उसकी समझ में आ गया। लेकिन शेवन्ती को लगा कि यदि उसने वैसा न किया होता तो अच्छा होता। उसमें उसने एक भिन्न अर्थ देखा था। कवि अपने प्रेम से शब्द को अनुप्राणित करे, रसिक अपने अनुभव की समृद्धि से उसके रस को सजाए, उसे अपने जैसा बना ले। ज्योति के प्रकाश की भांति कविता के अर्थ की भी कक्षा, मर्यादा नहीं होती। वह मन-ही-मन बोली, "अब जब कविता भेजो तो इस प्रकार कुछ मत लिखना। अपनी कविता के पक्षी को मेरे अनुभव के आकाश में छोड़ दो। उसके पैरों में स्पष्टीकरण का पाश मत बांधो।" ऐसी ही कुछ बातें उत्तर में लिखना चाहिए, ऐसा उसे लगा।

इसके बाद वह सितार लेकर बैठ गई। अभी आई हुई कविताओं में से झाड़ू पर लिखी हुई कविता उसे बहुत पसन्द आई। यह कहना कठिन था कि उसके उद्गारों से उसकी प्रेरणा हृषी को मिली, इस कारण वह उसे अधिक प्रिय लगी या अपने जीवन का प्रतीक ही उसे उसमें दिखाई दिया, अतः उसे उसमें आत्मीयता दीख पड़ी। यद्यपि संसार में सेवा की उपेक्षा हुई है तथापि संसार के सभी महान् प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने गौरवगीत गाकर उस उपेक्षा का बदला चुकाया है। इस विचार से उसे अपना इतने दिनों का बोझ हलका होता हुआ प्रतीत हुआ। उसने अपनी भावना को स्वाभाविक गति प्रदान करने वाला स्वर उठाया और कविता गाते-गाते वह हृषी को और अपने को भूलकर सेवा का गौरव अनुभव करने लगी।

बाहर का दरवाजा एक-दो बार खटका, लेकिन शेवन्ती सुन न सकी। तीसरी बार जोर से खटखट हुई तो उसका ध्यान टूटा, लेकिन इस दृष्टि से

कि मन का जमा हुआ रंग भंग न हो जाय, उसने वहीं बैठे-बैठे मां को दो-तीन आवाजें दीं। उत्तर न मिला तो कुछ चिढ़कर वह खड़ी हुई और बाहर आई।

"कौन ? आप ?" दरवाजे के बाहर खड़े हुए केशव को देखकर उसने विस्मित होकर कहा।

"क्यों ? तुम्हें इतना आश्चर्य क्यों हुआ ?" केशव ने पूछा।

"तुम, तुम, तुम . . . ." गुस्से में भरे हुए ये उद्गार उसके ओठों पर आ गये, लेकिन उसने उन्हें बाहर न निकलने दिया। मन की गहराई में जो गांठ पड़ गई थी, वह अकस्मात ऊपर आ गई और उसकी भावन के सारे सुकुमार पुष्प गरम पानी डालने से मुरझाये हुए फूल की भांति कुम्हला गये।

"अब फिर आप इधर नहीं आयंगे, ऐसा मुझे लग रहा था।" उसने उदासीनता से कहा।

"अच्छा !" केशव ने कहा।

"बैठिये न ! और आप यह क्या ले आये हैं ?" चबूतरे के कोने पर रखी हुई सामान की डलिया देखकर शेवन्ती ने कहा।

"यह है तुम्हारे लिए रवलूदादा की ओर से भेजी हुई भेंट।"

"ऐसा लगता है कि यह मेरी सेवा का प्रतिदान है।" कहते-कहते उसे गुस्सा आ गया, लेकिन नौकरों के सामने कहीं तेज़ बातचीत न हो जाय, इसलिए उसने केशव से पूछा, "यदि इस नौकर को भेजकर मां को मन्दिर से बुला लूं तो कोई हर्ज तो नहीं है ?. . . अरे कृष्णा, मन्दिर जा और कहना कि फूलवन्ती बाई को बुलाया है। मुझे यहां जल्दी आने की जरूरत नहीं है। इधर-उधर घूम फिर आ।"

नौकर के चले जाने पर शेवन्ती ने केशव से पूछा, "क्या आप यह समझते हैं कि प्रत्येक बात की कीमत वस्तु के रूप में आंकी जा सकती है ?"

"भावुक व्यक्तियों को वस्तु के पीछे की भावना देखनी चाहिए। बाजार की कीमत से उसकी कीमत नहीं करनी चाहिए। ठीक है न ?"

"हृषी यहां मुझसे मिलने आते हैं तो वे आकाश-पाताल एक कर देते हैं। मेरे सम्पर्क के कारण जिनको प्रायश्चित-विधि की आवश्यकता अनुभव होती है, उनकी भावना की और उनके द्वारा भेजी हुई वस्तु की कीमत क्या मुझे मालूम नहीं है ?" उसने गुस्से में पूछा।

"इसीलिए शायद मेरे द्वारा दिये हुए रुपयों में से तीन सौ रुपये तुमने लौटा दिये।" केशव ने कहा।

"और चूंकि मैंने उन्हें लौटा दिया, क्या इसीलिए आपने इस उपहार का आयोजन किया ?"

"तुमको यह बात निश्चित रूप से मालूम है कि मैं किसी को अच्छा लगने के लिए झूठ नही बोलता। यह भेंट उन लोगों ने अपने आप भेजी है। कल तक मुझे उसके बारे में कुछ मालूम नहीं ही था।"

"हो सकता है, लेकिन मुझे उसमें से कुछ भी नहीं लेना है। अपना धर्म समझ कर मैंने जो कुछ किया, यदि उसका मैं इस प्रकार प्रतिदान लूं तो मैंने जो कुछ किया है उस पर पानी फिर जायगा।"

"लेकिन इसके मूल में प्रतिदान देने की वृत्ति नहीं है। वह तो प्रेम की भेंट है। इसका तुम्हें बोझ नहीं लगना चाहिए।"

"नही, केशवबाबा, क्षमा कीजिये। मुझे यह जंचता नहीं है। प्रेम से धर्म-दृष्टि उदार होती है, उज्ज्वल होती है। रवलूदादा ने जो रुख अख्तियार किया है, उसपर से ऐसा नहीं लगता है। यदि मैं इस भेंट को स्वीकार कर लेती हूं तो मेरे मन में हमेशा के लिए कसक रह जायगी।"

"यदि वैसी बात हो तो मैं आग्रह नहीं करूंगा लेकिन रवलूदादा के दुराग्रह के कारण बेचारी रमाअक्का के साथ तुम्हारी ओर से अन्याय नहीं होना चाहिए। यदि तुम्हें ऐसा लगता हो तो तुम रुपये तथा अन्य चीजें वापस कर दो, लेकिन उसमें की एक चीज़ तुम अवश्य रख लेना। यदि तुमने उसे वापस कर दिया तो रमाअक्का को तीर-सा चुभ जायगा।"

"वह कौन-सी चीज़ है ?"

केशव ने सामान में से एक पुराने ढंग की बेंत की पेटी बाहर निकाली

और उसमें से अंजीरी जरी की रेशमी साड़ी और जरी के बेल-बूटों की रेशमी चोली शेवन्ती के सामने खोलते हुए कहा:—

"यह है वह चीज़। इन्हें मुझे देते हुए रमाअक्का ने कहा था—'केशव, शेवन्ती से कहना कि यह मेरी शादी की साड़ी और चोली है। त्यौहारों पर दो-चार बार पहनकर मैंने बड़े जतन से इसे हृषी की बहू के लिए रख छोड़ा था। यदि संसार के नियम से न सही तो विधि-नियमों से हृषी के साथ तेरा विवाह हो गया, अतः तेरा इस चोली और साड़ी पर अधिकार हो गया।' यदि हम सब संसार के नियमों के गुलाम हों तो भी इस रमाअक्का को ईश्वर का नियम मालूम है। इसको अस्वीकार मत करना।" इतना कह-कर केशव ने चोली और साड़ी शेवन्ती के हाथ में दे दी।

केशव के शब्द सुनते-सुनते शेवन्ती की आंखें आंसुओं से डबडबा आईं। साड़ी का स्पर्श करते ही उसका सारा शरीर रोमांचित हो गया और वह कृतज्ञता से भर उठी। उसने झुककर प्रणाम किया।

"तुमने रमाअक्का को जो प्रणाम किया, उसे मैं उनके पास पहुंचा दूंगा।" गद्गद् होकर केशव ने कहा। मन-ही-मन उसने उस साड़ी और चोली से शेवन्ती को सजाकर उस रूप में देखा और न जाने क्यों उसे ऐसा लगा कि वह कपूर की पुतली की तरह जलकर अदृश्य हो गई। उसे याद आया कि हृषी को भी वह इसी तरह अदृश्य होती हुई दिखाई दी थी। उसके मन में विचार आया कि उसकी तरह कही मैं भी पागल न हो जाऊं। इसपर उसे हँसी आ गई।

"क्यों, आप क्यों हँसे?" शेवन्ती ने पूछा। केशव ने अपने मन के विचार उसे कह सुनाये। इसपर शेवन्ती ने कहा—"केशवबाबा, पागल होने के लिए भी भाग्य की आवश्यकता होती है। उसके लिए आपको दूसरा जन्म लेना पड़ेगा।"

"तो फिर मैं उसके लिए तेरे गर्भ से जन्म लूंगा।" केशव ने उत्तर दिया।

केशव के इस उत्तर से शेवन्ती इतनी फूल गई कि उसके अष्टांगों से जो परिमल बह रहा था उसे वह कैसे समेटे, यह उसकी समझ में न आया।

उसने साड़ी का एक सूत निकाला और उसे तुलसी को चढ़ाकर वह अन्दर मंदिर में गई।

शुभभावना से अब उसका मन इतना भर गया था कि रवलूदादा के मन को दुखाना भी उसे अच्छा न लगा। केवल पैसे लौटाकर उसने शेष सब चीजें रख लीं।

केशव के लौट जाने पर एक ही कल्पना दिन भर उसके मन में आ रही थी और वह थी रमाअक्का की चोली-साड़ी पहनकर कपूर की पुतली की तरह जल जाने की, सारे वातावरण को शुचिता से भर देने की।

: २२ :

जैसे ही आषाढ़ मास में वर्षा की झड़ी शुरू हुई वैसे ही हरिजन-बस्ती में प्रति वर्ष की तरह इस वर्ष भी बीमारी का प्रकोप हुआ। अतः केशव और कमली का काम इतना बढ़ गया कि बस्ती के बाहर की दुनिया को वे लगभग भूल-से गये। रंजना भी उनके पास रहकर उनके हर काम में मदद करने लगी। उसे यह दिखाई दे रहा था कि उसके विवाह का प्रश्न अब खटाई में पड़ गया है। इतना ही नहीं, उसने उसकी आशा ही छोड़ दी थी। हृषी का पागलपन मिट गया और वह काम पर जाने लगा, इससे उसे इतना आनन्द हुआ था, मानो उसने आधा संसार जीत लिया हो। हृषी की प्रतिष्ठा, पद और नाम बढ़ रहा है, इस सबको जानकर उसे खुशी होती थी। विसूबाबा और रंजना की मां ने हृषी के साथ रंजना का विवाह होने की आशा करीब-करीब छोड़ दी थी। यदि उनको कोई इस विषय में समझा सकता था तो केवल केशव ही। लेकिन वह तो वैसा करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं था। वह कहता था कि यदि मैंने प्रयत्न किया तो रही-सही संभावना भी समाप्त हो जायगी। रंजना बिल्कुल शान्त थी। उसकी शान्ति देखकर कमली को भी आश्चर्य हुआ। एक बार उसने रंजना से पूछा, "क्या तुझे ऐसा नहीं लगता कि हृषी का मन पलटने के लिए कुछ-न-कुछ प्रयत्न

करना चाहिए।" इसपर उसने कहा था, "मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानती हूं। मुझे यह बात बिल्कुल नहीं जंचती कि उनका मन मुझसे फिर गया है। इसी विश्वास के कारण मैं निःशंक हूं। मैं तबतक उनकी राह देखूंगी जबतक कि वे अपने मन की थाह न ले लें और तब-तक जितनी परीक्षा की आवश्यकता हो वह सब देने का मैंने निश्चय कर लिया है।" इसके बाद कमली कभी इस विषय में कुछ नहीं बोली। हां, जब रंजना बीमार बच्चों की सेवा-सुश्रूषा में व्यस्त हो जाती थी और उन्हें मां की ममता और सर्वस्व देती हुए दिखाई देती थी तो उसके उपेक्षा किये जाने वाले गुणों को देखकर कमली को बड़ी व्यथा होती थी।

रात का समय था। संध्या समय ही विसूबाबा आये थे और रंजना के विवाह के बारे में अन्तिम निर्णय करने के लिए वे केशव और कमली की राय ले रहे थे।

"खलूदादा का निश्चय तुम्हें मालूम हो गया है न?" उन्होंने केशव से पूछा।

"इन दिनों यहां के काम के कारण मुझे दूसरे किसी की भी खबर लेने का समय नहीं मिला। उसके कारण खलूदादा या हृषी की ओर से विशेष समाचार नहीं मिला है। हृषी भी अब मुझे पहले जैसे पत्र नहीं लिखता। यदि लिखता है तो काम-काज की बातें रहती हैं। इन दिनों कोई खास बात हुई है क्या?" केशव ने पूछा।

"हृषी न तो प्रायश्चित करता है, न विवाह का प्रश्न उठाने देता है। इस बात से खलूदादा को बड़ी चोट लगी है। धर्माचार्यजी को हम बहुत दिनों तक टाल नहीं सकते। मुझे अपने वचन को पूरा करना चाहिए और जीवन-भर रखे हुए व्रत का उद्यापन करना चाहिए। उसके लिए विधाता ने जो भाग्य में लिख दिया है उसे स्वीकार कर लेना चाहिए, यही खलूदादा का कहना है। मुझे उन्होंने कल ही बुलाकर कहा—'विसू, मुझे अपने शब्द निगलने पड़ रहे हैं, इसके लिए मुझे क्षमा कर। तुझे सबकुछ मालूम है। हृषी के सामने किसी की बात नहीं चलती। वह कड़ाई से मानता नहीं और एक बार मान

भी ले तो उसमें न उसका कल्याण है, न रंजना का। तेरे या मेरे हिस्से में कहीं-न-कहीं पाप था, इसीलिए उसे यह दुर्बुद्धि सूझी है और वह ऐसा गुरु-द्रोह और कुटुम्ब-द्रोह करने के लिए तैयार हुआ है। मैं शालिगराम की साक्षी देकर कह चुका हूं और वह मुझे सत्य करके दिखाना चाहिए। मैं घर के शालिगराम धर्माचार्यजी के यहां रख दूंगा और वहीं रहकर उनकी सेवा करूंगा। यदि हृषी को सद्‌बुद्धि आई और वह अच्छा होकर प्रायश्चित करने के बाद शालिगराम को घर में लाकर उनकी विधिपूर्वक स्थापना करे तो ठीक, नहीं तो मेरे प्राण वहां उनके पास ही निकलेंगे। जहां मेरे शालिगराम होंगे, वहीं मेरा घर होगा। लेकिन मुझे विश्वास नहीं है कि हृषी को बुद्धि आयगी। तब मैं तुझे कैसे कहूं कि राह देख। यदि बड़ी लड़की के जीवन को इसी तरह चलने दें तो विवाह का प्रश्न कैसे जटिल और कठिन हो जाता है, इसकी जानकारी लड़की का पिता न होने पर भी मुझे है। तू किसी और जगह उसका विवाह करने की कोशिश में लग। तुझे अपनी परिस्थिति का ज्ञान है। पैसे की चिन्ता मत करना। बस मन-चाहा लड़का ही देख ले। मैं भी देखूंगा।"

"रमाअक्का ने क्या कहा ?" कमली ने पूछा।

"वह बेचारी क्या कहेगी ? वह तो चुपचाप सबकुछ सुन रही थी। बाद में मैंने उससे पूछा कि केशवबाबा के द्वारा रवलूदादा या हृषी का मन फेरने का कोई प्रयत्न कर देखें क्या ? उसने कहा, उसका कोई उपाय नहीं है। इनकी हठ ही बिलकुल इकतरफा है। यदि एक बार ये जिद पकड़ लें तो कितने लोगों की आहुति दे देंगे, इसका कुछ ठिकाना नहीं है। इनको इनके रास्ते से जाने दो और इनके घर की हम स्त्रियां उसे सहन करें। यदि भगवान को लाज रखनी है तो वही पार लगायगा। इसपर मैंने उससे पूछा, 'तू क्या करने वाली है ?' उसने कहा, 'वे जिस प्रकार अपने शालिगराम को नहीं छोड़ रहे हैं, उसी तरह मैं भी अपना घर नहीं छोड़नेवाली हूं। लड़के ने उस तरह घर छोड़ दिया और बाप इस तरह छोड़ रहा है। घर की मालकिन को तो घर पर निष्ठा रखनी ही चाहिए न ? इनके जाने पर मैं स्वयं कवला

जाकर देवी से यही प्रार्थना करूंगी। प्रतिमा के उत्सव के बाद से घर कैसा उलट-पुलट हो गया है। उसका गुस्सा उतारने के लिए मुझे वहां जाकर कुछ दिन उसकी सेवा करनी चाहिए। उत्सव तो बिलकुल पास आ गया है। उसके पहले नव-चण्डी होनी चाहिए।' "

"तो फिर आपने क्या निश्चय किया है?" केशव ने पूछा।

"मैं इतनी उलझन में पड़ गया हूं कि मुझे कोई रास्ता ही दिखाई नहीं दे रहा है। घर में शान्ति से चार बातें कहकर निर्णय करने की सोचें तो उसकी बार-बार आंसू-भरी आंखें देखकर मेरा बचा-खुचा धैर्य भी छूट जाता है। इसीलिए तो तुमसे सलाह लेने आया हूं। वैसे रंजना भी यहीं है। उसकी बात भी सुन लेनी चाहिए। मेरे हाथ-पैर अब थक गये हैं। गरीब-से-गरीब लड़का भी हजारों रुपये मांगता है। सीपी या कौड़ी के हजार रुपये थोड़े होते हैं, जो ये मांगें और हम दे दें। रवलूदादा कहते हैं कि पैसे ले लो, लेकिन हम कैसे ले लें? यदि अपनी इज्जत रखने के लिए इंकार कर दें तो लड़की का क्या होगा, यह एक बड़ा भारी प्रश्न उपस्थित हुआ है।"

इतनी देर तक रंजना चुपचाप सबकुछ सुन रही थी, लेकिन अब उससे न रहा गया।

"बाबा, कुछ भी हो, लेकिन रवलूदादा की मदद आप मत लेना। मैं कुआरी रही तो कोई हर्ज नहीं। आपने ही मेरा मन उन्हें दे दिया था। अब मैं उसे किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं दे सकती। देवी की इच्छा जैसी होगी, वैसा ही होगा। आप मेरी चिन्ता मत कीजिए। लेकिन बाबा, रमाअक्का ने मेरे बारे में कुछ कहा?"

रंजना के इन निर्भय शब्दों से हतबुद्धि हो जानेवाले विसूबाबा बोले—"हां, कहा था।"

"क्या?" अधीर होकर रंजना ने पूछा।

"यदि उसकी निष्ठा अटल हो तो उससे कहना कि मेरे साथ देवी की सेवा करने के लिए वह भी आ जाय।"

"तो फिर कल ही आप मुझे रमाअक्का के पास ले चलिए।"

रंजना की यह बात सुनकर विसूबाबा कुछ बोलनेवाले थे कि रंजना ने कहा, "मेरे इस कसौटी के समय कोई बाधा उपस्थित मत करो, नहीं तो आपको अपनी लड़की नहीं मिलेगी।"

इतना कहकर रंजना अन्दर चली गई। उसने कमरे का दरवाजा इतनी जोर से खोला कि उसकी आवाज सबको सुनाई दी। शीलवती रंजना के स्वभाव में यह आकस्मिक परिवर्तन देखकर विसूबाबा और कमली बिल्कुल स्तंभित रह गये। यदि कोई चकित नहीं हुआ तो वह था केशव।

"कमली, तुझे आश्चर्य होता है, लेकिन निष्ठापूर्ण प्रेम के लिए असंभव क्या है? बाहर से वह शान्त और निर्विकार थी। सो तुम्हारी यह कल्पना मात्र है कि क्या उसके अन्तकरण में ज्वालामुखी नहीं जल रहा था?" इसके बाद विसूबाबा की ओर मुड़कर उन्होंने कहा, "विसूबाबा, आप हृदय का महत्व जानते हैं। इस बार ईश्वर पर भरोसा रख कर उसे रमाअक्का के सिपुर्द कर दो और भूलकर भी उसके विवाह का प्रश्न मत छेड़ो। हम पुरुष आज विवाह का निश्चय करते हैं, लेकिन यदि कुछ भी बिगड़ा तो उसे तोड़ देते हैं। उसकी इतने वर्ष की निष्ठा का विचार करो। उसके और हृषी के वियोग के विचार से तुम्हारी छाती फट जायगी।"

"सच है, बिल्कुल सच। मैंने भी हृदय से जो द्रोह किया था उसी का यह फल है। कहते हैं न कि 'बाप करता है पाप और लड़के देते हैं ताप।' यह अक्षरशः सत्य है।" कहते-कहते विसूबाबा की आंखें आंसुओं से डबडबा आईं।

"क्यों, क्या हुआ? इससे आपका क्या सम्बन्ध है?" केशव ने पूछा।

"इसका लम्बा इतिहास है। कभी-न-कभी एक बार कहना ही है। ब्राह्मणों को कुछ समय में अपना पाप लोगों को बुलाकर कह देना चाहिए। इससे वे पापमुक्त हो जाते हैं, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।"

बाहर जोर से पानी की झड़ी लगी हुई थी। मेघों की गड़गड़ाहट और आसपास टूटनेवाले पेड़ों का कड़कड़ शब्द सुनाई दे रहा था। मेंढकों की टर्र-टर्र भी हो रही थी। कानों को बधिर बना देनेवाली आवाज सुनाई

देने के कारण विसूबाबा बोलते-बोलते जरा चुप हो गए और कमरे में क्षण भर निस्तब्धता छा गई। दीपक के मन्द प्रकाश में वह निस्तब्धता और भी अधिक गंभीर प्रतीत हुई। बाद में कमली को सम्बोधित करके विसूबाबा बोले, "कमली, क्या थोड़ी-सी गरम-गरम कॉफी बनाकर ला सकती हो?"

कमली कॉफी तैयार करने के लिए अन्दर जाने लगी तो उन्होंने कहा "दूध मत डालना और कॉफी जरा ज्यादा डाल देना।"

"आपकी रुचि मुझे मालूम है।" जाते-जाते कमली ने कहा।

इसके बाद धोती के अंचल से गाल पोछते हुए विसूबाबा ने आगे कहा, "पहले आपके यहां एक बार आया था तब, केशवबाबा, तुम्हारे मुंह से सोहरोबा का मैंने यह अभंग सुना था—"**अग्निमाजीं सती एकलीच जळे।**" तब से मैं उसे रोज भजनों के साथ गाता हूं। न जाने क्यों, उसे गाते-गाते मेरा सारा पूर्व चरित्र मेरी आंखों के सामने आ जाता है और आंखों से आंसू की धारा बहने लगती है। मुझे वह सारा प्रसंग याद आ जाता है। आज तटस्थ दृष्टि से कह सकता हूं। हालाँकि तुम दामाद हो, उम्र में मुझसे छोटे हो, फिर भी मैं हमेशा तुम्हें अपने मित्र और स्नेही की दृष्टि से देखता आया हूं। सामाजिक रूढ़ियों का स्थान और महत्व जान कर भी उनके परे जाकर जीवन देखने की शक्ति तुममें है। यदि मैं तुम्हें अपना सारा इतिहास सुनाऊं तो मुझे पाप धोने का श्रेय मिलेगा और उसमें से कौन-सा सिद्धान्त निकालना और उसे समाज को कैसे सिखाना, यह भी तुमको मालूम हो जायगा। मैं उस समय हृषी की तरह तरुण, स्वप्नदर्शी और भावुक था। उस समय के रिवाज के अनुसार मेरी इच्छा के बिना कुछ परवा किये पिताजी ने मेरा विवाह कर दिया। विवाह केवल सन्तान के लिए, कुल-परंपरा चलाने के लिए है, यही उस समय की कल्पना थी। यदि अपना शौक, अपनी भावनाएं पूरी करनी हैं तो किसी अड्डे में जाकर, किसी देवदासी वेश्या के पास मनोरंजन करना, उस समय का सभ्य माना जाने वाला रिवाज था। जीवन सुखी बनानेवाला ऐसा कोई काम-धंधा मेरे पास नहीं था, जिसमें मेरे आठों पहर बीत जायं। ऊपर से मेरे मन में बढ़ता हुआ गाने-बजाने

तथा कलाओं का शौक था। हम एक भी मेला नहीं छोड़ते थे। कवला का माघ मास का मेला तो जैसे हमारा ही था। वहां आठ-दस दिन पहले ही हमारे परिवार का डेरा लग जाता था। जुलूस के समय किसी तरुण वेश्या ने ललित राग में एक अपूर्व चीज गाई। उसका स्वर कानों में पड़ते ही मैं मन्त्र-मुग्ध सांप की तरह खिंचा हुआ चला गया और उसे सुनते-सुनते मस्त हो गया। वहां और भी बहुत-से धनी और फिरंगी अफसर इकट्ठे हो गये थे। लेकिन उनपर जिस चीज़ का प्रभाव पड़ा वह था उसका सौन्दर्य। दूसरे दिन मैंने उससे यह पुछवाया कि यदि मैं तुम्हारे यहां गाना सुनने आऊं तो कोई हर्ज तो नहीं है। उसने उत्तर भिजवाया—"बहुत खुशी से आइये।" इसके बाद मैं वहां गया। जाते समय मुझे पाप का स्पर्श भी नहीं हुआ था। आते समय तो मैं स्वर्ग में विचर रहा था। सारी रात उसने भिन्न-भिन्न रागों में चीजें गाईं। वैसा गाना उसके पहले और बाद में मैंने कभी नहीं सुना। एक-एक स्वर से तरुण स्त्री-हृदय बह रहा था। मैं यह नहीं समझ सका कि कला की प्रशंसा कैसे प्रदर्शित करूं? मुझे लगा, यदि इसके लिए उसे संसार भी दे दिया जाय तो थोड़ा है, लेकिन अपनी अव्यावहारिक वृत्ति के अनुसार मैं एक पाई भी अपने साथ नहीं ले गया था। सौभाग्य से विवाह में मिली हुई पुखराज की अंगूठी मेरी उंगली में थी। मैंने उसे उसके हाथ में पहना दिया और कहा—'तुम्हारी कला का सम्मान करने जैसी योग्यता मुझमें नहीं है, लेकिन यह छोटी-सी यादगार अपने पास रक्खो।'

"कला का सम्मान इस प्रकार के हृदय की विशालता से होता है, सोने से नहीं।' मेरी छाती की ओर उंगली का संकेत करते हुए भावनामय वाणी में उसने कहा। उसके कुछ दिनों बाद उसने मुझे बुलाया। मेरा हृदय मेरे वश में नहीं रहा था। अतः काम का बहाना बताकर मैंने उसे टालने का प्रयत्न किया। अपनी पत्नी का विचारकर मुझे उस ऊपर दया आती थी। फिर निमन्त्रण आया। उसमें उसने कहा था कि वह बीमार है। अब मुझसे न रहा गया। मैं बहुत-कुछ बदल गया था। विवेक-प्रिय व्यक्तियों की करुणा तथा सामाजिक भीति कोई भी मुझे न रोक सके। मन्त्रमुग्ध की तरह

सीधा उसके पास गया। जब घर पहुंचा तब दीपक जल चुके थे। उसके रिश्तेदारों में से किसी ने मुझे उसके कमरे में ले जा कर छोड़ दिया। वहां देव-मन्दिर के सामने वह आंखें मूंदकर खड़ी थी। मै भी मुग्ध होकर वह चित्र देखने लगा। 'शुभं करोति . . .' पूरा हो जाने पर उसने पीछे मुड़कर देखा और मेरी तरफ नजर जाते ही मानों उसे बिजली का सा-धक्का लगा। बोली, "आप ?" इतना कहकर वह धम्म से गिर पड़ी। इसके बाद वह थोड़ी देर में होश में आई, लेकिन मेरे होश उड़ गये। मै पूरी तरह उसका हो गया। मेरे वियोग में वह इतनी दुबली हो गई थी कि उसे ठुकरा कर जाना मुझे द्रोह जैसा लगा। इस ऋणानुबन्ध का अधिष्ठान शारीरिक आकर्षण नहीं था। दो आत्माओं का अनन्त आकर्षण था। मुझसे रुपये प्राप्त होने की अधिक संभावना न होने पर भी वह मेरे प्रति निष्ठावान रही। बड़े-बड़े धनवानों और फिरंगी अफसरों ने उसे धन का लालच दिया, डर दिखाया; लेकिन वह किसी प्रकार भी वश में नही आई। लेकिन भाग्य से—समाज से यह नहीं देखा गया। सारा प्रकरण रवलूदादा के कान में पहुंचा। वे आज की अपेक्षा उन दिनों अधिक उग्र थे। धनवानों ने वेश्या-गमन अपने समाज में प्रतिष्ठा की चीज़ बना रखा है और इससे हमारा सर्वनाश हो रहा है, उसे रोकने की जिम्मेदारी हमारे परिवार पर है, इस प्रकार वे आवेश में मुझे उस रास्ते से हटने के लिए आग्रह करने लगे। उन्होंने मुझे बहुत कहकर और समझाकर देख लिया। मेरी भावना की भाषा उनकी समझ में नहीं आती थी और उनका कहना मुझे नहीं जँचता था। अन्त में निश्चय के साथ उन्होंने मुझसे कहा—'विसू, यह देख, यदि तूने यह बन्धन नहीं तोड़ा तो अब आगे हम दोनों परिवारों का स्नेह-सम्बन्ध नहीं रहेगा। मैं जानता हूं कि तुम भाई-बहन एक-दूसरे को कितना चाहते हो, तुम्हें अलग करना मुझे बड़ा बुरा लगता है। यह भी मुझे दिखाई देता है कि तुम दोनों एक-दूसरे की याद में घुलते रहोगे। लेकिन मैं निरुपाय हूं। मैं इसे पीहर नहीं भेज सकूंगा। देखो अब भी विचार करो।' रवलूदादा रमाअक्का को उसके पीहर नहीं भेजेंगे, यह मालूम होने पर मां घबरा

गई। उसने अन्न-जल छोड़ दिया। अन्त में रमाअक्का ने अपने पति को भगवान जाने कैसे समझाया, परन्तु अचानक एक दिन वह हमारे यहां आईं। उन्होंने अपने हाथ से मां को खाना खिलाया और सारी रात जग कर वह मेरा मन फेरने का प्रयत्न करती रहीं। मुझे सूझता ही न था कि क्या करूं ? मां-बेटी को अलग करके दो प्रेमियों को बिछोह में जलाने की अपेक्षा हम दोनों का विछोह अच्छा होगा। मैंने कहा—'अक्का, मैं तेरी बात समझता हूं, लेकिन स्वयं वहां जाकर उससे कहने का साहस मुझमें नहीं है। तू ही यदि उसे समझा सके तो समझा दे। तुम्हारे लिए मैं अपना मन मारने को तैयार हूं। वह अभी एक बालिका को जन्म दे चुकी है। इस नाजुक अवस्था में इतना बड़ा धक्का वह सहन नहीं कर सकेगी। चार दिन बीत जाने दो।" उसके बाद उसने क्याजादू किया, उससे क्या कहा, भगवान जानें। लेकिन वह फिर मुझसे कभी नहीं बोली, न मैं उसकी ओर गया। एक निर्मल हृदय के प्रति मैंने जो द्रोह किया, वह मुझे कांटे की तरह चुभ रहा है और आज वही मुझसे बदला ले रहा है।" यह कहते-कहते वीसूबाबा हांफने लगे। बरसात के दिन होते हुए भी उनके ललाट पर पसीना झलक आया।

"वह फूलवन्ती है न ?" केशव ने पूछा।

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?" विसूबाबा ने पूछा।

"भावनाओं की वही उत्कटता, वही निष्ठा शेवन्ती में भी है। रंजना से वह बहुत मिलती-जुलती है। इससे सब बात स्पष्ट हो जाती है।" केशव ने कहा।

"अपने मुंह से अपने बच्चों से ऐसी बातें कहना बड़ा कठिन है। लेकिन उन्हें मालूम होना चाहिए, इसीलिए मैंने तुमसे सब बातें कह दीं" विसूबाबा ने कहा।

इतने में कमली कॉफी का प्याला लेकर आई। कॉफी पी लेने पर केशव ने कमली से कहा, "चलो, भजन का समय हो गया। रंजना को भी बुला लो।"

सब लोग आकर भजन के लिए बैठ गए। प्रार्थना हो जाने पर भजन

प्रारंभ हुए। प्रतिदिन के भजन हो जाने पर विसूबाबा ने कहा, "वह सोहरोबा का भजन भी तो गाओ।" केशव ने प्रारंभ किया। सुनते-सुनते विसूबाबा की आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। कमली और रंजना हत्बुद्धि बनकर उन्हें देखती रह गईं।

: २३ :

हर दो दिन के बाद हृषी के पत्र शेवन्ती के पास आते रहते थे। उन पत्रों को पढ़कर तथा उसकी भेजी हुई नई-नई कविताओं को गाकर उसके मृतप्राय जीवन में भावना की नवीन कोपल फूट रही थी। उसके प्रेम में निहित वासना दिन प्रतिदिन अदृश्य होती जा रही थी और वह शुद्ध भावना का रूप धारण कर रही है, यह बात अब उसे स्पष्ट दिखाई दे रही थी। अभी-अभी हृषी ने अपने एक पत्र में लिखा था—"तुम्हारे प्रेम के लिए बड़ी-से-बड़ी बात करने को उद्यत हूं। लेकिन जब वह समय आवे तब किसी पुराने व्यक्ति के इशारों पर चलकर ऐन वक्त पर मुझे धोखा मत देना।" हृषी मेरे लिए कौन-से बड़े काम करने वाला है और मैं किसके इशारों पर चलूंगी, जिसका डर हृषी को लग रहा है? इस प्रश्न का उत्तर उसे नहीं मिल रहा था। लेकिन कोई उसके लिए बड़ा साहसपूर्ण कार्य करने के लिए तैयार हो और उस समय उसके लिए चारों तरफ निराशा छा जाय तो वह कैकेयी की भांति उसे अपने हाथों से संभाले, इस प्रकार की कल्पना कभी-कभी उसके मन में जोर से उठ आती थी।

हृषी के पत्रों से इस तरह मन-ही-मन पुलकित होते हुए अकस्मात उसे ऐसा लगने लगता कि वह भूल कर रही है और कभी माकाव के जज की प्रेमभरी दृष्टि, तो कभी केशव के मूक आसक्ति-रहित करुणापूर्ण नेत्र उसकी आंखों के सामने चित्र की तरह अंकित हो जाते और वह भ्रमित-सी हो जाती। तब वह मन्दिर का, घर का या अड़ोस-पड़ोस का कुछ-न-कुछ काम ढूंढ़ लेती और जबतक थक न जाती तबतक उसमें रमी रहती। आज उसकी

इस वृत्ति के उमड़ पड़ने के कारण वह सन्ध्या के पूरे समय इसी प्रकार का शरीर-श्रम करती रही और बिलकुल थक कर चूर हो गई। सन्ध्या हो गई थी। बाहर पानी बरस रहा था। घर में दीपक जल रहे थे; लेकिन उसके मन का अन्धेरा तनिक भी कम नहीं हुआ था। इसी समय बाहर साईकल की घंटी जोर-जोर से बजी। घंटी की विशेष प्रकार की आवाज से तथा उसके बजाने के ढंग से शेवन्ती को विश्वास हो गया कि हृषी आया है। कल ही उसका पत्र आने और उसमें उसके आने की कोई पूर्व सूचना न होने के कारण उसके मन को यह सोचकर बड़ी आशंका हुई कि वह अकस्मात क्यों आया है। जल्दी-जल्दी दीपक लेकर वह बाहर आई और उसने दरवाजा खोला।

साईकल चबूतरे पर रखकर और बैग लेकर हृषी अन्दर आ गया। वह सिर से पैर तक भीग गया था। बैग भी गीला हो गया था। उसका भीगा हुआ थका चेहरा और उसकी शोभा बढ़ानेवाले काले-काले घुंघराले बाल देखकर शेवन्ती को ऐसा लगा कि प्यार से उसके चेहरे को जोर से पकड़ कर हिला दे, लेकिन वैसा कुछ न करते हुए उसने उसके हाथ से बैग ले लिया और "कवि का छाता काव्य-कल्पना में ही उड़ गया" ऐसा कहते हुए वह उसका हाथ पकड़कर अन्दर ले गई।

अपने हमेशा के स्वभाव के अनुसार शेवन्ती सोच रही थी कि उस स्थिति में यदि प्रेमभरी उसने कोई चेष्टा करदी तो वह उसका प्रति उत्तर कैसे देगी? लेकिन उसने वैसा कुछ भी नहीं किया।

"मार्ग में स्टीमर बिगड़ गया और यह मुसीबत आ पड़ी। जब मनुष्य के ग्रह फिर जाते हैं तब सीधी-सी बात भी मन के अनुकूल नहीं होती। चलो, गनीमत हुई कि बैग के अन्दर पानी नहीं गया, नहीं तो राजा नल की भांति मुझे भी तुम्हारी साड़ी पहनकर सारी रात बितानी पड़ती।" हृषी ने कपड़े उतारते हुए कहा।

"लेकिन आपको तो उसकी आदत है। आपको नल की तरह कोई कठिनाई नहीं होती। ठीक है न?" उसके पागलपन के दिनों की याद करके

हँसते-हँसते शेवन्ती ने कहा।

"बैग की चाबी कहां है ?"

हृषी द्वारा दी हुई चाबी से बैग खोलकर वह उसके लिए सूखे कपड़े निकालने लगी। उनमें सिगरेट के दो नये डिब्बे देखकर बोली—"घर जल गया, लेकिन तुम्हारा यह व्यसन नही छूटा न ?"

"अबतक तो नहीं छूटा है। अब भी वह छूटेगा या मेरे जलकर खाक होने तक चलता रहेगा, इसीका निर्णय करने के लिए में आया हूं।" हृषी ने धीरे-धीरे जैसे अपने से ही कहा।

"ऐसा लगता है कि तुम्हारा बहुत बड़ा नुक्सान हुआ है। ठीक समय पर पेट को मनचाही चीज़ न मिलने से ऐसा कहा जाता है कि पुरुषों का चेहरा तमतमा जाता है।" उसके मन की बात जानने के लिए शेवन्ती बोली, लेकिन वह अन्दर से घबरा गई। "क्या लाऊं तुम्हारे लिए ?" उसने आगे पूछा।

शेवन्ती के द्वारा निकाला हुआ नाइट सूट वह पहनने लगा। उसी समय शेवन्ती बाहर जाने लगी।

"जरा ठहरो, मुझे तुम्हारी जरूरत है। अपनी मां को दो प्याले चाय बनाने के लिए कह दो। तुम भी मेरे साथ पीना। अपनेको आज बहुत जगना है।"

हृषी ने ये शब्द कहे, लेकिन उसके उद्गारों में वासना की धुंधली छाया भी शेवन्ती को दिखाई नहीं दी और उसके साथ वहां रहने में उसे संकोच भी नहीं हुआ।

"मैं यहीं रहकर मां को चाय बनाने के लिए कैसे कहूं ?" उसने मजाक में पूछा।

अपने शब्दों की हास्यास्पदता हृषी के ध्यान में आई और वह कहने लगा—"यदि पुरुषों के कान लम्बे होते हैं तो स्त्रियों की जबान लम्बी होती है न ? तुम्हारी जबान यहां से रसोईघर तक मजे में पहुंच जायगी।"

शेवन्ती ने पलंग पर नई चादर बिछाई। मेज पर नया दीपक जला कर रखा और चाय की सारी तैयारी की। हृषी बहुत देर तक चाय

की भाप की तरफ देखता हुआ सिगरेट पीता रहा ; लेकिन उसकी अन्तःदृष्टि कहीं दूसरी जगह ही लगी थी।

"कवि महाराज, चाय ठंडी हो रही है।" उसकी घुंघराली लटों को हिलाते हुए शेवन्ती ने कहा।

नींद त्यागकर जाग्रत होनेवाले व्यक्ति की तरह उसने शरबत की तरह एक सांस में सारी चाय पी डाली।

"जबान खूब जल गई न ?" शेवन्ती ने हँसते-हँसते पूछा।

"वह संसार में इतनी अधिक जल चुकी है कि इस चाय से उसके ज्यादा जलने की संभावना नहीं है।" हृषी ने कहा।

"जो कहना है, साफ-साफ कहो। यहां तो ऊर्ध्व श्वांस चलकर जान जाने की बारी आ गई है।" अपनी आतुरता व्यक्त करते हुए शेवन्ती ने कहा।

"बाईसाहब, अभी तो त्याग दिखाने की शुरुआत ही हो रही है और उस समय धोखा न देने की बात मैंने तुम्हें एक बार लिखी थी। याद है न ?"

"मैं ऐसी बूढ़ी थोड़े ही हो गई हूं, जो कल-परसों की बातों को भूल जाऊं !"

"ठीक है। यह तो बड़ी खुशी की बात है। तो सुनो। ऐसी घटना घट रही है कि जबतक जवानी का जोर न हो उसका मुकाबला नहीं किया जा सकेगा। लेकिन अब यदि ब्रह्माण्ड भी उलट जाय तब भी यह हृषी पागल नहीं होगा।"

"यह तो बताओ कि वह घटना क्या घट रही है ?" कुछ चिड़चिड़ी-सी होकर शेवन्ती ने कहा।

"मैं न तो प्रायश्चित करता हूं और न बाबा द्वारा तय किया हुआ विवाह करने को तैयार होता हूं, यह देखकर उन्होंने आखिरी हथियार बाहर निकाल लिया है। बाबा घर छोड़कर स्वामीजी के यहां चले गये हैं। इस कारण सारे घर में भूकंप आ गया है। उसके धक्के समाज में सब ओर पहुंच रहे हैं और इस कारण मेरी प्रतिष्ठा भंग हो रही है। मेरी आबरू,

प्रतिष्ठा और लोकप्रियता को उन्होंने तलवार की धार पर रख दिया है और उनकी यह कल्पना है कि इस अस्त्र से मैं उनकी शरण में चला जाऊंगा।" अपने अन्तिम वाक्य हृषी ने कुछ तुच्छता से कहे और सिगरेट का धुंआ बड़े ज़ोर से बाहर फेंका।

"आपने क्या निश्चय किया है ?"

"निश्चय के साथ ही मैं उसका मुकाबला करूंगा। लेकिन इस काम में मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। मैं तो सारी बात तुम्हारे भरोसे ही करता आया हूं। तुम्हारे प्रेम ने मुझे निर्भय और निस्स्वार्थ बनाया है। मुझसे जोखिम भरे काम सफलता से करा लेना तुम्हारे लिए ही संभव है। हमारे गोआ में छोटी-सी बात भी घर-घर फैलते देर नहीं लगती। उसपर हमारा कामत-घराना ठहरा अभिमान की अकड़ दिखानेवाला। पिताजी के घर छोड़ने की बात दावाग्नि की तरह फैल जाय तो इसमें कौन-सा आश्चर्य है ? मेरी जान-पहचान के बड़े-बड़े लोग मुझसे पूछने लगे हैं कि यह क्या बात है ? मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि अपने पिताजी के हास्यास्पद व्यवहार पर किस प्रकार पर्दा डालूं। लोगों का क्षोभ तो मुझे साफ़ दिखाई दे रहा था। इतने दिनों से मुझे यह बात बराबर अनुभव हो रही थी कि जिस तरह तुमने मुझे मनुष्यता प्राप्त करवाई उसी तरह मुझे भी तुम्हें मनुष्य बनाना चाहिए। और ऐसा तुम्हें पत्नी के रूप में स्वीकार करके ही किया जा सकता है। मैंने ही कितनी बार मन में यह संकल्प किया। विचित्र योगायोग से ईश्वर हमको निकट लाया। उसके द्वारा बनाया हुआ सम्बन्ध हम व्यर्थ के डर से क्यों टालें, यह बात निरन्तर मेरे मन में गूंजती रही। हां, यह बात अवश्य है कि मुझमें उतना साहस न था। कुछ लोग हिम्मत से जोखिम के प्रसंग ले आते हैं तो किन्हीं में उस प्रसंग के कारण हिम्मत आती है। मेरे लिए अब यह प्रसंग अपने आप आया है। मैं कहता हूं कि इससे अधिक अब और क्या विशेष होगा ? अतः बाबा के व्यवहार की हास्यास्पदता मिटाने के लिए और इतने दिन जो बात मन में थी उसे पूरा करने का मौका हाथ से न जाने देने का प्रयत्न करने के लिए मैं हर

व्यक्ति से कहता था कि पागलपन से मुक्ति के लिए जिस देवदासी की लड़की के सम्पर्क में मैं आया उसीके साथ विवाह करने के लिए तैयार हूं। मेरे पुराने विचार के पिताजी को यह बात मान्य नहीं है। यह तो दो पीढ़ियों की लड़ाई है।"

"तो फिर देवदासी की लड़की से शादी करने की इच्छा रखने वाला आदमी कहकर हर व्यक्ति आपको तुच्छता और अनादर से देखता होगा न ?"

"मेरा भविष्य और समाधान इस बात पर निर्भर नहीं है कि लोग किस दृष्टि से मुझे देखते हैं। हां, वह इसपर अवलम्बित अवश्य है कि तुम मुझ किस दृष्टि से देखती हो। उनकी तुच्छता को साधार या निराधार करना तुम्हारे ही हाथ में है।"

"सो कैसे ?"

"इतना सब हो जाने पर यदि तुमने विवाह करने से इन्कार कर दिया तो लोग कहेंगे—'बेटा चले थे देवदासी से विवाह करने। लेकिन वह कहां विवाह करने वाली थी !' इस तुच्छता को कौन निराधार कह सकेगा ? मैंने तो बस अपनी इच्छा बताई है, तुम्हारी अनुमति के बारे में मैंने एक शब्द भी नहीं कहा है। मैंने तुमसे कहा जरूर है कि एन वक्त पर मुझे धोखा मत देना, तब भी यदि तुम्हारा मन और कहीं लगा हो तो मेरे लिए खाई में मत कूदना। प्रत्येक व्यक्ति कोअपनी अंतरात्मा को जाग्रत रखना चाहिए। उसी में सच्ची शांति मिलती है।"

हृषी के अन्तिम उद्‌गार से शेवन्ती का हृदय कांप उठा। कुटुम्ब का स्नेह-बन्धन, समाज में ऊंचा स्थान, कौटुम्बिक प्रतिष्ठा, सबकुछ उसके लिए त्यागने को हृषी तैयार हो गया है और उसीके उत्तर पर उसका भविष्य, उसके हृदय की शांति, उसकी प्रतिष्ठा झूल रही है—इस कल्पना से उसके सर्वांग में रोमांच हो आया। हर्ष, कृतज्ञता, कृतार्थता और अनुभूत संवेदना से वह सिर तक सिहर गई। बहुत दिनों के बाद फिर से उसमें वही देवी की प्रतिमा जाग्रत हो गई, ऐसा उसे प्रतीत हुआ।

"हृषी, मैं देवदासी की लड़की हूं। क्या आपने इस बात का विचार किया है कि कुलीन व्यक्ति की गृहस्वामिनी होकर पतिव्रता का जीवन व्यतीत करना मेरे लिए कहांतक संभव हो सकेगा ? मेरा पूर्व जीवन आपके भावी जीवन पर खतरनाक प्रभाव डालेगा, मेरा हाथ अपने हाथ में लेने के कारण आपको और आपके बच्चों को कितने भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ेगा, और आपका कवि-हृदय इन सब मानसिक यातनाओं को कितने दिनों तक सहन कर सकेगा, इन सब बातों पर आपने अच्छी तरह विचार किया है न ?"

"शेवन्ती, तुम पातिव्रत्य की बात करती हो तो सीता-सावित्री की बातें पुराण की बातें बन गई हैं। मनुष्य-कोटि का जो पातिव्रत्य धर्म संभव है वह तुममें है। अर्थात् मेरी दृष्टि में पातिव्रत्य धर्म एक प्रकार की मानसिक वृत्ति है। मेरा उसपर विश्वास है। यदि मझे तुम्हारे साथ गृहस्थ-जीवन व्यतीत करना है तो वह तो भविष्य में करना है, भूतकाल में नहीं। तब पूर्व जीवन की चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है और यदि हमारे या बच्चों के कष्ट का प्रश्न है तो उसके बारे में यही कहना होगा कि उसका मुख्य भार तुम्हें ही उठाना पड़ेगा। जहांतक मेरे कवि-हृदय का संबंध है, वह कोमल होते हुए तुम्हारा आधार मिलने पर कठोर हो जायगा, इसका तुम विश्वास रखो। मेरी चिन्ता मत करो। पहले अपना विचार करो।"

जब हृषी बोल रहा था तो उसके ज्वलन्त व्यक्तित्व की तेजस्विता उसके चेहरे पर खेलती हुई दिखाई देती थी और उसकी आंखों से स्फुलिंग निकल रहे थे। उससे शेवन्ती को ऐसा लगा कि उसमें वह सुन्दरता उमड़ रही है, जो उसने पहले कभी नहीं देखी थी। अपने नेत्रों की अंजलि बनाकर वह उसको आदर के साथ पीने लगी। उसके बोल चुकने पर शेवन्ती भावना में भरकर बोली—"हृषी, आप महान हैं, गुणी हैं। यदि मेरे लिए संभव होता तो मैं आपकी वधू के रूप में कोई राजकन्या लाती और स्वयं तुम्हारे बच्चों की दायी बनकर ज़िन्दगी भर तुम्हारे घर रहती।" कहते-कहते उसकी आंखों में पानी भर आया।

"शेवन्ती, अभी मेरा प्रश्न बच्चों के लिए दायी लाने का नहीं, अपने लिए पत्नी लाने का है।" ऐसा कहकर उसने उसे पास खीच लिया और बड़ी कोमलता से उसके आर्द्र नेत्रों को चूम लिया।

शेवन्ती उसका मस्तक अपने वक्ष पर खींच कर उसके घने घुंघराले बालों की लटों में उंगली फिराने लगी और दुःख की उत्कटता के समान ही सुख की उत्कटता से फबक-फबक कर रोने लगी।

भावना से भरकर हृषी ने उसे पास खीच लिया और वात्सल्य से उसकी पीठ थपथपाने लगा। अब वह शान्त हो गई थी। इस प्रकार कुछ क्षण शांति के साथ बीते।

हृषी के पागलपन के दिनों में जब वह उसके अधीन हो गई थी तो उस दिन भी उसने उसे इसी प्रकार खीच लिया था। शेवन्ती को उस प्रसंग की याद आ गई। रंजना के द्वारा भेजी हुई गुलाबी साड़ी को पहनकर जब वह आई तो आधे पागलपन से हृषी ने उसे रंजना कहकर पुकारा। उस पुकार से उसे वेदना हुई थी। वह सबकुछ स्मरण हो आया। उसे लगा कि पूछे, क्या सचमुच अब आपके मन में रंजना के लिए कोई स्थान नहीं रहा है? इस प्रकार अपनी शंका का निवारण कर ले, ऐसा भी उसे लगा। लेकिन एन वक्त पर वह प्रश्न पीछे रह गया और उसके मुंह से दूसरा ही प्रश्न निकल पड़ा। उसने पूछा :

"यह विवाह केशवबाबा को पसन्द है?"

"वह महासागर है, उसकी थाह कोई नहीं पा सकता। लेकिन उसके मन में इतनी दया और इतना न्याय है कि यदि सारा संसार भी उलट जाय तो वह हिमालय बनकर धीरज बंधाता रहेगा।"

हृषी के उत्तर पर शेवन्ती ने उसे झट अपने पास खींच लिया और उसको चूम लिया। हृषी ठीक तरह उस चुम्बन का अर्थ नहीं समझ सका। हां, उसके मन में यह शंका बिलकुल न रही कि विवाह में शेवन्ती की ओर से कोई बाधा है।

: २४ :

हृषी के जाने पर जब शेवन्ती ने यह सारी बात मां से कही तो उसका चेहरा काफी उतरा हुआ दिखाई दिया। चकित होकर शेवन्ती ने कहा—"मां, मुझे तो ऐसा लगा था कि तुझे इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता होगी।" "बेटी, हमारे इस नीच धंधे में तुम्हें कभी भी अच्छा नहीं लगेगा, इसमें तुझे कभी भी सुख की अनुभूति नही होगी, यह मुझे बिलकुल स्पष्ट दिखाई दे रहा है। यह बात तो तेरे रक्त में ही नहीं है, फिर इसमें तू क्या करेगी ? तेरे विवाह की खबर से मुझे प्रसन्न होना चाहिए था. लेकिन मुझे इस बात का विश्वास नहीं होता कि हमारी जाति में विवाह सफल होगा और वह भी ब्राह्मण के साथ करने पर। मैं नहीं जानती कि यह पाप है या पुण्य। लेकिन मेरी अंतरात्मा कहती है कि इसका अच्छा परिणाम नहीं निकलेगा। उस दिन दोपहर के समय जब से घर में आग लगी है तबसे मुझे बुरी कल्पनाएं ही आती रहती हैं।" विषण्ण होकर फूलवन्ती ने कहा।

"मां, जब तू ही ऐसा कहने लगेगी तो मेरी भी हिम्मत टूट जायगी।" दुखी होकर शेवन्ती बोली।

"मैं भी यह जानती हूं। लेकिन मैं क्या करूं ? यह ब्राह्मण की जाति क्या विवाह को सुखी बनने देगी ? यदि हो भी गया तो क्या तू समझती है, वह तुझे सुख से रहने देगी ?" फूलवन्ती ने जब यह प्रश्न पूछा तो अपने और विसूबाबा के सम्बन्ध विच्छेद की सारी कथा उसकी स्मृति में सजीव हो गई। उस समय की वेदना की संपूर्ण कटुता उफन आई और उसने उसके मन को अशान्त कर दिया।

"लेकिन मां, आजतक जो परंपरा चली आ रही है उसे कभी-न-कभी किसी-न-किसी को तोड़ना ही है। मैंने खुद आगे आकर समाज-सुधार का बीड़ा नहीं उठाया, लेकिन मेरे ऊपर विश्वास करके हृषी यदि यह लड़ाई प्रारंभ करना चाहता है तो उसके साथ विश्वासघात न होने देना क्या मेरा कर्त्तव्य नहीं है ? हो सकता है कि इस लड़ाई में हम दोनों काम आ जायं,

लेकिन दूसरों के लिए तो द्वार खुल जायगा और मुझ जैसी अभागी स्त्रियों के लिए जिन्दगी सुधारने का मौका मिल जायगा।" शेवन्ती ने उत्तर दिया।

"शेवन्ती, क्या तुझसे एक सवाल पूछूं? तुझे बुरा तो नहीं लगेगा?"

"खुशी से पूछो। तुम्हारा पूछना मेरे कल्याण के लिए ही होगा। ठीक है न? उसमें बुरा लगने की कौन-सी बात है?"

"बेटी, क्या केशवबाबा का विचार तेरे मन से हट गया है?"

"मां, अब मैंने यह निश्चय किया है कि अपने सुख के लोभ को मन में रखकर जीवन असफल बनाने के बजाय दूसरे को सुखी बनाने की धुन में सफल होना अच्छा है। कितने ही व्यक्ति इसलिए पैदा होते हैं कि दूसरों के लिए जिन्दा रहें। जबतक उन्हें अपना भविष्य मालूम नही होता तबतक वे दुखी रहते हैं, लेकिन जब वह उनको मालूम होता है, वे उसे खुले दिल से स्वीकार कर लेते हैं और उसीमें उन्हें सुख लगने लगता है।"

शेवन्ती के मुंह से ये विचार सुनकर फूलवन्ती इस सम्भ्रम में पड़ गई कि वह अपनी मां से बोल रही है या लड़की से। इतनी छोटी उम्र में उसके मुह से इतने परिपक्व विचार सुनकर एक ओर उसे अपनी लड़की पर अभिमान हुआ, दूसरी ओर उसके भावी कष्टमय जीवन को देखकर दु:ख भी हुआ।

"बेटी, तुम्हारी बात मैं समझी, लेकिन जब किसी को भी सुखी करना था तो बेचारे माकाव के जज को क्यों निराश किया? वह तुझे कितना चाहता था? हजारों मील से वह कितने नियमित रूप से पत्र भेज रहा था। क्या अब भी उसके पत्र नहीं आते?"

"कभी-कभी आते हैं।" उदास होकर शेवन्ती ने कहा।

"सुना है कि उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनकर वह परसों ही पणजी पहुंच चुका है।"

"यह बात तुझसे किसने कही?" चौक कर शेवन्ती ने पूछा।

"परसों जब मैं मन्दिर में गई थी तो वहां गांव के बहुत-से सभ्य पुरुष आपस में बातचीत कर रहे थे। जब केशवबाबा का नाम आया तो मैंने

बत्ती उकसाने का बहाना करके उस ओर कान दिया। वे कह रहे थे—'अब यह न्यायाधीश आ गया है न? अब तुम्हारा बहिष्कार खत्म हुआ। कहा जाता है कि मकावा से चलने के पूर्व ही उसका और केशव का पत्र-व्यवहार चल रहा था, लेकिन केशव सचमुच बड़ा राजनीतिज्ञ है। इस बात का सुराग लगते ही कि यह व्यक्ति उच्च न्यायालय में आ रहा है, देखो, उसने कितने थोड़े ही दिनों में मेलजोल बढ़ा लिया। एक तुम हो गंवार लोग। वह लगातार कुछ-न-कुछ योजना बनाता रहता है।'

" 'उस व्यक्ति का गवर्नर पर भी बड़ा प्रभाव है।' दूसरे व्यक्ति ने कहा।

" 'अब देखना कि उसके कितने अपने आदमी ऊंचे चढ़ते हैं और हमारे सिर पर बैठते हैं।' उनमें से किसी एक व्यक्ति ने अपना मन्तव्य प्रकट किया। इसपर एक दूसरे व्यक्ति ने आंख का इशारा करके बताया कि मैं पास ही हूं। इसके बाद यह सोचकर कि हमको स्वयं ही अपनी इज्जत रखनी चाहिए मैं वहां से चली आई। मैं उसी समय तुझसे सत्यासत्य का निर्णय करवानेवाली थी, लेकिन तू किसी काम में लगी हुई थी तो मैंने सोचा कि फिर कभी पूछूंगी। बाद में भूल गई।"

फ्रेड—हां, फ्रेड! उसने कितनी ही बार शेवन्ती को आग्रह के साथ लिखा था कि वह उसे 'फ्रेड' लिखकर सम्बोधित किया करे, लेकिन इतने बड़े आदमी को ऐसे हलके सम्बोधन से सम्बोधित करना उसे कभी जंचा नहीं। फिर भी आज अकस्मात उसे इस नाम की याद आगई और वही अन्तः-करण से निकल पड़ा। 'फ्रेड' को आये इतने दिन हो गये और वह न तो उससे मिलने आया, न उसने एक भी पत्र ही भेजा। इस विचार से उसका मन बड़ा उदास हो गया। क्या संसार में मानव की निष्ठा सदा निस्स्वार्थ भाव को व्यक्त करनेवाली नहीं होती है? अथवा पूर्वजन्म के किसी पाप के कारण भगवान ने हम देवदासियों के लिए इस जन्म में उसे वर्जित कर रखा है?

इन विचारों के कारण उसे उस रात अच्छी नींद नहीं आई। वह हृषी से जो विवाह-सम्बन्ध जोड़ने जा रही है उसके पीछे उसकी क्या वृत्ति

है, यह एकाध सद्भावी व्यक्ति को दिखाई दे, उसके लिए वह उसका अभिनन्दन करे और उसमें आनन्द माने, इस प्रकार की तृष्णा शेवन्ती के मन में पैदा हो रही थी। इस विषण्णता की छाया उसके मन पर दो-चार दिन तक पड़ती रही।

पांचवें दिन उसके पास डाक से एक नीले रंग का लिफाफा आया। पता टाइप किया हुआ था। अतः वह यह अनुमान नहीं कर सकी कि किसका है। उसने उसे खोला। वह 'फ्रेड' का था। पत्र की बाईं ओर एक छोटा-सा प्रतीकात्मक चित्र था। उसमें तीर लगने से खून बहनेवाला दिल और उसके ऊपर एक खिला हुआ लाल कमल बना हुआ था। उसके नीचे बारीक अक्षरों में टाइप किया हुआ था—Amar e' sofrer, Sofrer e' viver (To love is to suffer, to suffer is to live). चिकने नीले रंग के कागज पर लाल रंग में छपे होने के कारण उस चित्र की सुन्दरता बढ़ गई थी। पत्र टाइप किया हुआ था। केवल उसे देखने में ही एक प्रकार का पवित्र आनन्द होता था। चित्र के नीचे लिखे हुए वाक्य पर कितनी ही देर तक शेवन्ती की आंखें गड़ी रहीं। उसके मन में विचार आया, "इस वाक्य में कितना बड़ा सत्य है?"

पत्र बहुत लम्बा था। शेवन्ती पढ़ने लगी :

मेरे स्वर्णपुष्प,

"तुम्हारे नाम के साथ ही इसी नाम का स्वर्णपुष्प मेरी आंखों के सामने हँसने लगता है और उसमें हिन्दुस्तान के उगते हुए सूर्य के उद्बोधक दर्शन होते हैं। जबसे मुझमें बुद्धि जाग्रत हुई तब से मैं इस सूर्य की उपासना करता रहा और उसका तेज कोमल एवं सुगन्धि-मय बनकर तुम्हारे अन्दर साकार होता हुआ मैंने देखा। यह कहना बड़ा कठिन है कि भारतीय संस्कृति की उपासना के कारण मुझे तुम्हारे भाव-सौंदर्य का साक्षात्कार हुआ अथवा उस साक्षात्कार के कारण भारतीय संस्कृति का रहस्य मालूम हुआ। भगवान कृष्ण और बुद्ध की इस शिक्षा का मर्म मेरी समझ में आ गया कि वासनाओं का संपूर्णतया त्याग करने पर ही सत्य और सौंदर्य का आस्वादन

किया जा सकता है और इसी भावना से खिले हुए फूल का-सा कौतूहल अपने हृदय में रखकर मैं तुम्हारा अभिनन्दन कर रहा हूं।

"कितने ही वर्षों से—वर्ष क्या युगों से—अपने मन में मैं तुम्हारा ही चित्र रखता आया हूं। कभी-न-कभी मेरी तपस्या सफल होगी और तुम मुझे स्वीकार करोगी, ऐसी आशा मन में बनी रही है। हिन्दुस्तान के तथा तुम्हारे प्रति प्रेम होने के कारण ही मैंने यहां आने का सुयोग प्राप्त किया। इस कारण महासागर का प्रवास भी मुझे सुखदाई और उत्साहवर्द्धक प्रतीत हुआ। एकदम आकर तुम्हें चकित कर दूं और तुम्हारे आश्चर्य-भरे आनन्द में सारी थकान भूल जाऊं, इस प्रकार के संकल्पों के हवाई किले मैं बनाता रहा। लेकिन जहाज से उतरते ही वे सारे हवाई किले अकस्मात ढह पड़े। मेरा इन्सपेक्टर मित्र उसी रात को मुझे अपने घर भोजन करने के लिए ले गया। वहां जिन केशवराव के बारे में तुमने मुझे बहुत-कुछ लिखा था वे और इन्सपेक्टर के नये मित्र प्रोफेसर कामत भी उपस्थित थे। उस समय इन दोनों क्रियाशील तरुणों से परिचय हुआ। प्रोफेसर कामत की वाणी बड़ी प्रभावशाली है। जब बातचीत चल रही थी तो जिस तरह हीरे पर चोट करने से चिनगारियां निकलती हैं उसी तरह उनके मुंह से तेजस्वी विचार निकल रहे थे। मैं उनके व्यक्तित्व से बड़ा प्रभावित हुआ और बोला—'यदि यह व्यक्ति पुर्त्तगाल में होता तो केवल एक अध्यापक न रहता।' इसपर 'हिन्दुस्तान में अध्यापक को आचार्य कहा जाता है और सब लोग उसकी शरण में जाते हैं'—इस प्रकार का बड़ा ही प्रभावशाली उत्तर उन्होंने दिया। तब इन्सपेक्टर ने कहा—'जिस भारतीय संस्कृति पर, जजसाहब, आपको बड़ा अभिमान होता है वह ऐसे व्यक्ति को इस बीसवीं शताब्दी में भी कितना परेशान करती है, यह बात आप एक बार इनसे समझ लीजिए।' इसके बाद उनके विवाह की, उनके पिता की नाराजी की, समाज में उत्पन्न क्षोभ की सारी बात मैंने सुनी। मैंने वधू का नाम-ग्राम पूछा; लेकिन वह तुम्हीं हो, यह बात मुझे पहले ही मालूम हो गई थी। मुझे बड़ा आघात लगा, लेकिन मैंने उनको यह बात मालूम नहीं होने दी।

एकदम मुझसे पूछा, 'जज साहब, आपका उत्साह ठंडा क्यों हो गया ?' मैंने कहा, 'मैं सामान्यतः शराब नहीं पीता । आज मेरे स्वागत का दिन है। मित्रों को अप्रसन्न नहीं करना चाहिए। अतः मैंने कुछ ज्यादा पी ली और उसका मुझपर असर हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है।' इसके बाद उनका अभिनन्दन करते हुए मैंने कहा, 'प्रेमनिष्ठा के कारण समाज को इतनी बड़ी चुनौती देने की वीरता देखकर मेरे मन में यह उत्सुकता पैदा हो गई है कि कब आपकी कविताएं पढ़ने का अवसर पाऊं।'

"हमारी बातचीत कितनी ही देर तक चलती रही। मुझे इस बात के लिए बड़ा प्रयत्न करना पड़ा कि मेरा सन्तुलन बिगड़ा हुआ दिखाई न दे। मुझे लगातार ऐसा लग रहा था कि तुम्हारे बारे में खूब बातें करूं और उनसे जितनी जानकारी मिल सके, पाने का प्रयत्न करूं। लेकिन तुम्हारे सुख के विचार से मैंने उस उत्सुकता को दबा दिया। मुझे उस रात को अनुभव हुआ कि प्रेम मदिरा के नशे को भी किस प्रकार रोक सकता है।

"सब लोग अपने-अपने घर लौट गये। केवल मैं ही सारी रात जागता रहा। ऊषा की प्रभा से दीपक का प्रकाश मन्द हुआ। मै प्रकृतिस्थ हुआ। उषा के दर्शन से वेदकालीन ऋषियों को किस प्रकार महान सत्य का साक्षात्कार हुआ होगा, यह मुझे पहली बार उस समय अनुभव हुआ। मेरे मन पर इस बात का विश्वास जमा कि त्याग से प्रेम सफलता की ओर जाता है। मुझे यह दिखाई देने लगा कि प्रातःकाल खिलनेवाले पुष्पों में, सूर्य के प्रकाश में, चमकनेवाली मिट्टी में, ओस से भीगे हुए हरे-हरे तृणांकुरों में कितना आनन्द उमड़ रहा है और लोग उस आनन्द की ओर से आंख मूंदकर किस प्रकार वंचित हो रहे हैं।

"उस एक ही रात में मेरी सारी अभिलाषाएं जल गईं और मैं जाग्रत हो गया। बोधिवृक्ष के नीचे सिद्धार्थ को जो अमृत-सुख अनुभव हुआ, वह क्या इसी प्रकार का था ?

"दिव्य भावनाओं से जगमगाते रहने पर जो प्रकाश अपने अन्तरतम

से बाहर निकलता है, उससे हम वास्तविक मर्यादाओं को लांघकर पार हो जाते हैं। आत्मा परमात्मा है, आनन्दमय है, इसका ज्वलन्त अनुभव हमें होता है। मैं इस अनुभव से अब कृतार्थ हो गया हूं। तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो प्रणय था, वह अब वात्सल्य का रूप धारण कर चुका है। किसी प्रतिभावान् व्यक्ति की स्फूर्ति देवी होने का सौभाग्य तुम्हें मिल रहा है, इसलिए मैं खुले दिल से तुम्हारा अभिनन्दन करता हूं और आशीर्वाद देता हूं कि तुम सुखी रहो।

"आज तुमने मुझे जो जीवन-दर्शन दिया है वह तुम कदाचित् मेरी अपनी बनकर भी न दे पातीं। पुण्यवान् व्यक्ति गंगा की तरह असंख्य लोगों को जीवन देते रहते हैं।

"अपनी लग्न के अवसर पर मुझे निमंत्रण भेजना मत भूलना। यह विश्वास रखना कि उस समय उपस्थित रहने में तुम्हारे इस मित्र को जितना आनन्द होगा उतना किसी और को नहीं होगा।

तुम्हारा
फ्रेड"

पत्र पढ़ लेने के बाद शेवन्ती बहुत समय तक चित्रवत् निश्चेष्ट बैठी रही और उसकी आंखों से आंसू बहते रहे। मूर्ति के उत्सव के समय वह किस दिव्य भूमिका पर पहुंच गई थी और अब नाटक के पात्र की भांति कितनी नश्वर और लौकिक भावनाओं में फंस गई है, इस बात की तीव्र अनुभूति उसे हुई और यह विवाह, यह जीवन, यहां के झगड़े, सबकुछ उसे चित्रपट के चित्र की भांति निर्जीव और निस्तेज प्रतीत होने लगे।

: २५ :

आधी रात बीत चुकी थी। हवा की शीतलता बढ़ गई थी। आकाश की नीलिमा गहरी हो गई थी और उसमें से चांदी के कणों की तरह चांदनी करोड़ों बिन्दुओं से चू रही थी। देवी के तालाब के किनारों

पर हजारों दीपक जगमगा रहे थे। मध्य में अधिष्ठित देवी की स्वर्ण प्रतिमा हंस-युगल सदृश नौका पर तालाब के बीचोंबीच स्थित तुलसी-वृन्दावन की प्रदक्षिणा कर रही थी। नाव पर चन्द्रमा की ज्योति पड़ रही थी और जब नाव में से छोड़ी जानेवाली आतशबाजी की चिनगारियां पानी पर आकर गिरती थीं तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई कमल जल में से ऊपर आ रहा है। दूर किनारों से छोड़ी जानेवाली सुर्रियों का प्रतिबिम्ब पानी में ऐसा दिखाई देता था, मानो सोने के नागराज पाताल में प्रवेश कर रहे हों। तालाब के चारों ओर से भक्तों की भीड़ उमड़ पड़ी थी और वे सब तन्मय होकर देवी को अलौकिक शोभा को निहार रहे थे। शेवन्ती इस सबसे दूर कोने में खड़ी थी। उसे ऐसा लगा कि यह उसका अपना ही उत्सव हो रहा है। उसकी आंखें एकटक मूर्ति पर लगी हुई थीं। देखते-देखते मूर्ति सजीव हो गई। उसे ऐसा लगा मानो वह उन्मुक्त कण्ठ से हँसने लगी, आरती हुई और मंत्र-पुष्पांजलि अर्पित की गई। इतने में पालकी में सजीव बनी मूर्ति उठ खड़ी हुई और तीन बार 'ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः' कहकर तालाब में कूद पड़ी। उसके साथ उसे यह भी लगा कि उसका सारा शरीर कपूर की भांति जलकर अन्तर्धान हो गया और चैतन्य सबमें व्याप्त होकर उस सारे वायुमंडल में तरंगित होने लगा। देवी पानी में अन्तर्धान हो गई और उसकी मूर्ति का आकार धारण किये हुए स्वर्णचम्पा के फूलों का सुसज्जित समूह पानी की सतह पर तैरने लगा। उन फूलों को हृषी, केशव, अन्तासेठ, रमाअक्का, रवलूदादा, फूलवन्ती, फ्रेड, कमली, रंजना और हरिजन स्त्री-पुरुष, सब एक-दूसरे के प्रति भेदभाव और ईर्ष्या-द्वेष भूल कर उठा ले जा रहे थे। शेवन्ती कृतकृत्य हो कर दिव्य आनन्द का अनुभव कर रही थी।

जब वह जगी तो उसे यह मालूम होने पर भी कि यह सब स्वप्न था, उसे उस अनुभव का आनन्द यथार्थ ही लग रहा था। वह सोचने लगी कि ऐसा स्वप्न क्यों दिखाई दिया। तभी उसे याद आया कि उस समय दो

दिन पूर्व ही मन्दिर के कीर्तन में

"आपुलें मरण पाहिलें म्यां डोळा,
तो एक सोहला झाला मज"

नामक अभंग उसने तन्मयता से सुना था और वह उसे पसंद आया था। लेकिन उसे यह बात सही नहीं लग रही थी कि केवल उसी कारण उसे ऐसा स्वप्न दिखाई दिया। वस्तुतः उसने अभी रमाअक्का, कमली, रंजना, रवलूदादा आदि को देखा नहीं था, फिर भी ये लोग उसे क्यों दिखाई दिये, यह उसकी समझ में नहीं आया।

रात को यह स्वप्न देखने के बाद जैसे वह बिल्कुल बदल-सी गई। प्रातः-काल फूल चुनते हुए उसने इस बात का बड़ा ध्यान रखा कि बेलों को तनिक भी आघात न लगे। जब पड़ोस की गाय निकली तो उसने प्यार से उसके गले पर हाथ फेरा। जब ग्रामीण किसान की स्त्री का स्वर उसे सुनाई दिया तो उसने उसकी भाषा समझने का प्रयत्न किया। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके शरीर के फूल बन जायं और वे सबको बांटे जायं।

उसने तिथि मालूम करने के लिए पंचांग खोला। उस दिन श्रावण शुक्ल पंचमी थी। प्रतिमा के उत्सव के केवल आठ दिन रह गये थे। आज का सारा दिन देवी की सेवा में व्यतीत किया जाय, इस विचार से उसने घर के सारे काम जल्दी-जल्दी कर लिये और स्नान करके शुभ्र वस्त्र पहन कर मन्दिर में गई।

मंदिर के अन्दर के भाग में अभिषेक और मंत्रोच्चार हो रहा था। सभा-गृह में कितने ही व्यक्ति चुपचाप बैठे अन्दर का दृश्य देख रहे थे या पाठ कर रहे थे। अन्दर के भाग में कितनी ही तरुण स्त्रियां एकाग्रचित्त से जप करती हुई प्रदक्षिणा लगा रही थीं। यह सारा दृश्य देखकर शेवन्ती पुलकित हो गई। उसे ऐसा लगा, मानो उस सारे वातावरण में से शान्ति एवं अपा-र्थिव संगीत निनादित हो रहा है। उसे ऐसा आभास हुआ कि जिस तरह मंदिर के कलश के आसपास कबूतर 'हूं' –हूं' करते रहते हैं, उसी तरह अन्दर भी अनेक आत्माएं गुंजार कर रही हैं।

प्रदक्षिणा लगानेवाली स्त्रियों में से एक प्रौढ़ स्त्री की तरफ वह आकर्षित हुई। कारण यह था कि उसके मस्तक पर अन्य स्त्रियों की तरह आड़ी या गोल बिन्दी नहीं लगी थी, बल्कि खड़ी बिन्दी लगी थी। इसके अलावा उसके चेहरे की सात्विकता भी उसे प्रभावशाली प्रतीत हुई। उसका शरीर दुबला-पतला था, लेकिन उसके चेहरे पर दिखाई देनेवाला वैराग्य दूसरे लोगों के मन की प्रसन्नता को जाग्रत करने में पूरी तरह समर्थ था और उस वैराग्य पर ममता की चांदनी फैलने के कारण वह आह्लाद बन गया था। न जाने क्यों, शेवन्ती को बार-बार ऐसा लगा कि उससे उसे परिचय करना चाहिए, लेकिन बिना काम किसी अपरिचित से कैसे परिचय किया जाय? कुछ देर बाद वह स्त्री मन्दिर के द्वार से बाहर निकली और उसके पीछे-पीछे पूजा का गिलास तथा पूजा-सामग्री का बरतन लेकर एक तरुणी भी गई। उनकी चाल से उनके खानदानीपन के साथ-साथ उनके अलग-अलग व्यक्तित्व की झलक मिली।

जब मन्दिर की भीड़ कम हुई तो शेवन्ती की उत्सुकता बढ़ी और उसने ब्राह्मणों से पूछताछ की। पता चला कि कुंकुम का खड़ा टीका लगानेवाली बाई रवलू कामत की पत्नी रमाअक्का थी—लिसेब के प्रोफेसर कामत की मां।

"जो उनके पीछे गई, वह?"

"उनकी भानजी थी।"

"यहीं रहने आई हैं?"

"हां, हमारे आश्रम में ठहरी हैं। उन्होंने आज ही 'नवचण्डी' का पाठ करवाने के लिए सुपारी दी है। दोनों ही बड़ी श्रद्धालु दिखाई देती हैं।"

"कैसे?"

"एक बार भोजन करके जप-तप, पठन-पाठन, प्रदक्षिणा आदि दिन भर कुछ-न-कुछ चलता ही रहता है।"

"ऐसा लगता है कि ये रोज़ इसी समय आती हैं!"

"इसी समय क्यों ? उनका तो बहुत-सा समय यहीं बीतता है। हां, उनके आने से कीर्तन और प्रवचन करनेवालों, ब्राह्मणों, भिखारियों, सबके मानो ऊँचे ग्रह आ गये हैं। कोई भी खाली हाथ नहीं लौटता।"

घर लौटने पर शेवन्ती ने बड़े उत्साह से मां से कहा, "मां, आजकल हृषी की मां रमाअक्का यही हैं ?"

"मुझे मालूम है।" उपेक्षा से फूलवन्ती ने कहा।

"लेकिन तूने मुझसे कहा क्यों नहीं ?"

"इसलिए कि कल सास बनने पर वह तुझे तंग करेंगी ही, फिर अभी से क्या जल्दी है। उनसे मिली तो नही न ?"

"मैंने तो उन्हें दूर से ही देखा था।"

"अगर इस विवाह को पार डालना है तो कुछ दिन दूर ही रह।"

रमाअक्का के संबंध में मां की तुच्छता की वृत्ति शेवन्ती के लिए दुस्सह हो गई। उसने कहा, "मां, तूने तो ब्राह्मण-मात्र को बुरा मान रखा है। अच्छे आदमी तो सब कहीं होते हैं न ? मुझे तो वे बड़ी सात्विक और अच्छे स्वभाव की दिखाई दीं। ऐसी न होती तो अपनी चोली-साड़ी मेरे लिए क्यों भेजतीं ?"

"ये लोग ऐसी ऊपरी उदारता दिखाकर ही हम लोगों का गला काटते हैं। दूसरों के सद्भाव की आग जलाकर उसपर अपने स्वार्थ की रोटी किस प्रकार से सेकी जा सकती है, यह बात सीखनी हो तो इनसे सीखो।"

"मां, तू कुछ भी कह, पर मुझे रमाअक्का के बारे में यह बात सही नहीं लगती।"

"एक के अनुभव से दूसरे लाभ नहीं उठाना चाहते, यही संसार में सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात है। जब तेरा अपना हाथ जलने लगेगा तब तुझे समझ पड़ेगा। मेरा तो मां का दिल है। मैं कितना ही सोचूं कि मुंह न खोलूं, लेकिन जब मौका आता है तो मुझसे बोले बिना नहीं रहा जाता। यह बाई यहां व्रत-उपवास करके तेरे विवाह में बाधाएं डालने आई है। मैं कड़वी बातें कह रही हूं, लेकिन मेरी बातें झूठी नहीं निकलेंगी।"

इसपर शेवन्ती कुछ न बोली । आज उसका चित्त कुछ ऐसी शुभ वृत्तियों से भरा हुआ था कि उसे चर्चा को और ज्यादा बढ़ाना अच्छा नहीं लगा । फूलवन्ती को ऐसा लगा कि उसकी आखिरी बात से शेवन्ती निरुत्तर हो गई है और उसकी बात उसने पूरी तरह से मान ली है ।

रमाअक्का नवचण्डी करने के लिए आई हैं, यह बात उसे ब्राह्मणों से मालूम हो गई थी । शेवन्ती ने सोचा कि अगर एक बार मां की बात को सच भी मान लिया जाय तो भी यदि रमाअक्का इस दृष्टि से कि उनका लड़का कुलाचार-भंग न करे, व्रत-उपवास करती हैं तो इसमें बुराई क्या है ? उसे दिखाई दे रहा था कि अपने हित भिन्न-भिन्न होने के कारण यह संघर्ष अपरिहार्य है । फिर भी रमाअक्का के प्रति उसका आदर तनिक भी कम न हुआ । मां ने उससे दूर रहने की बात कही थी, लेकिन जैसे-जैसे समय बीत रहा था, उनसे मिलने की उत्कण्ठा शेवन्ती के मन में बढ़ रही थी ।

दूसरे दिन वह अभिषेक के समय ही मन्दिर में गई । आज ज्यादा भीड़भाड़ नहीं थी । जो थोड़ी-बहुत थी, वह भी थोड़े ही समय में छट गई । प्रदक्षिणा लगाकर स्त्रियां चली गई । केवल रमाअक्का और उनकी भानजी ही लगातार प्रदक्षिणा करती रहीं और उनको देखते हुए शेवन्ती मन से प्रदक्षिणा करती रही ।

अन्त में प्रदक्षिणा समाप्त करके दोनों आंगन के दक्षिण द्वार से बाहर निकलने वाली थीं कि शेवन्ती उठी और पास के खम्बे के पास खड़ी हो गई । ज्योंही देहली लांघकर रमाअक्का बाहर आईं, शेवन्ती दो कदम आगे बढ़ी और उसने उन्हें झुककर प्रणाम किया ।

"सुखी रहो बेटी ।" बड़ी ममता से उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए रमाअक्का ने कहा । "बेटी, तू कौन है ?"

"रमाअक्का, मैं शेवन्ती हूं ।"

"क्या मेरी प्यारी गुणवंती शेवन्ती ? मुझे अपना चेहरा जी भरकर देख लेने दे, बेटी ।" इतना कहकर जिस तरह वृक्ष के नये फूल को प्यार से पकड़ते हैं, उसी प्रकार रमाअक्का ने अपने दोनों हाथों से उसका मुंह पकड़ लिया

और वह उसे अनिमेष दृष्टि से देखती रही। देखते-देखते उसकी आंखें गीली हो गईं।

"अरे, मैं जो सोचती थी, तू तो उससे भी ज्यादा अच्छी और सुन्दर है।"

"रमाअक्का, ऐसी बात कहकर मुझे लज्जित मत करो।"

"क्या इसे पहचाना ?" पीछे-पीछे आनेवाली रंजना की ओर देखकर रमाअक्का ने पूछा। "शेवन्ती, तूने इसे पहचाना ?"

"पहचाना तो नहीं, लेकिन हमारे चेहरे इतने मिलते-जुलते हैं कि किसी भी दूसरे आदमी को हम बहनें लगेंगी। है न ? यह रंजना है न ? या कमली बहन ?"

"यह रंजना है।" रमाअक्का ने उत्तर दिया।

"कमली बहन अच्छी तरह से हैं ?"

"इससे ही पूछ। यह तो वहीं से आई है। हमारे घर चल। तेरे कारण इस रंजना को भी अच्छा लगेगा। इस उम्र में ऐसी लड़की व्रत-उपवास करके कैसे दिन काटे ? कुछ-न-कुछ तो मन की शान्ति की जरूरत रहती ही है।"

"कौन-सा व्रत-उपवास करती हैं, रमाअक्का ?"

"नवचण्डी शुरू की है। प्रायश्चित न करने की हठ करके हृषी बैठ गया है। इधर उसके पिता शालिगराम को लेकर स्वामीजी के पास रहने चले गये हैं। मूर्ति के उत्सव के बाद से घर की शान्ति नष्ट हो गई है। हमारी ओर से देवी के प्रति कोई भूल हुई है, इसीलिए बाप-बेटे में ऐसी अनबन हो गई है। इस संकट को दूर करने के लिए जो बनती है, हम देवी की सेवा कर रहे हैं। देखें, वह कितनी सफलता देती है। यह तो रोज का ही रोना है, बेटी। छोड़ो इस बात को। तेरी मां फुलू अच्छी तरह है न ? उससे कहना कि मैंने उसका हालचाल पूछा था। जब-जब समय मिले, हमारे घर आती रहना, बेटी। मुझसे कुछ भी संकोच करने की जरूरत नहीं है। जैसी रंजना, वैसी तू।"

"शाम को आऊंगी ।" कहकर शेवन्ती ने रमाअक्का और रंजना से जाने की आज्ञा ली। रमाअक्का को जो थोड़ा-सा परिचय हुआ उससे और विशेषतः उसके स्पर्श से शेवन्ती को विश्वास हो गया कि मां के मन में उसके लिए जो कुशंका है उसका कोई आधार नहीं है।

उसे यही लगता रहा कि कब शाम हो और कब उनके घर जाय और रमाअक्का और रंजना से मिले और उनका परिचय प्राप्त करे। अपनी उत्सुकता में कोई बाधा न आने देने के लिए उसने यह निश्चय किया कि रमाअक्का का संदेश वह मां को फिर कभी दे देगी।

: २६ :

दिन में तीन-चार बार रंजना और रमाअक्का से शेवन्ती की मुलाकात होने लगी और किसी-न-किसी काम के बहाने रमाअक्का के निवासस्थान पर शेवन्ती के बहुत-से घंटे बीतने लगे। देवसेवा के काम में जितनी हो सके उतनी मदद करने में उसे असाधारण सुख अनुभव होने लगा।

जैसे-जैसे शेवन्ती और रंजना का स्नेह बढ़ने लगा, शेवन्ती के मन का कांटा उसे अधिकाधिक चुभने लगा। एक अपराधी की भांति उसे यह बात निरन्तर परेशान करने लगी कि एक बार हृषी से रंजना का विवाह तय हो जाने के बाद अब उसके साथ हो रहा है। उसे ऐसा लगा कि रंजना को अभी यह मालूम नही है कि हृषी उससे विवाह करना चाहता है और यह सब तय हो चुका है। इसीलिए तो पागलपन से उसे मुक्ति दिलाने की बात कह कर वह उसके प्रति आभार प्रदर्शित करती रहती है। उसके मन में यह बात निरन्तर चुभने लगी कि इस सारे प्रकरण की कुछ भी जानकारी रंजना को न होने देकर उसके स्नेह, सौजन्य और कृतज्ञता को स्वीकार करते रहना एक बड़ा भारी अपराध है। उसे कितनी ही बार ऐसा लगा कि वह रंजना से कह दे कि यह सब कैसे हुआ, उसमें वह कैसे निरुपाय थी और हृषी को सुखी करने के लिए, लोगों में उसकी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए, 'हां'

करना उसके लिए कैसे आवश्यक हो गया। लेकिन रंजना को आघात पहुंचाने का साहस शेवन्ती को नहीं हुआ। वह प्रतिदिन देखती थी कि रंजना अपने शरीर को कितना कष्ट दे रही है और इस तप से हृषी के प्रति उसकी निष्ठा उसे बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देती थी। लेकिन उसे यह नहीं सूझता था कि वह रास्ता कैसे निकाले ?

"मुझे रह-रह कर बड़ा बुरा लगता है कि तेरे सुख के रास्ते में विधना ने इस विचित्र ढंग से मुझे ला पटका है।" अन्तर्वेदना असह्य होने के कारण वह ऐसा ही कुछ कह देती थी। इसपर रंजना कहती, "बहन, इसमें कोई क्या कर सकता है! जिसके भाग्य में जो लिखा होता है, वही होता है। इसी बात को न पहचान कर तो एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति दिखाने के बजाय लोग उनसे ईर्ष्या करते हैं और जीवन को अधिक कष्टमय बना लेते हैं। यह संतोष मेरे लिए क्या कम है कि तेरे कारण ही वे मनुष्यता प्राप्त कर सके। उस समय मैं देवी से केवल उसी बात की याचना करती थी, लेकिन मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी है। उसके बाद मेरे मन में आगे की आशा पैदा हुई, लेकिन अब मुझे इस बात का विश्वास हो गया है कि मैं देवी से अपने लिए जो कुछ मांगूगी वह स्वीकार न होगा। इसलिए मैं अब यह नहीं मांगती कि वे मुझे मिलें। मैं तो बस यही मांगती हूं कि पिता-पुत्र का तनाव समाप्त हो जाय। मैंने यही निश्चय किया है कि मैं उनके सुख में ही सुख मानूं।"

रंजना की यह मनोवृत्ति और हृषी के प्रति उसकी निष्ठा देखकर बार-बार उसपर एक प्रकार का वैराग्य छा जाता था। इतने दिनों उसने अनेक बार सोचा था कि रंजना से एक प्रश्न पूछे। उस प्रश्न के बारे में वह बड़ी उत्सुक थी। लेकिन ऐन वक्त पर किसी-न-किसी आन्तरिक या बाह्य कारण के उत्पन्न हो जाने से वह प्रश्न पूछा नहीं जा सका था। आज उसने निश्चय किया कि कुछ भी हो, वह बिना पूछे न रहेगी।

"रंजना, मैं इतने दिनों से सोचती रही कि तुझसे एक बात पूछूं, लेकिन किसी-न-किसी कारण से पूछ न सकी। यह बता कि कोई जान-

पहचान न होने पर भी तूने मेरे लिए वह गुलाबी साड़ी क्यों भेजी थी ?" शेवन्ती ने किसी को आसपास न देखकर बड़े स्नेह से पूछा।

"वह सब बात मुझे कभी-न-कभी तुझसे कहनी ही थी और उसे कहने के लिए मैंने बड़ी सुन्दर जगह ढूंढ़ ली है।" रंजना ने उत्तर दिया।

"कौन-सी ?"

"उधर।" देवी के कलश की ओर उंगली दिखाते हुए रंजना ने कहा।

चकित होकर शेवन्ती उसकी ओर देखती रही।

"कल श्रावण त्रयोदशी है। प्रतिमा का उत्सव है। उसे देखकर हम लौटेंगे। उसके पहले मुझे एक बार उस कलश पर जाना है। मैंने पुजारी से कह रखा है। तू चलेगी ? बिना घबराये चढ़ सकेगी न ?"

"उसमें घबराने की कौन-सी बात है ? छोटे-छोटे बच्चे तक चढ़ते हैं।" शेवन्ती ने उत्तर दिया।

"तो फिर आज ही चलें। रमाअक्का से पूछने की जरूरत नहीं है। पूछा तो उन्हें न जाने क्या-क्या शंकाएं होंगी और फिर कभी भी जाना न हो सकेगा।"

इतना कहकर रंजना उठी और शेवन्ती का हाथ पकड़कर खिड़की में से कूद पड़ी। रंजना का वह अल्हड़पन शेवन्ती को बड़ा अच्छा लगा। लेकिन यह देखकर कि न जाने क्यों, उसका मन आज अकारण ही उत्तेजित है, उसे कुछ बेचैनी हुई। पुजारी ने दोनों के हाथ में नारियल दिया और सीढ़ी लगा दी। उन्होंने बड़े चौक की छत का गुप्त द्वार खोला और ऊपर चढ़ने लगीं। मंदिर की गुम्बद का पहला भाग अठकोना था। वह कबूतरों की बीट से गन्दा हो रहा था। उसकी बदबू से उनका दम घुटने लगा। कलश की दीवार में से सीढ़ियां लगी हुई थीं और एक-एक मंजिल पार करने के बाद झरोखे दिखाई देते थे। अन्दर का अन्धकार, झरोखों से आने वाली मन्द वायु का झोंका, असंख्य कबूतरों का 'हूं हूं' करता स्वर, उनकी बीट की दम घोटनेवाली दुर्गन्ध, इन सबके कारण उन दोनों को ऐसा लगा मानो वे यमराज के राज्य में पहुंचने के लिए सीढ़ियों पर चढ़ रही हैं।

इसपर इतने दिनों से एक बार भोजन करने के कारण रंजना बड़ी कमजोर हो रही थी। उसके पैर आगे बढ़ने से इंकार करने लगे। लेकिन वे दोनों एक-दूसरे को उत्साहित करती हुईं और किसी विचित्र बात के दर्शन के लिए उत्साह से भरे उद्गार प्रकट करती हुई आखिर शिखर पर पहुंच गईं।

रंजना को लगा, मानो चौरासी सीढ़ियां चढ़कर स्वर्ग पहुंच गई हो। उसने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और चारों ओर देखा। उस भव्य शिखर से दूर-दूर तक के दृश्य दिखाई देते थे। तालाब के पीछे लाल सीधा रास्ता, उसके दोनों ओर हरे तालाब की भांति फैले हुए छोटे-छोटे पौधेवाले खेत, उसके बाद ढलान और पुल, फिर घने नारियल के पेड़ों का समूह, उसके पीछे टेकरी पर बना हुआ छोटा-सा गिरजाघर—सारा दृश्य बड़ा सुन्दर दिखाई दे रहा था और सन्ध्याकाल की सुनहरी धूप के कारण मानो उनपर पालिश हो गई थी।

थोड़ी देर तक इस दृश्य की सुन्दरता का आनन्द लेकर एवं शरीर को विश्राम देकर रंजना बोली, "संकल्प करके यह नारियल नीचे फेंकना था न?"

"हां, यदि पूरा फूट गया, उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये तो समझना चाहिए कि संकल्प सफल होगा।" शेवन्ती ने उत्तर दिया।

"तो फिर हमें जो बात करनी हो कर लें और फिर निर्मल मन से संकल्प करें।" रंजना ने कहा।

"तुम मेरे प्रश्न का उत्तर देने वाली थीं न?" शेवन्ती ने पूछा।

"बहन, उस साड़ी की कहानी बड़ी विचित्र है।" ऐसा कहकर उसने सारा प्रसंग विस्तार के साथ शेवन्ती को सुना दिया। अन्त में वह बोली, "वहां मड़काई में एक बार एक बहन से मैंने यही बात रोते-रोते कही थी और आज यहां एक दूसरी बहन को, अपने सारे आंसुओं को पीकर कह रही हूं। शेवन्ती जन्म से हम एक-दूसरे की बहन हैं, लेकिन पूर्व कर्म से हम एक-दूसरे की बैरिन हैं।" ऐसा कहते-कहते भावनाओं के वेग से रंजना

हांफने लगी।

"क्या हम दोनों जन्म से बहनें हैं?" आश्चर्यचकित होकर शेवन्ती ने पूछा।

"और उसी कारण बैरिन बनने की परिस्थिति का भी निर्माण हुआ।" रंजना ने जवाब दिया और उसने उसके जन्म का वह सारा इतिहास, जो उसे कमली से मालूम हुआ था, शेवन्ती को कह सुनाया। इसके बाद वह उदास होकर बोली, "शेवन्ती, तू और म जो इतनी मिलती-जुलती हैं, इसपर तुझे अभिमान भी हुआ होगा, लेकिन इस साम्य के कारण ही हमारे संकट की परम्परा का निर्माण हुआ है। तेरे अन्दर जो साम्य है उसीके कारण उस विशिष्ट परिस्थिति में उनकी दृष्टि फिर गई। मुझे विश्वास था कि उस साड़ी के कारण वे फिर सारी बात को पहचानने में समर्थ होंगे, क्योंकि वे मुझे कितना चाहते है, यह बात उनको मालूम न हो तो भी मुझे अवश्य मालूम है। कल उनका विवाह अगर किसी दूसरी स्त्री से हुआ तो वह बेचारी तो सुखी होगी ही नहीं, उनको भी सच्चा सुख अनुभव नहीं होगा। मुझे निरन्तर जो बात चुभ रही है वह यही है कि इससे वे सुखी नहीं होंगे। मन्दिर के इस शिखर पर सौगन्ध खाकर कहती हूं कि मैं उनके लिए जितना भी जरूरी हो उतना त्याग करने के लिए तैयार हूं। तूने उन्हें पहचान लिया है और अगर तेरा विश्वास हो कि उनके जीवन में से मेरे हट जाने के बाद वे सुखी हो जायंगे तो तू अपने हाथों से ही मुझे नीचे ढकेल दे और देख कि मैं सती की तरह किस प्रकार हँसती-हँसती नीचे गिरती हूं। तुझमें इतना साहस न हो तो बस 'हां' ही कह दे।" जिस तरह ज्वाला की प्रभा से सब चीजें स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं उसी प्रकार रंजना का चेहरा विलक्षण रूप से सुन्दर दिखाई दिया। उसके मन में यह शंका बिल्कुल नहीं रही कि शेवन्ती के 'हां' कह देने पर गिर पड़ने में वह किसी प्रकार भी झिझकेगी।

"रंजना!" शेवन्ती ने डाट कर कहा। पर सच यह है कि वह स्वयं घबरा गई थी। इसके बाद शीघ्र ही उसने बड़े प्यार से उसे अपने पास

खींचकर कहा, "हम लोग यह मानते है कि प्रत्येक कुमारिका देवी की मूर्ति है। हम दोनों उसी तरह का आचरण करें। वही हमको उचित रास्ता दिखायगी। अब हम दोनों संकल्प करके अपना-अपना नारियल नीचे फेंक दें और घर चलें। इतनी देर से तेरे वहां न होने से रमाअक्का हैरान होंगी। अब मैं समझी कि वह लगातार तेरी इतनी चिन्ता क्यों करती है!"

दोनों ने आंख मीचकर मन-ही-मन अपना-अपना संकल्प किया और नीचे नारियल फेंक दिये। दोनों को ही नारियल फूटने की आवाज सुनाई दी और उन दोनों ने ही 'मेरा नारियल फूटा, मेरा नारियल फूटा' कह कर तालियां बजाईं।

"तूने क्या संकल्प किया है?" शेवन्ती ने पूछा।

"यही कि उनका कल्याण हो।" रंजना ने उत्तर दिया। "और तूने?"

"अगर नारियल नहीं फूटा होगा तो मैं तुझे अपना संकल्प बताऊंगी। फूट गया होगा तो जल्दी ही वह सफल हो जायगा। लेकिन रंजना, इस बात का ध्यान रख कि यह बहन कभी भी तेरी बैरिन नहीं हो सकती। सुख के दिनों में उसे भूल मत जाना।"

"शेवन्ती, तू कितनी अच्छी है।" रंजना ने उसे एकदम चूमकर कहा।

"पगली कहीं की! इस प्रकार का चुम्बन तो पुरुषों को लेना चाहिए, हम जैसी लड़कियों को नहीं।" इतना कह कर शेवन्ती सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी। रंजना भी सावधानी से उसके पीछे-पीछे चली।

: २७ :

नीचे आने पर उन्होंने देखा कि उनके नारियल फूट गये हैं। शेवन्ती ने कहा, "अब मैं अपना संकल्प कह नहीं सकती। चल, अब मन्दिर में चलें।" शेवन्ती ने वापस मन्दिर में जाकर प्रसाद लिया और रमाअक्का के निवास-

स्थान पर गई। अन्धेरा हो गया था। अन्दर एक बत्ती इस तरह जल रही थी, मानो बीमारी में थोड़ा-सा प्रकाश मिल रहा हो और उसके पास छोटा-सा मुंह किए दीवार से टिककर रमाअक्का स्तब्ध बैठी थीं।

"क्यों रमाअक्का, क्या हुआ ?"

"कहां गई थी ?" रमाअक्का ने पूछा, लेकिन उनकी आवाज में उल्लास नहीं था।

"इसने जिद्द की तो इसे मंदिर का शिखर दिखाने ले गई।" डरते-डरते शेवन्ती ने कहा।

"लेकिन रंजना, क्या पूछ कर नहीं जाना चाहिए ? बड़ी बुरी-बुरी खबरें सुनाई देती हैं। ऐसे में मन इतनी बुरी-बुरी बातों की कल्पना करने लगता है, जितनी दुश्मन भी नहीं सोचता। इतनी देर से मेरे तो प्राण सूख रहे थे।"

"रमाअक्का, क्या कोई नई बात सुनी है ?" रंजना ने भयभीत होकर पूछा।

"अभी घर से खबर आई है कि उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया है। कहते हैं कि वे ताम्हण[1] में शालिगराम को रखकर उसे अपने आंसुओं से नहलाते हैं और यहां मैं मजे में खा-पी रही हूं। स्त्रियों की योनि में जन्म लेकर भी मैं श्रद्धा की कसौटी पर नहीं कसी जा सकी हूं।" रमाअक्का ने कहा।

इतने में एक स्त्री गरम कॉफी का प्याला लेकर आई और उसने रमाअक्का से उसे पीने का आग्रह किया। रमाअक्का ने कहा, "मैं कुछ नहीं लूंगी। अगर मुझे खाने-पीने को कुछ नहीं मिला तो मरनेवाली नहीं हूं। मैं तो बड़े निष्ठुर प्राण लेकर आई हूं। सबकुछ भोगना ही पड़ेगा न ?"

इस नये समाचार को सुनकर और रमाअक्का की यह स्थिति देखकर शेवन्ती हतबुद्धि हो गई। रमाअक्का को रवलूदादा की प्रतिज्ञा की बातें मालूम हो गई थीं। लेकिन जब शेवन्ती ने पूछा कि उसका क्या कारण है

[1] भगवान् की मूर्तियों को नहलाने का पात्र

तो उसने केवल इतना ही कहा, "वे जानें या भगवान् जाने।" शेवन्ती को बड़ी चोट पहुंची। उसे बहुत बुरा लग रहा था। उसका चेहरा उदास देखकर रमाअक्का को उसपर दया आ गई। उसे प्रसन्न करने के लिए उन्होंने कहा, "मेरे दुःख तो अब रोज-रोज के हो गये हैं, बेटी। जन्म देते ही भगवान ने दुःख स्त्रियों के भाग्य में लिख दिये हैं। अब तो उन्हींको सहन करने की शक्ति मांगनी है और अपना काम करते रहना है। कल उत्सव मनाकर हम लोग जायंगे। लेकिन जाने के पहले मैं तुझे एक बार वह साड़ी पहने हुए देखना चाहती हूं।"

"कल मैं उसे जरूर पहनकर आपका आशीर्वाद लेने आऊंगी।" शेवन्ती ने उत्तर दिया और भारी दिल से वह घर लौटी।

× × ×

आज उसके अन्तःकरण में एक ही दुःख व्याप्त था। घर आते ही उसे खबर मिली कि हृषी की चिट्ठी आई है। उसने घबराते-घबराते उसे खोलकर पढ़ा। लिखा था, "आज ही अन्तासेठ बम्बई के जहाज से आया है। उससे भेंट हुई। कल वहां जो उत्सव हो रहा है उसके लिए मैं, केशव, जज साहब और वह आ रहे हैं। मैंने तय किया है कि कल के शुभ मुहूर्त्त में सगाई कर ली जाय और उसीके लिए मैंने अपने इन मित्रों को निमंत्रण दिया है। केशव की इच्छा है कि एक बार मन भर कर तुम्हारे हाथ का भोजन किया जाय। इसलिए कल तुम्हो भोजन बनाना और अच्छे-अच्छे पकवान बनाना, पर बहुत दिखावे की जरूरत नही है। जज साहब भी शिष्टाचार की अपेक्षा भावना के ही अधिक भूखे हैं।"

पत्र पढ़कर शेवन्ती को धक्का-सा लगा। उसने पत्र की बातें मां को बताईं और आवश्यक सामान लाने के लिए पैसे दिये।

सामान मंगवाया गया। निश्चय किया गया कि कल क्या-क्या चीजें बनेंगी। घर के सामान को ठीक-ठीक सजाया गया।

जब भोजन करने का समय हुआ तो फूलवन्ती ने कहा कि चल, रात हो गई, अब भोजन कर लें। इतना कहकर जब उसने पटला बिछाया तो

शेवन्ती ने कहा, "मां, मैं आज भोजन नहीं करूंगी। थोड़ा-सा दूध पियूंगी। कल मुझे उपवास करना है न ?"

"बेटी, कुछ तो खा ले, नही तो पिछले साल जिस तरह गिरकर बेहोश हो गई थी वैसा ही अब होगा।"

"माँ, उस दिन तो दिन भर धूप में चलना पड़ा था। इस बार तो वैसी कोई बात नहीं है।"

मां के भोजन कर लेने पर शेवन्ती ने कहा, "मुझे तुझसे कुछ कहना है, माँ।"

"क्या ?"

"अपने जन्म का सारा किस्सा मुझे एक बार सुनना है। सारी बात मुझे बता दे।"

"शेवन्ती बेटी, गड़े मुर्दे उखाड़ने में क्या लाभ ! उससे व्यर्थ जी दुखेगा।" उसने कहा।

बहुत आग्रह के बाद भी जब उसने देखा कि फूलवन्ती कुछ नहीं बता रही है तो उसने कहा, "ले मैं ही तुझे बताती हूं।" और उसने वह सारी बात जो रंजना से सुनी थी कह सुनाई और पूछा, "यह सब सच है न ?"

"रमाअक्का ने यह सब कहा होगा। मुझे तो पहले ही लगा था।"

"माँ, रमाअक्का ने नहीं, रंजना ने कहा। लेकिन सच है न ?"

शेवन्ती के इस प्रश्न से फूलवन्ती का चेहरा उदास हो गया।

शेवन्ती बोली, "माँ, इतने दिनों से यह बात क्यों नहीं कही थी ?"

"कहने से क्या होता ? तेरे शरीर में जो ब्राह्मण का लहू है, वह तुझे और मुझे दोनों को परेशान कर रहा है। उससे परेशानी और बढ़ जाती।"

"नहीं मां, उससे जीवन का इतिहास कुछ दूसरे ही ढंग से गढ़ा गया होता।"

इतना कहकर वह अपने सोने के कमरे में चली गई। लेकिन उसे बड़ी देर तक नींद नहीं आई। उसकी आंखों के सामने जीवन का सारा चित्र-पट तेजी से गुजरने लगा। जिस दिन मेरे कारण प्रतिमा का निर्माण हुआ

उसी दिन मेरा जीवन-कार्य समाप्त हो गया । उसके बाद यदि जीना है तो केवल संसार के लिए, अथवा अधिकाधिक सुख का निर्माण करने के लिए। लेकिन जीवन के प्रति मेरा मोह ही दूसरे लोगो के लिए नये-नये दुःख पैदा कर रहा है । उसने रवलूदादा को नही देखा था, फिर भी उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा और आंसुओं से शालिग्राम को नहलाती हुई मूर्ति उसकी आंखों के सामने साकार हो गई । अब उसके मन में इस सम्बन्ध में कोई शंका नही रही कि मुझसे शादी करने के लिए हृषी को तैयार देखकर ही वे ऐसा करने को विवश हुए हैं । उसके मन में रंजना, रमाअक्का, हृषी, फ्रेड सबके सुख का खयाल आया और सबके प्रति अपार प्रेम के कारण उसका हृदय करुणा से भर उठा । केशव स्वयं उसके यहां भोजन करने आ रहा है, इस विचार से उसकी आंखों में आंसू आ गये । उसे इस बात से बड़ा दुःख हुआ कि वह उसका हृदय पहचान न सकी, स्वार्थ में उसकी दृष्टि मन्द हो गई और उसकी महानता उसे दिखाई नहीं दी । उसने अन्तासेठ का स्मरण किया । उसने इस बात के लिए उसका आभार माना कि उसके कारण उसे प्रतिमा का स्थान प्राप्त हुआ । कल उससे भी भेंट हो रही है, इस कल्पना से वह गद्‌गद् हो गई । 'जीवन में जो कुछ प्राप्त करना चाहिए, वह सबकुछ प्राप्त हो गया । तब फिर दूसरों के जीवन को दुःखी बनाकर जीने का यह झूठा लोभ क्यों ?' उसने मन-ही-मन कहा। उसने 'शिव-लीलामृत' की पुस्तक निकाली और अपने प्रिय अध्याय का पाठ किया । उसकी सारी अधीरता, अस्वस्थता न जाने कहां गायब हो गई ।

उसने मंदिर में जाकर कुछ देर ध्यान किया । प्रसन्नता से उसका अन्तःकरण भर गया । उसने पूजा में रखे हुए दोनों रुपये निकाले । अपनी साड़ी के छोर से उन्हें पोंछा और बड़ी देर तक प्रसन्नता से उन्हें देखती रही । भगवान जाने, वह उन रुपयों को देख रही थी या पूर्व प्रसंग को !

इसके बाद उसने मेज़ पर रखे दीपक की बत्ती तेज की और पत्र लिखने लगी । काफ़ी देर तक लिखती रही । पत्र लिखना समाप्त करके

वह दबे पैरों मां के कमरे में गई और उसके चरणों में सिर रखा। वह गहरी नींद में सो रही थी। काफ़ी देर तक वह उसका चेहरा देखती रही, मानो वह उसे फिर कभी नही देख सकेगी।

दूसरे दिन उसका उत्साह उमड़ रहा था। जब हृषी, केशव, फ्रेड, अन्तासेठ आदि आये तो वह उनसे इतनी प्रसन्नता से मिली कि उसके व्यक्तित्व का यह पक्ष देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये और सन्तुष्ट भी हुए। बीच-बीच में वह तरह-तरह की चुटकियां लेकर उन्हें प्रसन्न करती रही और दूर से आने वाले बच्चों को मां जिस तरह आग्रह करके उनकी इच्छित चीजें देती है उसी प्रकार वह भी उन्हें खिला रही थी। फूलवन्ती के मना करने पर भी उसी ने भोजन बनाया था और परोसकर खिला रही थी।

"शेवन्ती, मैं इसी दिन की राह देख रहा था और मैंने कहा था कि जब यह दिन आयगा तभी तेरे यहां भोजन करूंगा। अब तो तेरी गलतफहमी दूर हो गई होगी, लेकिन तू हमारे साथ भोजन क्यों नहीं कर रही है ?" केशव ने पूछा।

"आज मेरा त्रयोदशी का उपवास है।"

"उपवास ? किसलिए ?"

अन्तासेठ बीच में ही बोल उठा, "यह जीवित प्रतिमा है न ? इसीके ऊपर से मैंने वह मूर्ति तैयार की है।"

"तुम्हारा चुनाव बिल्कुल ठीक था। तो फिर मुझे प्रतिमा को जरा गहराई से देखना चाहिए।" फ्रेड ने कहा।

"केशवबाबा, आपने आज एक भूल की है। बताऊं ?" शेवन्ती बोली।

"हमारे केशव से भूल ? वह तो स्वप्न में भी संभव नहीं है। यह बात मैं सीने पर हाथ रखकर कह सकता हूं।" हृषी ने कहा।

"मुझे 'आप' या 'तुम' कहने का नियम इन्होंने आज 'तू' कहकर तोड़ दिया है।"

"इसमें कोई शक नहीं कि तोड़ दिया है, लेकिन गफलत से नहीं।

मैंने तो यह तय ही कर रखा था कि मैं हृषी की पत्नी को 'तू' कहूंगा। 'तू' कहने जैसा एक और रिश्ता भी मुझे मालूम हो गया है।"

"वह कौन-सा, भाई ?" फ्रेड ने पूछा।

"समय आने पर मालूम हो जायगा।" केशव ने उत्तर दिया।

× × ×

रात को जब पालकी निकलने का समय आया तो शेवन्ती ने रमाअक्का द्वारा भेजी हुई चोली-साड़ी निकाली और उसे तथा अन्तासेठ द्वारा दी हुई चूड़ियां एवं फ्रेड द्वारा दिये हुए गहने पहनकर वह नव-वधू की तरह सजधज कर बाहर निकली। अंजीरी रंग की साड़ी में उसे देखकर हृषी को ऐसा लगा, मानो अन्तर्धान हो जानेवाली संध्या स्त्री का रूप बनाकर अन्दर आई है। वह उसका सौंदर्य देखता ही रहा। शेवन्ती ने केशव, अन्तासेठ, हृषी सबको झुककर प्रणाम किया।

"यह प्रणाम किसलिए ?" फ्रेड ने पूछा।

"नई वधू को शृंगार करने के बाद सबको प्रणाम करना चाहिए।"

इतना कहकर शेवन्ती चली गई। अन्तासेठ उसकी ओर देखता रह गया। इसके बाद वह रमाअक्का के घर गई। रंजना को उसने छाती से लगा लिया और रमाअक्का के पास जाकर प्रणाम किया। रमाअक्का गद्‌गद् हो गई। कांपते हुए हाथों से उसने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "सुखी रहो, बेटी।"

"रमाअक्का, अभी तक आपने कुछ भी नहीं खाया है।"

"बेटी, खाने की इच्छा नही रही है।"

"मैं देवी की देवदासी आपसे कहती हूं कि चौबीस घंटे में आपका सारा संकट दूर हो जायगा और सब मंगल होगा।"

"बेटी, तेरी बात सच हो।"

जैसे-जैसे रात बढ़ती जाती थी, उत्सव की शोभा में चार चांद लगते जाते थे। जुलूस बढ़ता जा रहा था। पिछले वर्ष उत्सव में जो-जो बड़े व्यक्ति उपस्थित थे, उन सबके मन में शेवन्ती के गीत मानों अंकित हो गये

थे। उन्होंने आग्रह किया कि वह गीत गाये। जब जुलूस के रुकने का अन्तिम स्थान आया तो शेवन्ती गाने के लिए आई। उसने गीत प्रारम्भ किया :

कर ले सिंगार चतुर अलबेली साजन के घर जाना होगा।
नहा ले, धो ले, सीस गुंथा ले, साजन के घर जाना होगा।
मिट्टी उड़ावन, मिट्टी बिछावन, मिट्टी का सिरहाना होगा।
कहत कबीर सुनो मेरी सजनी फिर वहां से नहिं आना होगा।

उस गीत की कंप और वेदना असावरी राग के प्रत्येक आरोह-अवरोह से मानो हृदय को बेध रही थी। लेकिन उसमें दुःख नहीं था। उसमें अज्ञात आनन्द की, दिव्य वैराग्य की, अनन्त जीवन की और पुण्यप्रद मृत्यु की अभिलाषा थी। पालकी अन्दर गई, लोग मन्दिर में प्रविष्ट हुए, लेकिन उस गीत का प्रभाव सबके मन पर छा गया था।

फ्रेड के लिए तो मन्दिर में जाना संभव नहीं था। उसने काफ़ी देर तक खूब ध्यान से मूर्ति का सौंदर्य देखा और अब शेवन्ती के इस गीत से जैसे उनके कान और मन तृप्त हो गये।

वह मैदान की चांदनी में मूर्ति के सौदर्य को याद करके और गीत के आलाप को गुनगुना कर इधर-उधर भटक रहा था। मन्दिर के अन्दर जाने की उसे इच्छा भी नहीं हुई, क्योंकि यह सारा विश्व ही उसे एक बड़ा मन्दिर दिखाई दे रहा था और ईश्वर को एक छोटे-से मन्दिर में बन्द कर देने वाले तुच्छ लोगों पर उसे दया आ रही थी।

अन्दर आरती हो रही थी। इतने में चाबियों का एक गुच्छा लेकर एक लड़का अन्दर आया और उसने हृषी को वह गुच्छा और एक चिट्ठी दी। हृषी कुछ भी नहीं बोला। आरती पूरी होने पर हल्ला-गुल्ला हुआ तो हृषी और केशव बाहर आये।

"जल्दी चलो, तालाब में कोई डूब गया है।" किसी ने कहा।

लोग दौड़ते हुए तालाब की सीढ़ियों पर आये। फ्रेड ने शेवन्ती को पानी से बाहर निकाल लिया था। वह उसे अपने हाथों में लिये हुए था

और डाक्टर को बुलाने के लिए जोर-जोर से चिल्ला रहा था। शेवन्ती के शरीर पर केवल एक शुभ्र वस्त्र था। सिर में जबरदस्त चोट लगने के कारण खून बह रहा था। सफेद कपड़े पर वह लाल रक्त पानी में भीगे हुए पारिजात पुष्पों के गुच्छों की तरह दिखाई दे रहा था। हृषी, केशव, अन्तासेठ आदि पास आये। वह उनके दु:खी और घबराये हुए चेहरों को देखकर मुस्कराई; लेकिन उसकी दृष्टि में करुणा थी। उसने धीरे-से कहा, "देवी ने मुझे अपने पास बुलाया लिया है। मैं हँसते-हँसते उनकी गोदी में सो रही हूँ।

"मेरे पीछे तुम लोग कोई शोक न करना--नमस्कार।" इतना कह कर उसने हाथ जोड़े और चिरनिद्रा में सो गई।

: २८ :

प्रिय हृषी,

मेरी मृत्यु जीवन का सर्वोच्च आनन्दोत्सव है। मेरे लिए रोना मत। जो देवी की प्रतिमा-स्वरूप बनी, उसके लिए लौकिक जीवन की आशा रखना व्यर्थ है। मुझसे प्रेम करनेवाले फ्रेड का जीवन सफल हुआ है। केशवबाबा का हृदय देखकर मेरी शेष आशाएं भी पूरी हो गई है। रंजना से विवाह करने में ही तुम्हारा कल्याण है। माता-पिता, कुटुम्ब, समाज, पूर्व स्नेह, इन सबको तोड़कर किया हुआ प्रेम अपने स्वयं के ही शाप से भस्म हो जाता है और अपनी आध्यात्मिक उच्चता गवां बैठता है। समाज में सुधार होना चाहिए, लेकिन लादकर या झगड़ा करके नहीं। उसके लिए तो उसका हृदय-परिवर्तन करना चाहिए और वह शुद्ध त्याग से ही संभव हो सकता है। मैं इसके लिए एक छोटा-सा प्रयत्न कर रही हूं। यदि यह सिद्ध हो गया कि देवदासियों में भी गहरी निष्ठा हो सकती है तो समाज हमेशा के लिए अंधा नहीं रहेगा। रमाअक्का की साड़ी-चोली और अन्तासेठ द्वारा दी गई चूड़ियां, मैं विवाहोपहार के रूप में रंजना को दे रही हूं। मेरे

लिए जिन-जिन लोगों को कुछ करने की इच्छा हो, उन सबको समाज के परित्यक्त, पीड़ित और दलित लोगों की सेवा करने का व्रत लेना चाहिए। तुम उज्ज्वल भावनाओं और विचारों की वर्षा करके लोगों की मनोभूमि केशवबाबा के कार्य के लिए अनुकूल बनाना।

केशवबाबा ने मेरी सेवा के पुरस्कार-स्वरूप मुझे जो दो रुपये दिये थे, वे पूजा में रखे हैं। उसीसे मेरी अन्त्येष्टि की जाय।

अच्छा मैं जा रही हूं।

तुम्हारी ही
शेवन्ती

हृषी ने रोते-रोते पत्र पढ़ा। उसे सुनकर केशव धम-से आराम-कुर्सी पर बैठ गया।

जब वे शेवन्ती की अन्त्येष्टि करके घर लौटे तो हृषी ने केशव से पूछा, "केशव, क्या तुम उससे प्रेम करते थे ?"

"भाई, भगवान् के प्रति जो प्रेम होता है, उसे भक्ति कहते हैं——प्रेम नहीं। हृषी, आज हमारे लिए शोक का अवसर नहीं है। कुछ गाकर सुनाओ।"

हृषी सितार लेकर गाने लगा :

"कर ले सिंगार चतुर अलबेली, साजन के घर जाना होगा।"

●

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

१	आत्मकथा (गांधीजी)	५)	३६	भू-दान-यज्ञ (विनोबा)	।)
२	प्रार्थना प्रवचन २ भाग ,,	५।।)	३७	राजघाट की संनिधि में	।=)
३	गीता-माता ,,	४)	३८	विचार-पोथी ,,	१)
४	पंद्रहअगस्त के बाद	१।।),२)	३९	सर्वोदय का घोषणा-पत्र ,,	।)
५	धर्मनीति ,,	१।।),२)	४०	जमाने की मांग ,,	=)
६	द० अफ्रीका का सत्याग्रह	३।।)	४१	मेरी कहानी (नेहरू)	८)
७	मेरे समकालीन ,,	५)	४२	हिन्दुस्तान की समस्याएं	२।।)
८	आत्म-संयम ,,	३)	४३	लड़खड़ाती दुनिया ,,	२)
९	गीता-बोध ,,	।।)	४४	राष्ट्रपिता ,,	२)
१०	अनासक्तियोग ,,	१।।)	४५	राजनीति से दूर ,,	२)
११	ग्राम-सेवा ,,	।=)	४६	हमारी समस्यायें ,,	।।।)
१२	मंगल-प्रभात ,,	।=)	४७	विश्व-इतिहास की झलक	२१)
१३	सर्वोदय ,,	।=)	४८	सं० हिन्दुस्तान की कहानी	५)
१४	नीति-धर्म ,,	।=)	४९	नया भारत ,,	।)
१५	आश्रमवासियों से ,,	।=)	५०	आजादी के आठ साल ,,	।)
१६	हमारी मांग ,,	१)	५१	गांधीजी की देन (राजेन्द्र०)	१।।)
१७	सत्यवीर की कथा ,,	।)	५२	गांधी-मार्ग ,,	=)
१८	संक्षिप्त आत्मकथा ,,	१।।)	५३	महाभारत-कथा (राजाजी)	५)
१९	हिंद-स्वराज्य ,,	।।।)	५४	कुब्जा सुन्दरी ,,	२)
२०	अनीति की राह पर ,,	१)	५५	शिशु-पालन ,,	।।)
२१	बापू की सीख ,,	।।)	५६	मैं भूल नहीं सकता ,,	२।।)
२२	गांधी-शिक्षा (तीन भाग)	१=)	५७	कारावास-कहानी (सु.नै.)	१०)
२३	आज का विचार ,,	।=)	५८	गांधी की कहानी (फिशर)	४)
२४	ब्रह्मचर्य (दो भाग),,	१।।।)	५९	भारत-विभाजन की कहानी	४)
२५	गांधीजी ने कहा था ३भाग	।।।)	६०	बापू के चरणों में	२।।)
२६	शान्ति-यात्रा (विनोबा)	१।।)	६१	इंग्लैंड म गांधीजी	२)
२७	विनोबा-विचार : २ भाग	१)	६२	बा, बापू और भाई	।।)
२८	गीता-प्रवचन ,,	१), १।।।)	६३	गांधी-विचार-दोहन	१।।)
२९	जीवन और शिक्षण ,,	२)	६४	सर्वोदय-तत्व-दर्शन	७)
३०	स्थितप्रज्ञ-दर्शन ,,	१)	६५	सत्याग्रह-मीमांसा	३।।)
३१	ईशावास्यवृत्ति ,,	।।।)	६६	बुद्धवाणी (वियोगी हरि)	१)
३२	ईशावास्योपनिषद ,,	=)	६७	सन्त सुधासार ,,	११)
३३	सर्वोदय-विचार ,,	१=)	६८	श्रद्धाकण ,,	१)
३४	स्वराज्य-शास्त्र ,,	।।।)	६९	प्रार्थना ,,	।।)
३५	गांधीजी को श्रद्धांजलि ,,	।=)	७०	अयोध्याकाण्ड ,,	१)

क्र.	पुस्तक	मूल्य
७१	भागवत-धर्म (ह. उ.)	६॥)
७२	श्रेयार्थी जमनालालजी „	६॥)
७३	स्वतन्त्रता की ओर „	४)
७४	बापू के आश्रम में „	१)
७५	मनन „	१॥)
७६	मानवता के झरने (माव.)	१॥)
७७	बापू (घ० बिड़ला)	२)
७८	रूप और स्वरूप „	॥=)
७९	डायरी के पन्ने „	१)
८०	ध्रुवोपाख्यान „	।)
८१	स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय)	१)
८२	मेरी मुक्ति की कहानी „	१॥)
८३	प्रेम में भगवान „	२)
८४	जीवन-साधना „	१।)
८५	कलवार की करतूत „	।)
८६	सामाजिक कुरीतियां „	२)
८७	हमारे जमाने की गुलामी „	॥।)
८८	बुराई कैसे मिटे ? „	१)
८९	बालकों का विवेक „	॥।)
९०	हम करें क्या ? „	३॥)
९१	धर्म और सदाचार „	१।)
९२	अंधेरे में उजाला „	१॥)
९३	ईसा की सिखावन „	१)
९४	कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल)	२)
९५	लोक-जीवन (कालेलकर)	३॥)
९६	साहित्य और जीवन	२)
९७	कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१॥)
९८	हिमालय की गोद में „	२)
९९	कहावतों की कहानियां „	२)
१००	राजनीति प्रवेशिका	१)
१०१	जीवन-संदेश (ख. जिब्रान)	१।)
१०२	अशोक के फूल	१)
१०३	जीवन-प्रभात	५)
१०४	कां० का इतिहास ३ भाग	३०)
१०५	पंचदशी	१॥)
१०६	सप्तदशी	२)
१०७	रीढ़ की हड्डी	१॥)
१०८	अमिट रेखायें	३)
१०९	एक आदर्श महिला	१)
११०	राष्ट्रीय गीत	।)
१११	तामिल-वेद (तिरुकुरल)	१॥)
११२	आत्म-रहस्य	३)
११३	थेरी-गाथाएं	१॥)
११४	बुद्ध और बौद्ध साधक	१॥)
११५	जातक-कथा (आनंद कौ.)	२॥)
११६	हमारे गांव की कहानी	१॥)
११७	खादी द्वारा ग्राम-विकास	॥।)
११८	साग-भाजी की खेती	३)
११९	ग्राम-सुधार	१।)
१२०	पशुओं का इलाज (प.प्र.)	॥)
१२१	चारादाना „	।)
१२२	रामतीर्थ-संदेश (३ भाग)	।=)
१२३	रोटी का सवाल (क्रोपा०)	१)
१२४	नवयुवकों से दो बातें „	।=)
१२५	पुरुषार्थ (डा० भगवान्दास)	६)
१२६	काश्मीर पर हमला	२)
१२७	शिष्टाचार	॥)
१२८	तट के बंधन	२)
१२९	भारतीय संस्कृति	३॥)
१३०	आधुनिक भारत	५)
१३१	फलों की खेती	२॥)
१३२	मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार	॥।)
१३३	नवजागरण का इतिहास	३)
१३४	गांधीजी की छत्रछाया में	२॥)
१३५	भागवत-कथा	३॥)
१३६	जय अमरनाथ	१॥)
१३७	हमारी लोककथाएं	१॥)
१३८	संस्कृत-साहित्य-सौरभ (२२ पुस्तकें)	८।)
१३९	समाज-विकास-माला (४२ पुस्तकें)	१५॥।)